चतुर्दशी

चौदह भाषाओं की कुछ
चुनी हुई कहानियां

प्र का श न वि भा ग

चतुर्दशी

(चौदह भारतीय भाषाओं की कहानियां)



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

चैत्र 1888 (अप्रैल 1966)

मूल्य : 2.50 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली—6 द्वारा प्रकाशित
और प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, द्वारा मुद्रित

दो शब्द

मासिक 'आजकल' में बराबर भारत की चौदह भाषाओं की कहानियां, कविताएं आदि प्रकाशित होती रही हैं। इस प्रकार के प्रकाशन में आधारभूत विचार यह रहा कि हिन्दी के ज़रिए सारे भारत के साहित्य को बराबर सामने रखा जाए। इस प्रक्रिया को राष्ट्रीय एकता-निर्माण का भारी-भरकम नाम दिया जा सकता है, पर उसकी कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि साहित्यिक दृष्टि से भी प्रत्येक भारतीय को अपनी मातृभाषा के साहित्य के साथ-साथ पड़ोस की भाषाओं में क्या हो रहा है—इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। ब्रिटिश शासन की एक बुराई यह थी कि हम जर्मनी, फ्रांस और रूस के विषय में तथा सर्वोपरि इंग्लैण्ड और अमेरिका के साहित्य के विषय में अन्य भारतीय भाषा-साहित्यों से कहीं अधिक जानकारी रखते थे, पर स्वतन्त्र भारत में इस प्रकार के अज्ञान की गुंजाइश नहीं है। रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र, प्रेमचन्द, वल्लतोल. भारती, राधानाथ, धूमकेतु, वीर सिंह आदि सभी भारत के साहित्यकार हैं, और उनके साहित्य से हमें परिचय रखना चाहिए।

अवश्य हमारे इस कथन से यह भनक नहीं निकलनी चाहिए कि हम फ्रांस, जर्मनी, रूस, इंग्लण्ड और अमेरिका के साहित्य से मुंह मोड़ लें, बल्कि कहा यह जा रहा है कि उनका ज्ञान तो हम रखें ही, साथ ही हम देश के समस्त साहित्य का ज्ञान भी अनिवार्य रूप से रखें।

यह दावा नहीं है कि 'चतुर्दशी' में प्रकाशित कहानियां उन भाषाओं की सबसे अच्छी आधुनिक कहानियां हैं, पर इतना दावा ज़रूर है कि इन कहानियों को पढ़ने पर सारे भारतीय कहानी साहित्य का एक सुन्दर परिचय मिल जाएगा। हिन्दी की कहानियां जान-बूझकर संख्या में अधिक रखी गई हैं। हम चाहते तो यह थे कि और भी दो-चार हिन्दी कहानीकार इसमें शामिल किए जाते, पर कई अड़चनों के कारण, जिन पर हमारा कोई वश नहीं, हम ऐसा नहीं कर सके। दूसरी भाषाओं की जो कहानियां या कहानीकार इस संग्रह में लिए गए हैं, उनके सम्बन्ध में भी हमारा यह दावा नहीं है कि वे अपनी भाषा के सबसे अच्छे कहानीकार या उनकी यह सबसे अच्छी कहानी है। यदि इन कहानियों को पढ़ने से सारे भारतीय कहानी साहित्य का औसतन एक सही चित्र आंखों के सामने आ जाए और विद्यमान प्रवृत्तियों, कुंठाओं एवं युगबोधों (हम

मानते हैं कि एक ही साथ बैलगाड़ी से लेकर 'जेट' और मज़दूर के खाली पट की हूक और चोरबाज़ारी की तिहरी डकार के युगबोध चालू रहते हैं) का एक जीता-जागता दृश्य आंखों के सामने नाच जाए, तो हम इस संग्रह को सफल मानेंगे। इतना भी क्या कम है? हम आशा करते हैं कि इस संग्रह की कद्र की जाएगी।

हम अनुवादकों और दूसरे साधारण पाठकों से यह आशा रखते हैं कि वे हमें 'चतुर्दशी' के दूसरे भाग के प्रकाशन में और उसके लिए और उत्कृष्ट कहानियां ढूढ़ने में मदद देंगे।

13 सितम्बर, 1965 —सम्पादक (आजकल)

विषय-सूची

खोटा रुपया

रोमा दास

शादी के ठीक सातवें दिन की बात है।

मैं आया हूं शिलांग से—कर्तव्यमय डाक्टरी जीवन से दो महीनों की छुट्टी लेकर। किराए पर एक मकान लेकर ठहरा प्रतीक्षा कर रहा हूं कि मेरी नव-विवाहिता पत्नी, वृद्धा माता और बहन इला भी यहीं आ जाएं और मेरे विवाहित जीवन की मधुर शुरूआत हो।

ठीक दस बजे मैं डाकघर के सामने खड़ा हूं। मेरे हाथ में एक चिट्ठी है, जो लिफाफे में बन्द है। सिर्फ एक टिकट की ज़रूरत है····डाकघर में टिकट खरीदनेवालों की बहुत भीड़ हो रही है। मेरे पास ही लम्बी दाढ़ीवाला एक सिख है, और उस तरफ है एक षोडशी सुन्दरी जो कि शायद फिरंगी की दुहिता ही है। शरीर का हर एक अंग सोने की तरह चमक रहा है। आंखों की दृष्टि भावों से परिपूर्ण है।····मैंने देखा कि वह एक रुपया देकर कुछ टिकट और लिफाफे खरीदने में लग गई। फिर उसने उन्हें सम्भालते हुए पास ही खड़े होकर एक-एक करके चिट्ठियों पर लगाया और पते लिखने शुरू कर दिए।

मैं पहले की तरह देखता रहा। इतने में उस टिकट बेचनेवाले आदमी ने युवती द्वारा दिए गए रुपये को सन्दूक में डाला और देखते ही चिल्ला उठा—मेम—साहिबा, आपका दिया हुआ यह रुपया खोटा है। यह नहीं चलेगा।

—खोटा ?

—जी हां खोटा। यह नहीं चलेगा।

युवती की आंखों में लज्जा और निस्सहायता का एक कारुणिक चित्र उमड़ आया। उसने कहा—तब मैं क्या करूं ? मेरे पास और पैसा नहीं है। जो टिकट और लिफाफे खरीदे थे, वे सब इस्तेमाल हो चुके।

एक गम्भीर समस्या का उद्भव हो गया। मौका देख कर जनता दिल्लगी करने को तैयार हो गई। निडर होकर मैं आगे बढ़ा और युवती के पास खड़े होकर मैंने विनय के साथ अंग्रेज़ी में कहा—मैं आपकी परेशानी भली-भांति समझ रहा हूं। अगर आप इजाज़त दें, तो मैं एक बात कहना चाहता हूं।

—हां, हां, कहिए ।

—यद्यपि आपका रुपया लौटा दिया गया है, तो भी मैं समझता हूं, शायद यह खराब न भी हो । मेरा विश्वास है कि मैं उसे किसी प्रकार चला ही लूंगा । इसलिए मैं अपने पास से यह रुपया उसको देता हूं और बदले में आपका रुपया स्वयं रख लेता हूं ।

—समझ गई । आप मेरा उपकार करना चाहते हैं । किन्तु मैं एक ऐसी उलझन में पड़ गई हूं कि आपका उपकार अस्वीकार करने की मुझमें हिम्मत नहीं है ।

मैंने कोई दुर्बलता नहीं दिखाई । रुपया बदल कर, युवती के हाथ से चिट्ठियां लीं और उसके साथ लैटरबक्स के नज़दीक पहुंच गया । पास ही खड़े होकर पहले मैंने अपनी चिट्ठी पर पता लिखा और उसके पत्रों के सहित अपनी चिट्ठी को भी लैटरबक्स में डाल दिया । युवती के साथ कदम मिलाते हुए मैं सीढ़ियों के रास्ते पर आया कि इतने में उसने मुझे देख कर हंसते हुए अंग्रेज़ी में पूछा—शायद आप असमिया लोग हैं न ?

मैं अंग्रेज़ी पोशाक ही पहनता था । बातचीत हुई थी विशुद्ध अंग्रेज़ी में । इसलिए उस सवाल ने थोड़ी-सी शंका पैदा कर दी । पूछा—आप क्यों ऐसा सवाल कर रही हैं ?

—इसलिए कि मैं भी असमिया हूं । शायद आपने मुझे देख कर, मेरी पोशाक और फैशन देख कर कभी सन्देह नहीं किया होगा कि मैं नागाओं की ईसाई लड़की हूं । मेरा नाम मिनि एण्ड्रूज़ बारबेरा है । मेरी एक दीदी मद्रास में रहती है मैं उसके साथ रह कर वहां के 'कानवेंट' में पढ़ती थी । मेरी एक और दीदी यहां 'कानवेंट' में रहती है । उसके साथ ही अब मैं हूं ।

—आप क्या करती हैं, बतलाएंगी क्या ?

—गत वर्ष मैंने मद्रास से बी० ए० की परीक्षा पास की है । अगर मिल जाए, तो कहीं मास्टरनी का काम हाथ में लेने की कोशिश में हूं ।

मैं उसकी बात पर विचार ही कर रहा था कि इतने में उसने फिर कहा—मैं आपको और एक बात बता सकती हूं । अभी-अभी आपने जिसके नाम पर चिट्ठी पोस्ट की है, उस लतिका बरुआ को मैं अच्छी तरह पहचानती हूं । बचपन में नागाओं में हम एक साथ पढ़ती थीं । और हम दोनों में काफी दोस्ती थी । मुझे खबर मिली है कि लतिका की शादी डिबरूगढ़ के एक लन्दन से लौटे हुए महाशय से हुई है । आप शायद लतिका के कोई रिश्तेदार हैं ?

न जाने क्यों मैं सच्ची बात प्रकट न कर सका । कहा—जी हां । मेरा नाम मि० चलिहा है । मैं आपकी साथिन लतिका का एक निकटतम रिश्तेदार हूं । उन लोगों के लिए एक मकान ठीक करने मैं शिलांग आया था । सुन कर

आपको खुशी होगी कि लतिका और उसके स्वामी दोनों हनीमून के लिए शिलांग आने की तैयारी में हैं।

—सच। उसको मेरी बात कह दीजिएगा। मेरी बात याद आते ही वह आनन्द में डूब जाएगी। वह मुझे कितना प्यार करती थी।

मिनि एण्ड्रूज़ के साथ बातें करता हुआ इधर-उधर घूम कर जब मैं अपने घर पहुंचा, तब न जाने क्यों मेरा मन बोझिल हो गया। मैंने सोचा· · ·हमारी ज़िन्दगी का परिचय रोज़ यों असमय में क्यों हुआ करता है? थोड़ा आगे या थोड़ा पीछे क्यों नहीं होता?

दिन बीतते गए।

हर सुबह, लतिका के लिए जो मकान मैंने ठीक किया, उसको देखने के लिए मिनि आती है। हम दोनों एक पेड़ के नीचे बैठ कर धूप में चाय पीते हैं। मिनि मेरी चाय की प्याली में चाय देती है, उसके बाद हम दोनों पहाड़ पर चढ़ने जाते हैं। मिनि पैरों के जूते खोल कर एक छोटी बच्ची की तरह पानी में खेलने लगती है और मेरे शरीर पर पानी फेंकने लग जाती है। पानी के पास जो घास का बगीचा रहता है, उस पर खाली पैरों से चल कर वह आनन्दविभोर हो जाती है।

और एक हफ्ता बीत जाता है। मिनि एनड्रूज़ धीरे-धीरे अधीर हो जाती है। वह कहती है—लतिका के लिए मकान की व्यवस्था तो हो गई। आप उसे बुलाते क्यों नहीं?

जबाब में क्या कहूं, मुझे कुछ भी नहीं सूझता। तो भी एक दिन हिम्मत के साथ मैंने कहा—लतिका ने लिखा है कि अभी वह शिलांग नहीं आएगी।

—क्यों?

—लतिका के स्वामी के जीवन में अचानक एक आफत आ गई है। शादी के ठीक एक महीने के भीतर ही वे एक दूसरी नारी के प्रेमपाश में आबद्ध हो गए हैं। बिल्कुल अस्वाभाविक बात है। ऐसा नहीं होना चाहिए था। इस बात को वे भी स्वीकार करते हैं। मगर लाचार हैं। शादी के पहले उनका चरित्र बिल्कुल निष्कलंक था। शादी के बाद भी उन्होंने लतिका के प्रति कोई अन्यायपूर्ण काम नहीं किया है, तो भी उनके लिए उस युवती को छोड़ना कठिन हो गया है।

—तो वह लतिका को छोड़ना चाहते हैं?

—नहीं। पहले की तरह उनका प्यार लतिका के प्रति है। इसीलिए वह इसकी एक मीमांसा चाहते हैं—दो रास्तों के बीच में एक सीधा रास्ता।

—तो इसमें सोचने की बात नहीं है। क्योंकि मुहब्बत और वैवाहिक सम्बन्ध बिल्कुल अलग चीज़ें हैं। और वह सदा अलग होकर ही रहनी चाहिए। पत्नी के प्रति निष्ठावान होकर भी दुनिया में किसी और को प्यार करना मुमकिन है।

—तुमने एक असम्भव वात कही है मिनि। शायद तुम जानती ही होगी कि पत्नी साधारणतः संकीर्ण मन की होती है। किसी दूसरी युवती की वात तो छोड़ दो, वह अपने पति का किसी दोस्त के प्रति भी आकृष्ट होना बर्दाश्त नहीं करती है।

—शायद आप पुराने ज़माने की स्त्रियों की बातें कर रहे हैं। शिक्षित प्रगतिशील नारियों में कहीं भी ईर्ष्या प्रवल नहीं होती है, आप परीक्षा लेकर क्यों नहीं देखते ?

मैंने मिनि को वहुत समझा कर कहा—मिनि ! दुनिया में वहुत लोग इसके पूर्व भी इस समस्या का हल करने को चले, परन्तु विफल रहे। तो तुम फिर उसकी परीक्षा क्यों लेना चाहती हो ?

लेकिन मिनि ने नहीं माना। इसलिए अपने पूर्व निश्चय के अनुसार मैं लतिका, अपनी पत्नी, मां और वहन इला को बुलाने के लिए लाचार हो गया। मेरी और इला दोनों की हालत रास्ते में खराब हो गई थी। इसलिए आते ही हमने विस्तर का आश्रय ले लिया। सिर्फ लतिका, मकान की हरेक चीज़ को देखते हुए टोह रही थी। इतने में अचानक मिनि एण्ड्रूज़ की तस्वीर देख कर लतिका विह्वल हो उठी।

—यह मिनि नहीं है क्या ? आपको मेरी सखी की यह तस्वीर कहां मिली ?

रहस्य वढ़ाने की कोशिश न करके मैंने कहा—हां, तुम्हारी सखी मिनि की ही तो है। वह आज तक यहीं ठहरी हैं।

यह सुन कर सचमुच लतिका आनन्दविभोर हो गई। तभी तूफान की तरह मिनि एण्ड्रूज़ कमरे में दाखिल हुई और लतिका के गले लग गई। वहुत देर तक दोनों बातें करती रहीं। इतने में मिनि मुझसे कुछ कहने के लिए मुझे लक्ष्य करके चिल्ला कर रो उठी—मि० चलिहा !

मिनि का वह अद्भुत सम्वोधन सुन कर लतिका ने हँसते हुए कहा—बेवकूफ कहीं की। तू अभी तक उनको पहचान ही न पाई। वह मि० चलिहा नहीं हैं। वह हैं डा० एम० बी० बरुआ, मेरे स्वामी।

मिनि एण्ड्रूज़ ने मेरी आंखों की तरफ देख कर संकोच के साथ हँस कर कहा—डा० बरुआ ! मुआफ कर दीजिएगा। मैं आपका नाम अच्छी तरह नहीं जानती थी, लेकिन आप मेरा नाम अच्छी तरह जानते थे। मैं हूं मिनि एण्ड्रूज़ बारवेरा, लतिका की बचपन की सखी और मैं हमेशा सखी ही वन कर रहूंगी। अगर आप चाहें, तो आप भी मुझे दोस्त के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

मेरे मुंह से एक भी वात न निकली। मैं धीरे-धीरे उस कमरे से वाहर निकल आया।

दूसरी सुबह मैं और लतिका दोनों चाय पी रहे थे। मन को दृढ़ करने के लिए

मैंने पूछा—लतिका, कल मिनि एण्ड्रूज़ के साथ तुम्हारा स्नेह देख कर मुझे बहुत अच्छा लगा। आज फिर तुम दोनों की भेंट होगी न ?

—नहीं, मुलाकात होने की कोई आशा नहीं है। कल मिनि ने बतलाया कि आज ही उसको मद्रास जाना पड़ेगा। वह सिर्फ मेरे आने की प्रतीक्षा कर रही थी ?

कुछ क्षण चुप रह मैंने फिर पूछा—जाने से पहले मिनि ने मेरे बारे में कुछ कहा था न ?

—कुछ कहा था।····· जो बात सम्भव कह कर उसने आपके साथ नहीं की थी, आखिर उसने उसको ही असम्भव कहा। और उसके साथ चली गई।

उसके बाद मेरी जिन्दगी में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। लेकिन उस खोटे रुपये की बात अभी तक मेरे मानस-पट पर वर्तमान है। समय बीतने पर मैं उस रुपये की बात सोचता हूं। सोचता हूं ····· मेरी ज़िन्दगी की पहली मुहब्बत के साथ वह रुपया सचमुच ही खराब था। अगर नहीं, तो वह क्यों सन्दूक के एक अदृश्य अन्धकारपूर्ण कोने में पड़ा रहा ? उसकी गति क्यों पथरुद्ध हो गई ?

मही मास्टर

सैयद अब्दुल मलिक

एक युद्ध आया और निकल गया ।

मही कभी कविता करता था, अब नहीं करता । कविताएं भूल-भाल गया है । यह बात उसे अब भी बहुत कचोटती है कि कभी वह, सचमुच वही, कविता करता था । कभी-कभी छोटी-छोटी बातों को भी फेफड़े का पूरा बल लगा कर चिल्लाते हुए कह डालने की एक अनबूझ-सी चाह मन-प्राणों में जाग उठती है, जी चाहता है कि अपनी अधबूझ-सी अनुभूतियों को भी आदमी किसी के आगे भली-भांति समझा कर निवेदित कर दे । हो न हो, इसी को कविता कहते होंगे । सामान्य परिभाषा जाने बिना ही और जानने का प्रयास किए बिना ही मही कविता किया करता था ।

युद्ध आया और निकल गया ।

युद्ध के ही दौरान उसका बाप मर गया । उसने रोते-रोते श्राद्ध किया । फिर एक छोटी बहन का ब्याह किया । फिर कुछ दिनों के लिए गीत गाना स्थगित रख कर किसी फौजी ठेकेदार के यहां जुगाड़िया का काम किया । सिर पर विमानों का उड़ना उसे अच्छा लगता था, अपनी देह को छूती कारों का सरसराते निकल जाना उसे अच्छा लगता था और खाकी कमीज़-पतलून उसे अच्छी लगती थी । युद्ध समाप्त हुआ और वह घर लौट आया । घर आकर देखा कि पुरानी टिन की छानवाला उसका घर अब भी वैसा ही है, उसकी टूट-फूट अब भी वैसी ही है और मां-बहन के पहनावों में भी कोई विशेष उन्नति या परिवर्तन नहीं हुआ है । अपनी ओर ध्यान देने पर उसने यही पाया कि युद्ध से ब्रिटेन-अमेरिका को जो भी लाभ हुआ हो, मही मास्टर को कोई लाभ नहीं हुआ । मही मास्टर ने कई वर्षों से भूले-बिसरे गानों को फिर से स्मृति में सहेजने की कोशिश की । पर सुर याद होने पर भी बोल बिल्कुल बिसर गए थे; गला भी बहुत उतर-सा गया था ।

महीधर मैट्रिक पास है । पढ़ने-लिखने में वह अच्छा था । प्रथम श्रेणी में पास हुआ था । इसलिए उसका लगभग निश्चित-सा प्रत्यय था कि चिट्ठियां पढ़ने का काम मेरे जैसे व्यक्ति के लिए तो अन्याय ही है । और किसी के विरुद्ध

किसी प्रकार का अभियोग मन में लाए बिना ही उसने इस समूची विशाल वसुधा की सड़कें नापने में मन लगाया।

तब तक उसका बाप जीवित ही था।

लड़के-लड़कियों के बीच मही सबका लाडला था। कारण यह था कि उसमें एक ऐसा दैवदत्त गुण था, जो बहुतों में नहीं होता। उसका कंठ मधुर था और उसमें था सुर। हो न हो, कंठ से उंगलियों का भी कोई नाता होता होगा। सो, जहां-तहां से सीख-साख कर थोड़े ही दिनों में हमारे यहां चलनेवाले सभी वाद्य वस में कर लिए। मीठे गले का मीठा सुर और नुकीली उंगलियों में स्पर्श-मात्र से उस सुर के योग्य वाद्य-सुप्त ध्वनि को जगा डालने की शक्ति। दुखी होने पर भी, हो न हो, इसी कारण, उसे मित्रों का कोई अभाव न था। मैट्रिक पास करने पर नौकरी के लिए आवेदन तो वह भेजने ही लगा, साथ-साथ एक काम यह भी किया कि कई मित्रों-बंधुओं का आग्रह मान कर संगीत सिखाने का धन्धा शुरू कर दिया। सुबह-शाम वह चार घरों की लड़कियों को गाना सिखाने लगा। दो घर सुबह, दो घर शाम।

गीत वह आप लिखता और आप ही उनकी स्वर-रचना करता। और फिर उन्हीं गीतों को अपनी छात्राओं को सिखाता। पैसे की ज़रूरत भी उसे सबसे अधिक ही रहती थी, फिर भी उसका उत्साह पैसे कमाने में नहीं, संगीत में था। संगीत विद्या में पारंगत हो लेने के लिए उसके जी में एक उदग्र और उद्ग्रीव उत्साह जग उठा था। इसका सहयोग उसे गाना सिखाने के धंधे में अपने व्यावसायिक कर्तव्य ने ही दिया और इस सहयोग ने ही उसे आनन्द-प्रदान किया। उसके अन्तर में नई-नई कविताएं और उनके नए-नए सुर अंगड़ाइयां लेने लगे। हो सकता है, कविता और सुर की ओट में कुछ अनिश्चित से सपने भी अनजाने ही उसके अन्तर के किसी प्रांतर में जग उठे हों, पर इन सपनों का कोई नाम न था, शायद कोई अर्थ भी न था। फिर भी गीतों के सुरों की ही भांति ये सपने भी उसे सुहाने लगे थे। उसे ऐसा लगता था मानो इन सपनों का सचमुच ही कोई बड़ा सुन्दर अर्थ हो। अंधियारी रातें होतीं, बाहर रिमझिम दौंगरे गिर रहे होते और वह अपने छोटे-से साफ सुथरे घर के भीतर अकेला बैठा मगन-मन अपने सितार पर उंगलियां फेर रहा होता। रात के धारापात मुखर अंधकार में सुर बेचैन हो उठता। उसकी पलकों पर सुर से उमड़ आई लहरें खेलती रहतीं, कानों में दूर सागर के अन्तर में लीन ज्वारों के छंद बजते रहते और सुरों तथा वर्णों की छटा से उसकी कोठरी अर्थात् उसकी दुनिया उज्ज्वल हो-हो उठती। हां, जब मासान्त में छात्राओं के अभिभावकों से उसे गाना सिखाने के पारिश्रमिक के कुछ रुपये हाथ पसार कर लेने पड़ते, तब उसे अपने सपने असमर्थ अवश्य लगते।

उसे संकोच लगता, लाज लगती। गाना सिखाने के भी पैसे लेते हैं कहीं? उसका तो जी होता था कि वीणा, माधवी, जुरी, वासना आदि जैसी संसार की जितनी भी लड़कियां हैं, उन सबों को मैं एक दिन नहीं, चिरदिन, चिरजीवन बिना पैसे के ही, बिना पारिश्रमिक लिए ही गाना सिखाता रहूं।

वासना का गला ही सबसे मीठा था। अभी वासना छोटी ही थी। नौ-एक बरस की। बहुत होगी तो दस की होगी। पर उसे ताल का अच्छा ज्ञान है। एक बार गा देने पर ही वह सुर को सदा के लिए निभ्रांतिभाव से मन में बैठा लेती है। अपने से गाने पर भी कभी ताल से बेताल नहीं जाती। और जब-जब मही के सुर में सुर मिला कर गाती है, तब-तब मही को कितना अच्छा लगता है। उसका जी होता है कि गाता ही रहूं, गाता ही रहूं। उसके गले से वासना का गला कितना सुन्दर मिलता है।

वासना वन विभाग के अंचलाधिकारी की इकलौती बेटी है। लड़के चार हैं, पर बेटी एक वासना ही है। बड़ी सुन्दर है वासना। बटनदार फ्राक, गोरे माथे पर अकारण ही छिटक-छिटक आती पतली लटें और पतले-पतले लाल-लाल अधरोष्ठ वासना के लावण्यमय भविष्य की निभ्रांत घोषणा करते हैं।

पर मही को तो सबसे अधिक सुहाती हैं वासना की बातें। छोटी-छोटी संक्षिप्त-संक्षिप्त-सी बातें। उसे सबसे सुन्दर लगती है वासना की हँसी। उसे सबसे प्यारी लगती है वासना की कोमल मार्मिक आंखें। सचमुच कितनी मार्मिक आत्मीयता है उन आंखों में। गाना सीखते समय वासना आंखें बड़ी करके इकटक उसी का मुंह निहारती रहती है। कितनी गाढ़ी है वासना की चितवन। यों, सुन्दर तो माधवी भी है। और सुन्दर वह हो क्यों न? बारह-तेरह बरस की है। फिर भी वासना का नौ वर्षीय रूप ही मही को सबसे बढ़ा-चढ़ा लगता है। वह यह नहीं जानता और न जानने की कोशिश ही करता है कि ऐसा क्यों है। क्यों वासना का रूप ही उसे सबसे अधिक पसन्द है। यह जानने की उसे कोई ज़रूरत ही नहीं है।

वह कविता करता है। सुर में बिठाने के योग्य गेय कविता। गीत उसी का नाम है। कविताएं उसकी दरिद्रता को अतिक्रांत करके प्रवाहित होती हैं। वे उसके भाव-राज्य के ऊपर से प्रभावित होती हैं और उसके मणि-प्रवालमय अपनापे को अतिक्रांत करती हैं। कविताएं उसका अपनापा और उसके भाव-राज्य से न जाने क्या-क्या बातें चुन-चुन लाती हैं, जो उसी की होती हैं।

मही मास्टर महीधर का ही नाम हो गया है। मास्टर माने गाना सिखाने-वाला। उसने दो बरस तक वासना को गाना सिखाया। नौ वर्षीया वासना

ग्यारह वर्ष की हो गई। इन दो वर्षों ने वासना की आंखों को नई श्री, कंठों को नई स्वर-संपदा और जीवन को नवीन अनुभव-अभिज्ञता के मर्म-कोमल नीलारुण वर्णों का अस्पष्ट इन्द्रधनुष दिया। इन दो वर्षों में वासना ने मही से बहुत से गीत सीखे, बहुत सुर सीखे। शायद उसके सभी गीत और सभी सुर सीख लिए। मही मास्टर ने भी अपना प्राणसत्व ढाल कर वासना को गीत सिखाए। किसी अहेतुक मार्मिक भावुकता से उसने अपने सभी सुर वासना को सौंप दिए। फिर वह दिन आया, जब वासना उससे बिछुड़ गई। वन विभाग के अंचलाधिकारी का तबादला हो गया। जाते समय वासना ने कहा—सर, आप भी साथ क्यों नहीं चलते? और गीत सीखने रह गए।

—अब कौन-सा गीत रहा भला? मैं तो जो भी गीत जानता हूं, तुम्हें सब एक-एक करके सिखा चुका हूं।

—वही सर, वह जो आप ही तो कह रहे थे न कि आप मुझे कोई नया गीत सिखाएंगे।

—और कोई नया गीत रहा ही कहां, वासना? मेरे गीत बस इतने ही थे। इनके अतिरिक्त कोई और नया गीत मैं नहीं जानता।

—हूं हूं—आप भी कैसी झूठी बातें कह जाते हैं। ओहो, अब समझी, और गीत न होने की बात आप इसलिए कह रहे हैं कि अब और जो गीत होंगे, उन्हें आप जुरी को सिखाया करेंगे।

मही हँसा।

—अच्छा वासना, कभी कोई नया गीत लिखूंगा तो तुम्हें भेज दिया करूंगा।

—आप न होंगे, तो उन्हें सुर कौन देगा? आप तो ऐसा कहते हैं मानो कोई और भी दुनिया में ऐसा मौजूद हो, जो आपके गीतों को सुरों में बांध सकता हो।

—सुर तो कोई भी दे सकेगा। तुम्हें तुम्हारे पिताजी बहुत अच्छा मास्टर जुटा देंगे, वासना।

वासना चली गई।

उस दिन वासना से विदा होकर घर लौटने पर मही का मन बहुत ही भारी-भारी था। इतनी छोटी-सी लड़की है तो क्या, वासना फिर भी कितनी भावुक, कितनी मर्मी और कैसी बड़ों जैसी समझदार है। घर पहुंचने पर मां के पास बैठ कर मही बोला—आज वासना चली गई। बड़ी कसक-सी हो रही है।

उसके भरे गले की गम्भीरता से मां का गला भी भर आया।—सरकारी नौकरी ठहरी, आदमी को कहीं एक ठौर पर अधिक रहने ही कब देती है।

मही बोला—लड़की लड़की नहीं, मानो वन की चिड़िया है। क्या ही प्यारा मोहक कंठस्वर है।

मही की बहन लखिमी वहीं थी। बोली—सचमुच। मेरी तो बस कुल एक ही दिन बात हुई थी उससे। बस उतने में ही उस लड़की ने मुझे मानो मोल ले लिया था।

वासना के जाने के कई दिन बाद तक मही जुरी को गाना सिखाने नहीं गया। उसके मन की उछाह न जाने कहां बिला गई थी। बस इतनी ही बात उसके मन को बार-बार मथती रही कि वासना बड़ी अच्छी लड़की है, बड़ी ही अच्छी।

दिनों के रंग बदल गए। सब पर एक पुरानेपन के रंग की छाप-सी लग गई। पूरे गगन तल पर अकारण सघन मेघ घिर आए। पर जीविका के प्रयोजन ने मही मास्टर को अब भी उसी राह लगाए रखा। उसके भारी गले से गीत के बोल सुर में बंधे ही उच्चारित होते रहे। उसकी अवश उंगलियां अब भी उसी प्रकार कुछ नीरव तारों पर पछाड़ खातीं, किसी खोए सुर के पुनरुद्धार के प्रयास में लग रहीं।

युद्धकाल आया।

फिर एक दिन युद्धकाल का अवसान हो गया।

बाहर की दुनिया में बहुत-से हेरफेर हुए, पर मही मास्टर के जीवन में वैचित्र्य आ जाने पर भी परिवर्तन कोई नहीं आया। मां-बहन को लिए वह संसार के भंवरजाल में धंसा पड़ा था। हर खोज में उसने संग्राम की क्रमाधिक कठिनतर जटिलता का अनुभव किया। उसे इस बात की परीक्षा करने का अवसर ही न मिला कि मेरे गले में पहलेवाली मधुरता अब भी बनी हुई है.... कि अब बिल्कुल नहीं रही। अब तो उसे अपने मैट्रिक पास किए होने के इतिहास को पुनरावृत्ति करने का प्रयोजन ही पग-पग पर अनुभूत होता था। नौकरी के लिए वह जो भी अर्जियां देता, उनमें उसे बस एक इसी बात को बार-बार लिखना पड़ता और इससे उसे बड़ी ही विरक्ति होती। पर इससे भी अधिक विरक्ति, उसे इस बात से होती कि उसकी प्रत्येक अर्जी का अवसान विफलता में ही होता था। उसकी एक भी अर्जी का उत्तर नहीं आता। हर बार उसे बहुत सी आशा होती और हर बार घोरतम निराशा उसे नितान्त अस्तव्यस्त कर डालती।

गीतों के बोल ही नहीं, अब तो उनके सुर भी वह भूल-भाल गया। आप जीवित रह कर मां और बहन को जीवित रखने का भारी दायित्व लिए वह सूजे तलवों में तपड़ चटियल विस्तारों की चट्टानी नोकों की चुभन अनुभव करने लगा। यद्यपि गाना सिखाना तो वह बंद नहीं कर सका, फिर भी व्यवसाय-

वृत्ति से संगीत-शिक्षण का धंधा अपनाने की विवशता पर वह अपनी गतानुगतिकता के मारे अधीर हो-हो उठता। अक्सर उसका जी कर आता कि कहीं कोई बड़ी-सी नौकरी पाकर रातों-रात बड़ा आदमी बन जाऊं। युद्धकाल में रातों-रात बड़े आदमी बन जानेवाले अन्यान्य ठेकेदारों को देख-देख कर उनकी तरह बन जाने को उसका भी जी ललचाता रहता। पर अपनी सारी व्यग्रता और सारे प्रयासों के बावजूद मही मास्टर, बस, मही मास्टर ही रह जाता। कुछ और हो लेना उसके भाग्य में कभी भी घटित न हो पाता।

मही मास्टर का आदर्श निरन्तर सिकुड़ता चला गया। उसके छोटे-छोटे अभाव विराट आकार धारण करके उसे पूरी तरह दाब लेते और वह क्षुद्रातिक्षुद्र हो उठता। किसी-किसी दिन वह बड़े दुख के साथ अनुभव करता कि मेरे अंतस्तल को सभी पुरानी छवियां बिल्कुल धुल-पुंछ गई हैं और मेरे भविष्य के कितने ही सपने न जाने कहां किस लोक में विला गए हैं। वह अनुभव करता कि मेरा वर्तमान एक अत्यन्त ही क्षुद्र वर्तमान है, जिसकी अत्यन्त संकरी परिधि में मेरी सारी आशाएं और मेरी सारी कामनाएं मछलियों की भांति एक-दूसरी को दावे टिनबन्द पड़ी हैं।

गुवाहाटी के 'उजान (ऊपरले) बाज़ार' के फटेहालों की बस्ती—ब्रह्मपुत्र तट के फटेहाल घरों की एक पांत के एक सिरे पर एक छोटा-सा कमरा है, जिसमें मही मास्टर का डेरा है। उसके आगे, उसके पीछे और उसके चारों ओर जहां तक दृष्टि जाती है, मटमैले अर्थात् मिट्टी से अभिन्न वर्ण के कपड़े पहने फटेहाल लोग ही दिखाई पड़ते हैं। उनमें से कितनों के पास तो घर नाम की कोई चीज़ भी नहीं है। कहीं घूर-कतवार से बटोर लाए तिरपालों के टुकड़ों, सुपारी के छज्जों, फटी बोरियों और काठ की तख्तियों से उन्होंने जैसे-तैसे 'बासे' जोड़ लिए हैं। रातों को उन्हीं में गुड़ीमुड़ी लेट रहते हैं। ढाई-ढाई, तीन-तीन हाथ के ये बासे ही उनके घर हैं। पुरुष जहाज़ का माल. ढोते हैं। स्त्रियां सवेरे ही थोड़ा-सा जो कुछ भी मिला, "एक गाल" यानी कौर दो कौर खाकर कहीं चली जाती हैं। सबके पास झुंड के झुंड बाल-बच्चे हैं। उनकी देहों से दुर्गन्ध उमड़ती रहती है। उनके बालों में दुनिया भर की धूल, रेत और मैल की तहें जमी रहती हैं। ये परले सिरे के अश्लील लोग हैं। विशेष रूप से स्त्रियां। मही मास्टर को पहले कभी इस धारणा का भान भी न हुआ था कि स्त्रियां भी इतनी अश्लील हो सकती हैं। उनकी जघन्य जीवन-यात्रा की वीभत्सता पर, मही मास्टर अधीर-सा हो उठा था।

उनसे दूर खिसक कर कहीं किसी भले ठौर पर जा रहने का जी तो मही मास्टर का होता था, पर जाए कहां, किसी ठौर की जुगत-जुगाड़ करना उससे बन नहीं पड़ा। अपनी नौकरी से प्राप्त सामान्य वेतन का अधिकांश धन

लगा कर, कोई अच्छा-सा घर ले रहने को विलासिता, उसे हास्यकर प्रतीत होती थी।

गुवाहाटी में नया रेडियो स्टेशन खुलने पर, मही मास्टर को वहां क्लर्क का काम मिला और वह गुवाहाटी आ गया। मां-बहन को साथ न लाया। उनके साथ रहने से उसका काम नहीं चल पाता। फिर, न जाने कितने दिनों के कितने विफल आवेदनों के बाद तो इस बार उसे यह काम नसीब हुआ था। रेडियो पर काम करने का मौका मिल जाना उसे बहुत ही भला लगा। इसलिए नहीं कि रेडियो विज्ञान का उत्कृष्टतम उद्भावन है, बल्कि इसलिए कि रेडियो एक अनबूझ वैचित्र्य है।

अर्ज़ी में उसने लिखा था कि मैं गाना गाना जानता हूं, बाजा बजाना जानता हूं और फिर मैट्रिक पास भी हूं। सोचता था, हो न हो, यह काम मुझे गाना-बजाना जानने के कारण ही मिला है। उसे यह बहुत अच्छा लगा। निर्दिष्ट दिन से दो दिन पहले ही वह काम पर पहुंच गया।

पर यह देख कर वह थोड़ा अप्रतिभ हुआ कि गाना-बजाना जानने पर भी काम क्लर्क का मिला है। उसने मन को ढाढ़स दिया कि चलो अच्छा ही हुआ, इस तरह थोड़ा दफ्तरी काम भी सीख रखना कुछ बुरा न होगा।

गुवाहाटी का रेडियो स्टेशन असम के लिए एक नई चीज़ है। स्टूडियो देखने आनेवालों का तांता लगा ही रहता है। सुबह सवेरे से ही लोग आने लगते हैं। यही क्या कोई कम आश्चर्य की बात है कि आदमी की बातें बेतार के सहारे हवा में उड़ती-तिरती फिरती हैं, दुनिया भर की बातें। पुरुषों-स्त्रियों, लड़के-लड़कियों, युवक-युवतियों, सब में स्टूडियो देखने की एक धूम-सी मच गई है। रेडियो के अधिकारी ही नहीं चपरासी तक, प्रत्येक कर्मचारी छाती फुलाए फिर रहा है। मानो प्रत्येक एक-एक मारकोनी, एक-एक वैज्ञानिक जगदीश बसु ही हो।

उन्हीं के बीच मही मास्टर है। उसका काम भी अद्भुत ही है। उसे बैठे रहना पड़ता है। हां, बैठे रहना ही उसका काम है। बैठा-बैठा वह स्टूडियो में आनेवाले परिचित-अपरिचित सभी लोगों के आगमन का उद्देश्य पूछता है और फिर उनको ठिकाने पर भेजता है। कोई किसी से मिलने आता है, कोई कागज़-पत्र देने आता है, कोई अपने कंठ की स्वर-परीक्षा कराने आता है और कोई अपने प्रोग्राम के रिहर्सल के लिए आता है। उन सबकी तो पूछ और सबकी चिन्ता में मही मास्टर को व्यस्त रहना पड़ता है। स्टूडियो देखने की अनुमति पानेवालों को वह अपने साथ ले जाकर स्टूडियो दिखाता है। वह आप भी सब कुछ समझना चाहता है और जितना कुछ समझता है, वह थोड़ा-बहुत समझा भी देता है। जैसे, यह अमुक वस्तु है, इसे यों करते हैं,

इत्यादि । नए-नए सीखे अंग्रेज़ी शब्द का एक खास स्टाइल से उच्चारण करना उसे बहुत भाता है। अपने आपको अच्छा लगता है। जब-तब स्टूडियो फाल्गुन के आकाश का रूप धारण करता है, रंग-बिरंगे कपड़े पहने रंग-बिरंगे लोगों से भर जाता है। संस्था में लड़कियां ही औरों से अधिक आतीं हैं। बड़ी सज-धजवाली, बड़ी सुन्दर लड़कियां। उनके बीच आपा भल, मही मास्टर अपने दुख भरे वर्तमान को अतिक्रांत करके किसी ऐसे नए देश में जा पहुंचता है, जहां केवल रूप, सुर, चिन्ताहीन आनन्द का मनमोहक दरबार लगा रहता है । ऐसे समय मही को अपने क्षुद्र परिचय का ध्यान रखने की इच्छा नहीं होती। उसे ऐसा लगता है मानो स्टूडियो उसी का हो और ये सभी मानो उसी के अतिथि हों। उसे अभ्यागतों से आत्मीयता का व्यवहार करने की धुन-सी लगी रहती है ।

रात को उजान बाज़ार की झोंपड़ियों के बीच अपने डेरे के कमरे पर पहुंचते ही उसके मन-प्राण सिकुड़-सिमट जाते हैं। एक ही दिन की अवधि के भीतर आकाश-पाताल-सा अन्तर उपस्थित कर देनेवाला यह कैसा परिवर्तन घटित हो जाता है। वह सोचता है—मेरा कौन-सा जीवन वास्तविक है?—लड़कियों के बीच व्यस्तता में कटा दिन की ड्यूटी का समय अथवा इस झोंपड़ी में आंखें मूंदे पड़े रहने में कटती रात का यह घोर अंधकार? वह अपने ऊपर ज़ोर डालकर इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि निद्रा के लिए यह रात्रि-यापन मेरा वास्तविक जीवन नहीं है, मेरा समस्त जीवन तो मेरी ड्यूटी का समय है। रात को सोता-सोता वह उसी की कामना करता है। पौ फटते ही रात बीत जाएगी और मैं दफ्तर चला जाऊंगा। फिर तो सारा दिन हंसी, आनन्द और आपा-भूल शांति के बीच ही कट जाएगा ।

वेतन के पैसे से जैसे-तैसे दाल-भात खाकर जो थोड़े से रुपये बच रहते हैं, उन्हें मां-बहन के पास भेजते समय वह प्रति मास यही सन्देश लिख भेजता है कि इस मास तो इससे अधिक भेजना सम्भव न हुआ, पर अगले मास कुछ अधिक अवश्य भेजूंगा। पर वह अगला मास आज तक तो नहीं आया। फिर भी वह कोई विशेष अभियोग अपने मन में नहीं पालता। सोचता है—भविष्य में मेरी उन्नति तो होगी ही; निश्चय ही होगी ।

उसके हृदय पर नन्हें-नन्हें चरणचिह्न छोड़ते उसके नाना-वर्णमय दिन बीतते जाते हैं । धीरे-धीरे उसके आनन्दों को अवसाद जकड़ लेता है। वैचित्र्य उसे दिखाई नहीं पड़ता। ब्रह्मपुत्र के जल का रंग भी बदल जाता है, धूसर हो उठता है ।

उस दिन उसका मन बड़ा ही भारी था। इसका कोई कारण तो न था, पर मन, मन ही ठहरा। कभी-कभी हमारा मन अकारण भी भारा-क्रांत हो रहता है। कोई हेतु नहीं है, कोई कारण नहीं, कोई औचित्य नहीं

होगा; फिर भी मन के सारे आनन्द कहीं दूर भाग जाते हैं। फिर तो प्रफुल्ल आकाश भी प्रफुल्ल नहीं होता, हवा तक बोझ-सी बन जाती है। मही मास्टर इस प्रयत्न में था कि सायास ही सही, अन्य दिनों की सी थोड़ी-बहुत स्फूर्ति तो अनुभव कर ली जाए। पर आज अकारण ही उसके मन का सारा आनन्द आप ही आप छूमंतर हो गया था। इस व्यर्थता के मारे वह और भी खिन्न था।

स्टूडियो के आगे के दालान के एक कोने में एक कुर्सी डाले वह यों ही अनमना बैठा रहा। यों तो और दिन भी वह उसी तरह बैठा करता था, पर और किसी भी दिन स्टूडियो उसे इतना नीरस नहीं लगा था। उसे कुछ पुराने गीतों और पुराने लोगों की यादें सता रही थीं।

तभी एक बड़ी-सी हल्के हरे रंग की सुन्दर कार आकर स्टूडियो के आगे रुकी। मही को कोई विशेष कुतूहल न हुआ। फिर भी मही का तो काम ही यही था कि चाहे कोई भी क्यों न आए, अभ्यर्थनापूर्वक अभ्यागत की अगवानी उसी को करनी पड़ती थी, बढ़ कर अभ्यागत को आदरपूर्वक भीतर ले जाने का काम उसी का था। अवसाद से ग्रस्त होने पर भी वह बैठे से उठ खड़ा हुआ और कार तक गया। इसी बीच कार का फाटक खुला और उससे एक युवती के साथ एक युवक उतरा। युवक पहनावे से तो पूरा साहब था---कीमती कपड़ों का सूट, पतीत्व का गौरव-सौरभ और आत्मविश्वास का गाम्भीर्य। युवती भी पूरी सजी-धजी थी। पाटंबर की 'मेखला' और चादर, मुख के स्निग्ध वर्ण और गति की अचपलता से, वह भी अनकहे ही यह बात जता रही थी कि रुचि और आचार का ज्ञान मुझ में पूरी मात्रा में है।

दोनों के कार से उतरते ही मही आगे बढ़ कर उनकी अगवानी कर लाया। उसने एक बार दोनों का मुंह देखा। पर उन्हें मही की ओर देखने का अवसर ही कहां था? वे तो स्टूडियो देखने आए थे। पर युवती साथ ही एक और काम से भी आई थी। उसे रेडियो पर गाने का अवसर पाने की अधिकारिणी बनने के लिए अपने कंठ का 'टैस्ट' देना था। रेडियो अधिकारी कम-से-कम एक बार परीक्षा किए बिना किसी को भी रेडियो पर गाने नहीं देते। यही नियम है।

पास आते ही युवक ने मही के हाथ की ओर एक विज़िटिंग कार्ड बढ़ा दिया। मही ने हाथ बढ़ा कर कार्ड ले लिया और दोनों को बैठने के लिए कह कर आप भीतर गया।

युवक-युवती ने आसन ग्रहण किए और दोनों भीतर से अपेक्षित अधिकारी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

कार्ड अधिकारी को देकर मही फिर बाहर लौट आया और युवक के पास जाकर बोला---आप लोगों को थोड़ी देर बैठने को कहा है। वह थोड़ी देर में आ रहे हैं।

युवक को इस वात के उत्तर में कुछ कहने का प्रयोजन बोध न हुआ। उसने एक सिगरेट सुलगाई। युवती ने मुख के हास को अधखिली मुद्रा में स्थिर किया। वड़ी थकान की-सी भंगिमा से वह कुर्सी पर और अपनी दृष्टि ऊपर छत की ओर लगा कर जम गई।

मही अपनी कुर्सी पर जा वैठा और सिकुड़ा-सिमटा बैठा रहा। थोड़ी ही देर में एक चपरासी आकर दोनों अभ्यागतों को भीतर अधिकारी के पास ले गया। विज़िटर के आने पर मही को उसके साथ-साथ ही रहना पड़ता है। लिहाज़ा उस युवक-युवती युगल के साथ वह भी भीतर गया।

थोड़ी-सी देर इधर-उधर की वातें करने के बाद अधिकारी ने मही से कहा—इन्हें सारे स्टूडियो भली-भांति दिखलाइए, ले जाइए। और फिर युवक-युवती से कहा—आप लोग चलिए, ये सब कुछ दिखला देंगे।

आगे-आगे राह दिखाता मही और पीछे-पीछे युवक-युवती युगल। मही मास्टर ने उन दोनों को एक-एक करके सारे स्टूडियो दिखला दिए; यह 'टाक्स' का है, यह 'ग्रामो स्टूडियो' है, यह 'म्यूज़िक स्टूडियो' है। फिर वह उन्हें 'कंट्रोल रूम' में ले गया और वहां की जितनी वातें वह जानता था, सब समझा दी। रिकार्ड कैसे किया जाता है, वायस कंट्रोल कैसे होती है, इत्यादि।

इस पूरे काम में पंद्रह मिनट से अधिक समय नहीं लगता। वे लौट आए। युवती वोली—मैं गाने का 'आडीशन' दूंगी। गाने का 'आडीशन' कहां होता है?

मही वोला—'म्यूज़िक स्टूडियो' में होता है। 'आडीशन' होने में अभी कुछ देर है। आप लोगों को कुछ देर वैठना पड़ेगा।

युवक वोला—अच्छा, हम वाहर वैठते हैं, 'आडीशन' का समय होने पर बुला लें।

मही वोला—वहुत अच्छा।

वे दोनों फिर लौट कर 'विज़िटिंग रूम' की कुर्सियों पर बैठ गए। युवक ने फिर एक सिगरेट सुलगा ली। युवती 'वैग' से दो इलायचियां निकाल कर चवाने लगी।

थोड़ी देर में और वहुत से लड़कों और लड़कियों के आ जाने से 'विज़िटिंग रूम' भर उठा। इनमें कुछ का आना 'आडीशन' के लिए हुआ है, तो कुछ उन 'आडीशन' वालों के साथ आए हैं।

कुछ और देर वाद 'आडीशन टैस्ट' शुरू हुआ। मही मास्टर ने सवसे पहले उस युवती को ही वुलाया। युवती निःसंकोच भाव से, पर साथ ही किसी अज्ञात भय से ललौंही-सी पड़ती हुई 'म्यूज़िक स्टूडियो' में घुसी। उसके आगे माइक्रोफोन को थोड़ा-सा ठीक-ठाक करके लगाने के बाद मही स्टूडियो

का द्वार बन्द करता हुआ बाहर लौट आया और एक अन्य स्टूडियो में पहुंच कर 'स्पीकर' की ओर उसने कान लगाया। वह यह सुनना चाहता था कि युवती कैसा गाती है।

युवती कुछ-कुछ अस्थिर कंठ से गा रही थी :

हे अनचीन्ही वन विहंगिनी, निहित तुम्हारे सुर में
अनचीन्हा परिचय विहीन मेरा परिचय है;
लयमानी लय में विलीन मेरा परिचय है!
खोए पथ का अनुसन्धानी मेरे मन का पन्थी
पा स्वर-दीप्ति तुम्हारी, तम में भी निर्भय है;
और अकेला भी चलने को कृतनिश्चय है!

यह कंठ, यह सुर और ये बोल—मही मास्टर ने मानो कहीं न कहीं पहले भी सुने थे। उसका जी हुआ कि गीत अन्त तक सुनूं; पर तभी कोई चपरासी आया और उसे बुला ले गया।

स्वर-परीक्षा के बाद युवती हँसती-हँसती स्टूडियो से बाहर आई और प्रतीक्षा में बैठे युवक के पास पहुंची। 'ग्रामो स्टूडियो' से लौट कर अधिकारी ने हँसते हुए कहा—आप बहुत अच्छा गाती हैं। हां, यह ज़रूर लगता है कि विशेष प्रैक्टिस नहीं है। फिर भी आप गा सकेंगी। आपका गला कमाल का है। अच्छा, स्वर-परीक्षा का निर्णय मैं डाक से सूचित कर दूंगा।

युवती की नाक पर पसीने की एक नन्हीं-सी बुंदकी उभर आई। वह हँसकर बोली—बहुत दिनों से अभ्यास छूट-सा गया है। जो सीखा था, जो गाया था, सो पहले ही सीखा-गाया था।

—फिर भी आज तो आपने बहुत अच्छा ही गा लिया है। अच्छा, मैं आपको प्रोग्राम देने की कोशिश करूंगा।

—बहुत अच्छा—कह कर कृतज्ञता का एक संक्षिप्त-सा धन्यवाद जताती हुई युवती बोली—तो अब मैं चलूं?

—अच्छा जी, फिर दर्शन होंगे।

गम्भीर युवक ने भी विदा ली।

और तब लयलास्यमयी गति से रेडियो स्टेशन की सीढ़ियां उतरती हुई युवती कार के पास पहुंची। थोड़ा-सा रुक कर उसने अपनी ओर व्यग्र चितवनों से निहारते लोगों को मुड़ कर देखा।

मही थोड़ी दूर पर खड़ा था। आगे बढ़ आया। और पूछने लगा—आपका कुछ रह तो नहीं गया है।

—वह गीत एक कागज़ पर लिखा हुआ था, स्टूडियो में रह गया होगा।

--पल भर रुकी रहें, ला देता हूं।

मही लगभग दौड़ता हुआ स्टूडियो के भीतर गया और कागज़ ढूंढ़ लाया। सरसरी निगाह दौड़ा कर देखा कि लिखावट पहचानी-सी है। इससे अधिक देखने या सोचने का समय न था। कागज़ लाकर उसने युवती के आगे बढ़ा दिया। युवती ने हाथ बढ़ा कर कागज़ ले लिया।

उधर युवक ने कार के भीतर से ही पुकारा--काम हो गया हो तो आ जाओ न, वासना! बहुत देर हो गई है।

कार चल पड़ी।

मही कुछ देर तक उसी ओर ताकता रहा। फिर भीतर लौट आया।

पास खड़े किसी ने पूछा--क्यों मही, मन पर कोई गहरी लकीर तो नहीं डाल गई?

हँसने का प्रयास करता हुआ मही बोला--लकीर क्या डालती? लकीर तो पुंछ चुकी है।

दफ्तर से छुट्टी पाकर मही डेरे पर लौट आया। मेज़ पर छोटी-सी आरसी पड़ी थी, उसे उठा कर अपना मुंह ध्यान से देखने लगा।

मुझ में ऐसा परिवर्तन हो गया है कि वासना मुझे पहचान तक न सकी? और यह तब, जबकि वासना आज भी मेरे ही गीत मेरे ही सुर में गाती है।

कुछ देर वह यों ही बैठा रहा। फिर चाय पिए बिना ही घर से निकल पड़ा।

पानीकल के पास की एक अकेली चट्टान पर बैठ कर आज बहुत दिनों के बाद उसने एक गीत याद करके गाने की कोशिश की। तब गीत के बोल फूटने के बदले उसकी दोनों आंखों से छलछलाहट फूट पड़ी।

दृष्टि सामने बह रही ब्रह्मपुत्र पर जा पड़ी। उसने देखा, पानी का जो स्रोत नीचे की ओर बहता है, वह सदा नीचे ही नीचे को बहता चला जाता है, मुड़ कर फिर ऊपर की ओर चलने का कभी नाम नहीं लेता।

अनुवादक : युगजीत नवलपुरी

उड़िया कहानी

भोज

वसन्त कुमारी पटनायक

दीदी ने कल नहाते समय कहा था कि स्कूल में भोज होगा और वह दीदी के साथ अवश्य स्कूल जाएगा।

सारी रात बिनू की आंखों में नींद नहीं आई। बार-बार मां को नींद से जगा कर पूछता कि सुबह हुई या नहीं। बहन ने कहा है, वह हमें आज स्कूल ले चलेगी। कई बच्चों से परिचय भी करा देगी। बिनू बिछावन पर पड़ा-पड़ा सोच रहा है। हठात् घबड़ा कर उठ बैठा और मां को हिला-हिला कर कहने लगा—मां, मां उठ····सवेरा हो चला, कौवे कांव-कांव करने लगे।

नींद टूटी नहीं थी। निद्रित आंखों से खिड़की की ओर देख कर मां ने उत्तर दिया—ओह, यह बच्चा किसी को ज़रा सोने तक न देगा। अभी इतना अंधेरा है, सवेरा कहां हुआ रे?

—हां, एक कौवा बोल गया है। मैंने साफ सुना है।

मां के जागते ही बिनू ने रमा को पुकारा—दीदी, सुबह हो गई। उठोगी नहीं? ओ दीदी।

किवाड़ खोल कर तीनों बाहर आए। मां को बिनू का बार-बार का तकाज़ा सहने की बजाय उसकी बात मान लेने में ही कल्याण प्रतीत हुआ।

तालाब के पत्थर पर बैठ हाथ में एक झांवां ले बिनू अपनी देह को रगड़ रहा है और बीच-बीच में पूछ लेता है—मां, अब मैं गोरा दीखता हूं? मां के लाख कहने पर भी बिनू का मन नहीं मानता। वह और ी रगड़ता जाता है। अन्त में बिनू ने ज़िद पकड़ ली कि मां एक बार आकर देख जाए। बर्तन मांजना छोड़ कर मां ने आकर देखा, झांवें की रगड़ से देह का नर्म चमड़ा जैसे छिलने पर आ गया है और वह स्थान लाल हो गया है। बेटे के हाथ से झांवां छीन कर उसे अपनी ओर खींचते हुए मां ने कहा—अरे झांवां से कोई देह रगड़ता है?

स्नान तो समाप्त हुआ, पर बिनू की सारी देह जलने लगी। पोंछ-पांछ कर बिनू घर आया। घर की मिट्टी की दीवाल में एक दर्पण टंगा है। वहीं आकर बिनू खड़ा हो गया। हाथ में कंघी है। कंघी के बीच के सब दांत झड़ गए है। दोनों छोरों पर जो आठ-दस दांत हैं, वस उतने ही से वह कंघी कर रहा

है। यानी तेल से सने अपने कड़े बालों को संवारने की चेष्टा में लगा है। मन आनन्द से भरा है, आज उसका सब कुछ साफ-सुथरा है।

स्कूल के फाटक के पास पहुंच कर विनू ने कहा—दीदी, मुझे सभी चीज़ें दिखा देना। साथ ही बच्चों के साथ मेरा परिचय भी करा देना।

—अच्छा। देखो, यहां सुन्दर दूब उगी है, और यहां मोथा फैला है।

—अरे हां तो—कह कर, जीवन में जैसे कभी घास न देखी हो, विनू ने झुक कर अपने हाथ से एक बार घास को छू लिया। इसके बाद दोनों आगे बढ़े।

एक के बाद एक वृक्ष रमा दिखाती गई। मंदार, पलाश, कृष्णचूड़ा, रजनीगंधा, आम, बेल आदि। कोई फलफूल से लद गया है और कोई अभी तक ठूंठ पड़ा है। किन्तु विनू की आंखों में आज सब सुन्दर है। आंखों में इन्द्रधनुष का रंग चढ़ा कर चारों ओर निहारता है, फिर आगे बढ़ जाता है।

लता-वृक्ष देखना समाप्त हो चला। बाकी रह गया स्कूल घर, जहां बच्चे आराम से बैठ कर पाठ पढ़ते हैं। रमा ने देखा कि क्लास रूम खुला नहीं है। टूटी खिड़की से ऊपर उठ कर, भाई का हाथ पकड़ वह भीतर ले गई। किवाड़-खिड़की बन्द। चारों ओर अंधेरा। चलते समय बैन्च से देह टकरा जाती है और उसके साथ-साथ विनू के मुंह से अनायास निकल पड़ता है—बाप रे बाप!—अन्त में रमा के कुरते को खींच कर कहा—नहीं, दीदी, यहां भूत होगा। चलो, लौट चलें।

मुंह से बात निकली नहीं कि बिजली-बत्ती जल उठी और उसी रोशनी में देखी गई रमा के मुंह की छिपी हँसी। विनू चकित होकर देखने लगा—दीदी अनेक बातें जान गई। उसके कहने से बिजली-बत्ती भी जलती है।

आनन्द से ज़मीन पर पैर नहीं पड़ते, इस जगह से उस जगह जाते और लौट आते। ऊपर नीला आकाश नहीं कि नीचे मुलायम घास का गलीचा नहीं, फिर भी उस बन्द घर में दो मानव शिशु वसन्तकाल के कीट-पतंग के समान आनन्द में अपने को भूल गए हैं।

मैदान में दल के दल शिशु टहल रहे हैं। परिचित शिशुओं को देख भाई का हाथ पकड़, रमा उसके पास गई। बच्चों का सारा दल विनू को देखने लगा, सभी के ओंठों पर मुस्कान है।

—यह कौन है, रमा?

—मेरा भाई।

—ठीक अनार्य की तरह दीखता है।—किसी ने टिप्पणी की।

रमा का मुंह सूख गया। सन्देहभरी आंखों से रमा ने भाई की ओर एक बार अच्छी तरह देखा। विनू की चपटी नाक, मोटे ओंठ, धंसे गाल और

पके ताल के समान देह का रंग—कहीं भी ज़रा-सा दोष नहीं देख पाई। भाई के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—तुझे वह झूठमूठ ऐसा कह रहे हैं। डरो मत।

विनू डरा नहीं है, यह दिखलाने के लिए वह हँस दिया। मोटे ओंठों के बीच से पतली जीभ बाहर निकली और लपलपाती हुई भीतर घुस गई, ठीक सर्प के समान।

—ए बच्चे, ज़रा हँसना तो···।

—नहीं। विनू मुंह सुखा कर खड़ा हो गया।

—अरे। निहायत अबोध शिशु है। हँसो तो।

—दीदी, खेलने चलो।

विनू दीदी का हाथ पकड़ कर खेलने चला गया।

खेलते-खेलते देह से पसीना बह चला। सूरज सिर से नीचे उतर आया, फिर भी रसोई समाप्त न हुई।

दल के दल बच्चे चल पड़े—एक हाथ में चटाई, दूसरे हाथ में भोजपत्र। एक दल के अन्तिम छोर पर बैठे हैं विनू और रमा। विनू की लोभभरी दोनों आंखें लगी हैं भोजपत्र पर। बीच-बीच में दीदी को चुटकी काट लेता है। दीदी के आरम्भ करने पर ही वह आरम्भ करेगा। खेलते समय दीदी ने उसे बार-बार समझाया है कि दीदी के आरम्भ करने पर ही वह आरम्भ करेगा।

स्कूल के प्रबन्धकर्ता घूम-घूम कर देख रहे हैं कि सभी को ठीक ढंग से भोज दिया जा रहा है या नहीं। हठात् एक की नज़र पड़ गई। रमा के पैर पर थोड़ी-थोड़ी खुजली है। रमा को देख वे चिल्ला पड़े—तुझे खुजली है, दूसरों को भी हो जाएगी। तुम अभी जाओ, खेलो। इन लोगों के खा चुकने पर तुझे बुला लूंगा।—रमा उठ पड़ी।

विनू विकल होकर रमा के मुंह की ओर देखने लगा।

—यह कौन है?

—मेरा भाई।

—अच्छा, उसे भी साथ में ले जाओ। तुम्हारे खाने के समय वह भी खाएगा।

भाई-बहन दोनों उठ कर चले गए। खाद्य पदार्थों को लोभभरी दृष्टि से देखते हुए।

—समझा विनू, उन लोगों के खा चुकने पर हम लोग खाएंगे।

—नहीं दीदी, मुझे बड़ी भूख लगी है। मतली आती है। सवेरे मां के खाना देने पर तूने मना किया था।

—अच्छा, यहीं तो और ज़रा-सा विलम्ब है। देख न, कितनी अच्छी चीज़ें बनी हैं। सवेरे तो मां परवाल (पानी मिला भात) दे रही थी, उसे खा लेने पर तुम क्या अच्छी चीज़ें अधिक खा सकते थे ?

—मुझे मतली आ रही है।

—अच्छा, तब चलो, दो बेलपत्र सूंघ लेने से मतली बन्द हो जाएगी।

बेलपत्र सूंघने के बदले दो-चार मुट्ठी बेलपत्र चबा चुकने पर बिनू ने कहा—दीदी, बड़ी भूख लगी है।

—अच्छा देखो। क्या चीज़ें बनी हैं, तुझे मैं यहीं से दिखाए देती हूं।—कह कर रमा ने घास-फूस जमा किए। उन्हें मछली-मांस के रूप में, ईंट-पत्थर को मिठाई के रूप में और घास-पत्र तरकारी के रूप में दिखलाए। बिनू की भूखी आंखों को देख रमा ने भूत सम्बन्धी गप्प आरम्भ की—यहीं इस दीवार के उस ओर जो अंधेरा घर देखते हो न, उसमें भूत रहता है।

भूतों की गप्पों में कितना समय निकल गया, पता नहीं। डूबते सूरज की लाल किरणें बिखर पड़ीं। दोनों शिशु उसी घास पर सटे बैठे हैं। हठात् किसी का शब्द सुन कर रमा पीछे की ओर मुड़ी, तो देखा कि चपरासी पुकार रहा है। प्रसन्न हो रमा भाई का हाथ पकड़ कर उठी—चलो, खाने। देखो न, चपरासी बुलाने आया है।—सूखे मुंह से हँसी व्यक्त कर चपरासी को देख रमा ने पूछा—उन लोगों ने खा लिया ?

—हां, सभी खा कर चले गए। तुम यहीं बैठी हो, घर नहीं जाओगी क्या ?

अनायास मुट्ठी में से भाई का हाथ अलग हो गया। रमा की आंखों में पानी आ गया।

दया दिखा कर चपरासी ने कहा—चलो, मैं घर छोड़ आऊं।

—ज़रूरत नहीं। हम अकेले चले जाएंगे।

भोज की जगह जूठे पत्तल पर कौवे और कुत्ते लड़ रहे थे। वहीं पर चार धूलि-धूसरित छोटे-छोटे पैर क्षण भर के लिए अटक कर पुनः आगे बढ़ चले।

सवेरे जो चारों पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते थे, सन्ध्या समय उनमें मानो मिट्टी के ऊपर उठने का भी बल नहीं रहा।

अनुवादक : कपिलेश्वर प्रसाद

मुन्शी जी, एक पैसा

गोदावरीश महापात्र

पुरी के मोटर स्टेशन पर मोटर रुकने के साथ ही सुनाई पड़ा—मुन्शी जी, एक पैसा।

लगातार के घर्र-घर्र····भौं····पों········भों·····पों से कान झन्ना उठे थे। मन ऊब गया था। धूलि-धूसरित शरीर लेकर मोटर से उतरते ही वातावरण में एक अजीब परिवर्तन-सा प्रतीत होने लगा। मोटर के कर्कश और रूखे शब्दों के बदले एक करुण कण्ठ की क्षीण पुकार सुनाई पड़ी—मुन्शी जी, एक पैसा।

वसन्त का मौसम था। उस मधुमास में न जाने कहां-कहां, किस-किस श्यामल वन में कवि की कोयलें कूक रही होंगी, अमृत ढालती होंगी, पर इस समय पुरी के आस-पास कोयल की मादक तान नहीं सुनाई पड़ती थी। सिर्फ एक ही स्वर आस-पास के वातावरण को कम्पित कर रहा था—मुन्शी जी, एक पैसा।

लोग मोटर से उतरे, कई नए लोग मोटर में बैठे। उन्होंने पैसे गिने और टिकट लिए, पर किसी ने उस पुकार की ओर ध्यान नहीं दिया। उस करुण स्वर में भी कोई परिवर्तन नहीं आया। हृदय को हिलाने में असफल होती हुई भी वह ध्वनि करुण से करुणतर होकर गूंजती रही—मुन्शी जी, एक पैसा।

जिसने भूल से भी उसकी ओर देखा, मुंह फेर लिया और नाक-भौं सिकोड़ लिए। पर, वह ध्वनि जैसे दो सौ गज़ परिधि के क्षेत्र को बराबर हिलाती रही और रुकी नहीं। भिक्षुक सबकी ओर घूम-घूम कर और हाथ पसारता हुआ पहले की ही तरह पुकार रहा था—मुन्शी जी, एक पैसा।

मुन्शी जी कहां हैं? पैसा कहां है? न इसका किसी ने उत्तर दिया और न इस पर स्वयं उसने ही ध्यान दिया। सिर्फ एक मैली-कुचैली फटी-सी गमछी कमर में लपेटे और पंजर की गिनती की जा सकने वाली हड्डियों को दिखाते हुए, वह उसी, एक ही बात को एक ही स्वर से सबके सामने हाथ पसार-पसार कर बार-बार दोहरा रहा था—मुन्शी जी, एक पैसा।

उसके पांव लड़खड़ा रहे थे। उसकी आंखें कोटर के भीतर धंस गई थीं।

सूखे-सूखे ओंठों को चीरते हुए चार पीले-पीले दांत बाहर निकल रहे थे और पेट जैसे पीठ से मिलने की कोशिश कर रहा था। वह स्वयं इस संसार में है या नहीं, शायद इसका भी उसे पता नहीं था। फिर भी, वह एक हाथ से मुंह की मक्खियों को उड़ाता, किसी क्षीण आशा से दूसरे हाथ को हर किसी के आगे पसार देता था—मुन्शी जी, एक पैसा।

उसने पांडे जी से मांगा, उन्होंने मुंह फेर लिया। मिसिर जी से मांगा, उन्होंने दुतकार दिया। डाक्टर बनर्जी को 'मुन्शी जी' कहा, उनकी आंखें लाल हो गईं। नेता जी से मांगा, उन्होंने भीख न मांगने पर एक उपदेश ही दे डाला। बगल में एक सेठ जी मुरेठा बांधे बैठे थे, शायद 'सेठ जी' का सम्बोधन सुनते ही एक पैसा भी दे देते, पर 'मुन्शी जी' सुनते ही वे आग बबूला हो गए। उन बीस यात्रियों के आगे उसने एक सौ बार इस वाक्य को दोहराया। किसी ने कहा—यह शराबी है। और किसी ने कहा—गंजेड़ी है। वह सब कुछ सुन रहा था। किसी भी लांछन का उसने विरोध नहीं किया। उसको तिरस्कार मिला, फिर भी उसकी आंखों से आंसू तक नहीं गिरा। उस पर गालियां पड़ीं, फिर भी उसके पांव पीछे नहीं हटे।

उसके हाथ पर, नज़दीक से मैंने एक इकन्नी धर दी। फिर पूछा—किस मुन्शी जी को खोज रहे हो तुम?

उसने इकन्नी को कुछ नजदीक से देखते हुए कहा—हां, एक पैसा। अच्छा ही किया जो दे दिया। लिया तो था तुम्हीं ने? फिर देता कौन?

मैं आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। फिर मैंने कहा—वाह जी! मैंने पैसा कब लिया था तुम से?

मैंने देखा उसकी गर्दन की शिराएं तन गईं और वह ज़ोर-ज़ोर से कहने लगा—पूछते हो कि कब लिया था? पांच ही साल की बात भी भूल गए? वही जो छोटा-सा पक्का घर था, क्या वह याद नहीं है तुमको? क्या मेरे रघू और गोविन्द अब भी वहां रहते होंगे? केवल पचास ही रुपये तो लिए थे मैंने। भूल गए तुम इतनी जल्दी!

इतना कह कर वह रुक गया। एक ही सांस में कह जाने से शायद उसका दम ही चुक गया था। सिर पर पसीना आ गया था। कुछ देर आंखें बन्द कर लेने के बाद फिर वह बुदबुदाने लगा—हां, पचास रुपये। फिर-फिर पांच ही साल में पांच सौ! वह आंखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देखता ही रह गया।

मोटर ने चलने की आवाज़ दी। उसकी सारी बातें सुन कर जैसे मैं उद्विग्न हो उठा। मोटर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी और उसने फिर ज़ोर-ज़ोर से कहना प्रारम्भ किया—हां, हां! पांच सौ रुपये। ज़मीन··· जगह···

घर· · ·द्वार· · ·सभी कुछ छिन गया। और मैं आज भीख मांग रहा हूं—भीख। मैं तुम्हीं को खोज रहा था। मुन्शी जी! · · ·ओ मुन्शी जी!! · · ·मेरे रघ्घू और गोविन्द कहां हैं? ओ मुन्शी जी!

मोटर आगे बढ़ चुकी थी। सिर्फ उसकी एक क्षीण ध्वनि मोटर के चक्कों में पिसती हुई मेरे कानों में गूंज रही थी।

* * *

मैं कितनी ही बार उस रास्ते से गया और आया, पर वे शब्द फिर से न सुन सका। अनेक बार मेरी आंखें किसी को खोजती रहीं, कितनी बार बहुतों को मैंने भूल से पूछा और कितनी बार कितने ही भिखमंगों को मैंने सन्देह की आंखों से देखा, पर वह करुण स्वर फिर से न सुन सका।

एक साल बाद। उसी जगह, फिर एक विचित्र भिखारी को मैंने देखा। उसी तरह लोगों के सामने घूमते हुए। पर, यह भिखारी नहीं दानी था। एक साल पहले का वह भिखारी पैसा मांग रहा था, पर यह कह रहा था—ले लो, तुम अपना पैसा ले लो।

वह भिखारी है, फिर भी दूसरे को आज वह एक पैसा देने के लिए व्याकुल है! कौन भला उससे पैसा ले? लोग उसे देख कर कहते—यही भाग्य का फेर है, नहीं तो बैठा-बैठा जो अभी सात जन्म तक खा सकता है, उसकी आज यह दशा है! दुखहरन के अभिशाप ने ही तो आज 'मुन्शी जी' को पागल बना दिया है। इन्हीं के लिए दुखहरन जो पागल बन कर घर से निकला, तो आज तक नहीं लौटा। जो एक दिन इनको खोजता फिर रहा था, उसी को आज ये खोज रहे हैं!

'मुन्शी जी' नाम सुन कर मैं चौंका। बारह महीनों की एक लम्बी अवधि को चीरती हुई एक करुण स्मृति मेरे हृदय में जाग उठी। मैं अब भी जैसे सुन रहा था—मुन्शी जी, एक पैसा।

मैंने उसकी ओर धीरे से हाथ बढ़ा दिया। अपने जरा जीर्ण हाथ से बड़ी शीघ्रता के साथ मेरे हाथ में एक पैसा रख कर ज़ोर से उसने मेरे हाथ को भी पकड़ लिया। लोग चिल्लाए—पागल है! पागल है!! भागो!!!

उसने और भी ज़ोर से मेरे हाथ को पकड़ लिया और पागल की तरह हँसते हुए कहा—नहीं दुखू, डरो मत मैं पागल नहीं हूं। बहुत दिनों से मैं तुम्हीं को खोज रहा था। आज तुम मिल गए। मैं विश्वासघाती नहीं हूं। मुझ पर विश्वास करो। सच मानो—सच मानो। तुम्हारा सब कुछ वैसा ही रखा हुआ है, आकर ले लो। अरे भागे कहां जा रहे हो। आओ अपना माल ले लो! ओ—ओ!!

कब उसके हाथ से मेरा हाथ छूट गया और कब मोटर स्टार्ट हुई, मुझे पता

नहीं। मोटर, सड़क की छाती पर ढेर-सी धूल उड़ाती हुई भागी जा रही थी और मेरे हृदय में भी इधर असंख्य घटनाओं को कुचलती हुई एक कातर स्मृति दौड़ रही थी। मैं देख रहा था, एक हताश होकर भागा जा रहा है और दूसरा अनुतप्त प्राण से उसको अपनी ओर खींच रहा है। एक साल पहले के दुखहरन और एक घण्टा पहले के मुन्शी जी में आज जैसे परिचय हो गया था। व्यथातुर प्राण आज समान ताल पर स्पन्दित हो रहे थे। एक में भीषण निराशा थी और दूसरे में भीषण अनुताप !

अनुवादक : प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक

इन्सान और हैवान

कालिंदी चरण पाणिग्राही

एलवियन और जूली बचपन से ही घनिष्ठ मित्र थे और हर समय एक-दूसरे के साथ रहते थे। एलवियन अंग्रेज़ी नस्ल का ग्रे हाउंड (कुत्ता) था और इसी वजह से उसका यह नाम था। जूली एक हिरनी थी, जो उड़ीसा के जंगलों से लाई गई थी। एलवियन गोश्तखोर था। और जूली घासपात पर गुज़ारा करती थी।

एक वार जूली बीमार पड़ गई। एलवियन दिन-रात उसके पास रहता और उसे खाना भी वहीं दिया जाने लगा। एक वार एलवियन की टांग टूट गई। जूली उसकी वेपनाह ताकत से वाकफ थी। इसलिए उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर यह इतने दिनों से पड़ा हुआ क्यों है? उसकी बीमारी में वह वड़ी मुहब्बत और दिलजोई से पेश आई। फिर जब एलवियन तन्दुरुस्त हो गया, तो ऐसा लगा कि उसकी तन्दुरुस्ती जूली की तीमारदारी की रेहनेमिन्नत है। अब वह धीरे-धीरे चलने लगा था। लेकिन जब मौसमे वहार अपने दामन में फूलों की दौलत लिए हुए आया, तो दोनों दोस्त खूब खेलने और पागलों की तरह उछल-कूद करने लगे। ऐसा लगता कि वे दौड़ते हुए उस मम्मबा की तलाश में जाते हैं, जहां से लुत्फ का सरचश्मा फूटा है। एलवियन दौड़ते हुए ऐसा मालूम होता था जैसे ज़मीन पर धाग को तान दिया गया हो। उसके पैर जिस्म से मुश्किल ही अलग नज़र आते थे, लेकिन जूली की दौड़ तो विल्कुल पेरिस का रक्स थी। उसके पैर सतहे-ज़मीन पर तैरते थे, वह तो हवा में रक्स करती थी।

ज़मींदार को अपने इन दोनों पालतू जानवरों से बहुत प्यार था। दिन भर के काम-काज से थक कर जब वे अपने आफिस के सामने के लम्बे चौड़े लान में टहलने आते, तो ये दोनों अपनी दिलचस्प हरकतों से उनका जी वहलाते। जूली अपनी लम्बी गरदन अपने मालिक के पैरों से रगड़ती और उनका हाथ चाटती। एलबियन पीछे रह जाता तो वह तेज़ी से दौड़ कर आगे आ जाता और अपनी दुम हिला-हिला कर मालिक के कदमों में लिपट जाता। कभी-कभी तो वह मालिक के पैरों से इस तरह लिपट जाता कि उनका भी चलना मुश्किल हो जाता।

अगर दूसरे कुत्ते जूली पर लालच भरी नज़रें डालते हुए आ जाते तो जूली खौफज़दा होकर पीछे हट जाती और अपने मालिक की पनाह में आ जाती। फिर एलवियन अपने हमजिन्सों से लड़ने के लिए आगे बढ़ता और दूसरे कुत्ते उसे देखते ही दुम दवा कर भाग जाते। वे उसकी बेपनाह ताकत से वाकफ थे। अपने हमजिन्सों में उसका वकार भी था, क्योंकि वह भागते हुए कुत्तों का पीछा नहीं करता था।

जूली और एलवियन की ज़मींदार की प्यारी बच्ची से भी दोस्ती थी। वह अपना ज़्यादा वक्त उन जानवरों के साथ गुज़ारती थी, एक आया बच्ची की देख-भाल करती थी। बच्ची बाग के मैदान में नरम-नरम घास तोड़ती और जूली धीरे-धीरे आकर अपना मुंह आगे बढ़ा देती। एलवियन भी अपने साथी के पीछे-पीछे आता और तरह-तरह की हरकतों से अपनी छोटी मालकिन को खुश करता।

ज़मींदार बरामदे में आरामकुर्सी पर नीमदराज़ थे और उनका मुत्तफिकर दिल अपने पालतू जानवरों की दिलचस्प हरकतों को देख-देख कर खुश हो रहा था। वे नए ख्याल के आदमी थे और बहुत खुश इखलाक भी थे। वे मौके के मुताबिक लिबास पहनते थे। अपने हमवतनों के सामने वे स्वदेशी कुर्ता और चादर ओढ़ते। हां, विदेशियों के सामने उम्दा किस्म का सूट पहन कर जाते। आला ओहदों पर फाइज़ यूरोपियन अफसर तातीलात में उनकी रियासत के जंगल में शिकार खेलने आते। उनके लिए उनके दरवाज़े हमेशा खुले रहते। इस मकसद के लिए खास तौर से एक मेहमान-खाना तामीर करा दिया गया था; जिसमें ज़रूरत और आराम की सभी चीज़ें मुहैया की गई थीं। वे अपनी तालीमयाफ्ता और मुअज्जज़ रैयत से भी इसी खंदापेशानी और खुश इखलाकी से पेश आते थे। इसके बावजूद रियासत के आम लोगों की राय उनके बारे में कुछ अच्छी न थी। कट्टर अकायद के लोग उन्हें घटिया और मज़हब से बेबहरा समझते। दूसरे लोग उन्हें रैयत के दुखदर्द से बेपरवाह और अपने आरामो-आसाइश के लिए बेदर्दी से रुपये लूटने वाला ज़ालिम ज़मींदार कहते। सबसे बड़ी बात यह थी कि यूरोपियनों से गहरे ताल्लुक और उनके तौर-तरीकों को अपना लेने की वजह से उनकी बहुत सी खूबियां लोगों की नज़रों से ओझल हो गई थीं। दरअसल खुराक और लिबास के मामले में वे अंग्रेज़ मुआशरत के बड़े दिलदादह थे और लोगों का ख्याल था कि इस मामले में जिस एतदाल की ज़रूरत थी उसका वह ख्याल न रखते थे।

उनके एक पुराने दोस्त पुलिस के डिप्टी इंस्पैक्टर जनरल थे। उन्होंने इत्तलाह दी थी कि वे क्रिसमस की तातीलात में अपनी बीवी और लड़कियों के साथ तफरीहो-शिकार के लिए आजाएंगे। मेहमानखाने को आरास्ता

कर दिया गया था और उनकी आमद से चार दिन पहले जंगल में खेमे लगा दिए गए थे। ज़रूरी चीज़ों की खरीदारी के लिए आदमी कटक भेजे गए। रियासत के अफसरों को दम लेने की मुहलत न थी और सभी ज़मींदार की पीठ पीछे उन्हें खूब बुरा-भला कह रहे थे।

ज़मींदार मोटर में सवार होकर अपने मुअज्ज़ज़ मेहमानों की पेशगोई को गए। साहब वक्त पर आ गए और मेज़बान ने मेहमान, उनकी बीवी और लड़कियों से मिल कर वेहद खुशी का इज़हार किया। प्रोग्राम तय किया गया। मेहमानों ने रात मेहमानखाने में गुज़ारी और सुबह को नाश्ते के बाद जंगल को रवानगी की सलाह ठहरी।

शिकारगाह ज़मींदार के मकान से 14 मील दूर थी। उसके आस-पास दूर-दूर तक कोई आबादी न थी। खानसामा और दूसरे मुलाज़िम खाने-पीने की चीज़ें और दूसरी ज़रूरी चीज़ें लेकर पहले ही आ चुके थे। मेहमान, ज़मींदार, डी० आई० जी० के दो शिकारी कुत्ते और ज़मींदार के दोनों चहेते जानवर, एलबियन और जूली कार में गए। जूली को ले जाने की कोई ज़रूरत न थी। चूंकि एलबियन शिकार में बहुत काम करता था और जूली की मौजूदगी की वजह से वह चाक-चौबन्द और खुश रहता था, इसलिए जूली को ले जाना पड़ा। जब भी एलबियन को मौका मिलता वह जूली के पास भाग आने की कोशिश करता। इन दोनों को ले जाने के लिए रस्मन छोटी मालकिन की मंज़ूरी भी हासिल कर ली गई थी और उसने अपने बाप से सख्ती से इसरार किया था कि उसके ये साथी तीन दिन से ज्यादा बाहर न रहें।

बहरहाल क्रिसमस की पुरमुस्सरत तकरीब की खुशियों में पांच दिन बड़ी जल्दी कट गए। सुनसान जंगल में मेहमानों को इतना आराम और सुकून मिला कि शहर के हंगामों और बखेड़ों के मुकाबले में उन्हें यह तनहाई बड़ी खुशगवार मालूम हुई। पांचवें दिन खाने के बाद ज़मींदार और डी० आई० जी० शिकार को निकले। चार दिन तक रोज़ाना शाम को नाच-गाने का प्रोग्राम रहा, जिससे खवातीन इतनी थक चुकी थीं कि मर्दों के साथ शिकार को जाने की उनकी हिम्मत न थी। मुलाज़मीन भी काम करते-करते थक चुके थे, फिर भी दो-तीन आदमियों को शिकारियों के साथ जाना ही पड़ा।

एक-दो बार शिकारियों का निशाना खता हो गया। गोली की आवाज़ सुन कर सारी चिड़ियां खौफज़दा हो कर उड़ गईं। लिहाज़ा जब तक चिड़ियां वापस न आ जातीं, शिकार नहीं किया जा सकता था। इस ख्याल से वे लोग पास के जंगल से गुज़र गए और इधर-उधर शिकार की तलाश करते रहे। मगर कोई शिकार हाथ न आया। शिकार की तलाश में नौकरों को इधर-उधर दौड़ाया गया। मगर किसी ने कुछ न बताया। कौन जानता है, वे गए

या बैठ कर गप्पें हांकते, चुरट पीते या सुरती खाते रहे। दोनों दोस्त बड़ी होशियारी और खामोशी के साथ हर झाड़ी को झांकते हुए जा रहे थे। और वे बिल्कुल भूल गए कि चलते-चलते वे कैम्प से चार मील आगे निकल आए हैं।

दिन खत्म हो रहा था। सूरज ने पास की पहाड़ी के पीछे अपने आपको छिपा लिया था और उसकी करमज़ी शुआएं मगरबी आसमान पर बिखरी हुई थीं। शिकारियों को इसका एहसास नहीं था कि दिन खत्म हो रहा है, क्योंकि वे बड़े हरीसाना अन्दाज़ में किसी जानदार के गोश्त की तलाश में खोए हुए थे। उफक मशरक से स्याह बादल उभर रहे थे। शिकारियों की आंखें तो ज़मीन पर गढ़ी थीं, उन्हें आसमान की कुछ खबर न थी। नौकरों ने आने वाले खतरे को भांप लिया और अपने मालिकों की तलाश में निकले। मगर उस घने जंगल में उन लोगों को दिन की रोशनी में भी तलाश करना मुश्किल था।

दोनों दोस्त अंधेरे में भटक गए। वे उस वक्त वापस लौटे, जब बारिश की आमद का पता देनेवाली ठंडी हवा इतनी तेज़ हो गई कि उसे नज़रअन्दाज़ न किया जा सकता था। बादल गहरे और स्याह होते जा रहे थे। बारिश की आमद से पहले 4 मील चल कर कैम्प वापस पहुंचना नामुमकिन था। मजबूरन उन्हें राइफल कंधों पर रख कर डबल मार्च करना पड़ा। लेकिन इस भागम-भाग में सारा मज़ा किरकिरा हो गया। तूफान अपने पूरे गैज़ो-गज़ब के साथ आ पहुंचा था। जंगल में हर तरफ अंधेरा छा गया। आंधी की आवाज़ बड़ी भयानक और डरावनी थी। रास्ता ढूंढ़ने में बड़ी मुश्किल दरपेश थी। पानी से सराबोर और हांपते-कांपते वे लोग बिलाखिर रात के आठ बजे कैम्प वापस पहुंचे।

खाने का कोई इन्तज़ाम नहीं किया गया था। क्योंकि उन लोगों का ख्याल था कि शिकार मिल जाएगा। मगर एक चिड़िया भी नहीं मिली थी। उसके अलावा यह भी तय हो गया था कि वे लोग सुबह रवाना हो जाएंगे। ज़मींदार का घर कैम्प से 14 मील दूर था। उस ज़ोरदार और मूसलाधार बारिश में उतनी दूर से खाना मंगवाना मुमकिन न था। मोटर का रास्ता बारिश की वजह से बिल्कुल खराब हो गया था। आस-पास कोई ऐसी जगह न थी जहां से ज़मींदार और साहब के खाने के लायक कोई चीज़ मिल सकती। हर शख्स परेशान था कि क्या किया जाए। शिकार को जाने से पहले ज़मींदार ने गोश्त का कोई इन्तज़ाम करना चाहा था मगर साहब ने उन्हें मना कर दिया और यकीन दिलाया था कि कुछ न कुछ शिकार ज़रूर मिल जाएगा। अब क्या किया जाए? नौकर बेचारे बिला वजह ज़मींदार के गुस्से का निशाना बन रहे थे।

अचानक साहब ने मुस्कराते हुए कहा—खाने का बन्दोबस्त करने के लिए क्या मैं कुछ करूं ?

—ज़रूर-ज़रूर, मेज़वान ने ज़वर्दस्ती मुस्कराते हुए जवाब दिया।

—आपको कोई एतराज़ तो न होगा ?—साहब ने पूछा। उसके गोश्त से शानदार दावत का इन्तज़ाम हो जाएगा। और आप इस जानवर को दोबारा बड़ी आसानी से पाल सकते हैं। आपको मेरी तजवीज़ पसन्द आई।

पहले पहल तो ज़मींदार की समझ में नहीं आया कि साहब के दिमाग में क्या है। लेकिन जब साहब ने अपनी बात खत्म की, तो वे कांप उठे और बमुश्किल इतना कह सके,—हां हां, बड़ा अच्छा ख्याल है। वे अपने मुअज्ज़ज़ दोस्त और मेहमान की राय से इख्तलाफ़ नहीं कर सकते थे। लेकिन जूली का नाम सुन कर उनका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

जूली की कहानी बड़ी दर्दनाक थी और उस वजह से ज़मींदार को उससे बहुत लगाव था। जूली ज़मींदार के पास उस वक्त आई जब वह अपने एक यूरोपियन दोस्त के सामने अपनी निशाना-बाज़ी का मुज़ाहरा कर रहे थे। उस वक्त वह अपनी मां का दूध पीती थी। मां ज़मींदार की गोली खाकर गिर पड़ी और वह बिल्कुल साकत व सामत उसके पास खड़ी रही। जब ज़मींदार के आदमी उसके पास पहुंचे, तब भी वह अपनी जगह से नहीं हिली। क्योंकि उसे यकीन था कि उसकी मां उसके पास है। उसकी मासूम नज़रें ज़मींदार के दिल में उतर गईं। और उनको उस बच्चे से हमदर्दी पैदा हो गई। उन्होंने ख्वाब में भी नहीं सोचा था कि एक दिन ऐसा आएगा जब वे उसे अपनी खुराक बनाने के लिए उसको ज़िबह कर डालेंगे, लेकिन क्या ऐसे मुअज्ज़ज़ मेहमान की बात टाली जा सकती है।

मेज़बान की मंजूरी हासिल हो जाने के बाद साहब बहुत खुश हुए और उसको खुद अपने हाथों से ज़िबह करने के ख्याल से फूले न समाते थे। साहब के बारे में मशहूर था कि वे खून के प्यासे हैं और उनकी इस खूबी ने गुज़श्ता जंगे अज़ीम में उन्हें मुमताज़ भी किया था। अगर कोई शिकार न मिलता तो अपने घर की मुर्गियों को ही ज़िबह कर डालते थे। मेम साहब दिल ही दिल में साहब की इस खूबी पर फख्र करती थीं; लेकिन छेड़ने की खातिर कहतीं कि एक बार अपना गला काटने को तैयार हो गए थे, क्योंकि उन्हें गर्दन मारने को कोई और नहीं मिला था।

एलबियन और जूली एक-दूसरे की तरफ मुंह किए साथ-साथ सो रहे थे। किसी नए आदमी के लिए एलबियन के नज़दीक जाना आसान न था। खसूसन उस वक्त, जब वह जूली के साथ हो। ऐसी हालत में एक नौकर माधिया के अलावा किसी और को उसके पास जाने की जुर्रत न हो सकती थी। माधिया को

अपने मालिक के हुक्म के मुताविक जूली को लाना था। एलबियन जाग उठा और कदमों की चाप सुन कर भोंकने लगा। मगर माधिया की आवाज़ ने उसे चुप करा दिया। लेकिन जब वह जूली को खींच कर लाने लगा, तो एलवियन खामोश न रह सका और गुस्से में आकर उछलने-कूदने और जूली के पीछे-पीछे आने की कोशिश करने लगा। माधिया को मजबूरन ज़ंजीर पकड़ कर उसे भी लाना पड़ा।

अगरचे एलवियन बेहद चालाक था, लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह नावक्त माधिया जूली को अलग क्यों लिए जा रहा है। माधिया एलवियन को पकड़े रहा और जूली को खानसामा के हवाले कर दिया। इससे एलवियन के दिल में शक पैदा हुआ। मगर वह अपनी जगह से ज़रा भी न हिला। साहव अपने वहशियाना जज़्बे को तस्कीन देने के लिए तैयार हो गए। लैम्प की रोशनी में उनका चाकू चमक रहा था। एक गोली ज़ाया करने की बजाय वे जानवर को ज़िन्दा ज़िबह करना ज्यादा पसन्द करते थे।

खानसामा ने जूली के पैर बांध दिए और उसे मज़बूती से पकड़ लिया, ताकि ज़िबह करने में कोई दिक्कत न हो। जूली को क्या डर था। उससे मुहब्बत करने वाला मालिक और उसका सरपरस्त ज़मींदार और मुसीवत में काम आनेवाला दोस्त एलवियन दोनों उसके पास थे। चूंकि उसके पैर मज़बूती से बंधे हुए थे, इसलिए कभी वह अपने प्यारे साथी और कभी अपने मालिक पर नज़र डालती थी। ज़मींदार ने अपने आपको अपने दोस्त की बीवी और लड़कियों से बातचीत में मसरूफ़ रखने की कोशिश की। लेकिन उनके अन्दर से कोई चीज़ यह मुतालबा कर रही थी कि वे जूली को एक नज़र देख लें। वे हँसी-मज़ाक और खुश-गप्पियों में मसरूफ़ जूली से कतई बेखबर नज़र आते थे। उन्हें डर था कि अगर उनकी आंखें जूली की आंखों से ज़रा भी मिल गईं, तो वे उनके दिल का राज़ इफ़शा कर देंगी और इन्सानों की ज़बानें उन्हें मूरदेइल्ज़ाम ठहराएंगी।

साहब के हाथों में चाकू देख कर एलवियन का शुबा और बढ़ गया। डी० आई० जी० ने चाकू साफ किया और अपनी जगह से उठे। नादानिस्ता तौर पर ज़मींदार की निगाहें जूली पर पड़ गईं और उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि जूली उनसे रहम की दरख्वास्त कर रही है। फिक्रमंद और रहम की भीख मांगती हुई निगाहों की वे ताब न ला सके और किसी बहाने खेमे के अन्दर चले गए। लेकिन एलवियन, जूली की निगाहों को समझ रहा था। जब उसने अपने मालिक से मायूस होकर एलवियन पर निगाहें डालीं, तो वह तिलमिला उठा। साहब चाकू हाथ में लेकर आगे बढ़े, तो उसने एक लम्हे में ही उनका इरादा भांप लिया। उसने उस जगह बहुत से हिरनों और बकरियों की गरदनों को कटते

हुए देखा था। अब उसके अजीज़तरीन साथी का भी यही हश्र होने वाला था। उसने ज़ंजीर को ज़ोर से झटका दिया और पलक झपकते ही माधिया की गिरफ्त से आज़ाद हो गया। वह एक दम माधिया पर झपटा। साहब और नौकर बदहवास होकर खेमे की तरफ भागे। ज़मींदार खाली-उल्ज़हन खेमे में बैठे थे। उन्होंने फौरन उठ कर मेहमानों से मुअज़रत की और माधिया पर बुरी तरह बरस पड़े। लेकिन उनके अल्फाज़ गुस्से की बजाय साफ तौर से उनके ज़ेहनी करब के गम्माज़ थे।

माधिया ने एलबियन को मज़बूती से एक दरख्त से बांध दिया। डी० आई० जी० हाथ में चाकू लिए और मुस्कराते हुए फिर आए। उन्होंने चाकू एलबियन की आंखों के सामने लहरा कर उसे चिढ़ाया और जूली की तरफ बढ़े। ज़मींदार ने जूली पर फिर एक दुज़दीदा नज़र डाली और देखा कि वह मुलतजी निगाहों से उनकी तरफ देख रही है। वे उठ खड़े हुए और अपने मेहमान से कुछ कहना ही चाहते थे, लेकिन उन्होंने अपने आपको रोका—अफसोस—उन्होंने दिल में कहा—क्या मैं पागल हूं। वे फिर अपनी जगह पर बैठ गए। वे चाहते थे वहां से भाग जाएं, लेकिन कहीं उनकी गैर मौजूदगी साहब को नागवार न गुज़रे, इसलिए वे पहले की तरह चुपचाप बैठ गए। उन्होंने अपना चेहरा रूमाल से ढांप लिया, ताकि जूली के खून पर उनकी नज़र न पड़े। एलबियन की दिल को बरमाने वाली चीखें उनके कानों में घुसी जा रही थीं। उसकी चीख के साथ-साथ एक घुटी-घुटी दर्दनाक कराह भी सुनाई दे रही थी। यह जूली की आवाज़ थी, जो उनके दिल में उतरती चली गई। उन्होंने चेहरे से रूमाल हटा लिया और जब देखा तो सारा मामला खत्म हो चुका था।

खाने की मेज़ पर उनकी रूह ने पुकारा—जूली का गोश्त न खाओ। उन्हें दोस्तों की हँसी-मज़ाक और तफरीह में हिस्सा लेने की खातिर सब्र करना पड़ा। बड़ी मुश्किल से उन्होंने गोश्त का एक टुकड़ा अपने हलक से नीचे उतारा। ख्यालों में गुम, वे सोनेवाले कमरे में आए, मगर सो न सके। वे खुद को मारा-मारा फिरता हुआ देख रहे थे। फिर तूफान आया और अंधेरा छा गया और फिर उसकी याद ताज़ा हो गई। मां गोली खा कर गिर पड़ी है और उसका मासूम बच्चा बुत बना खड़ा है। वह ज़रा भी हरासां न था। फिर दोबारा सख्त अंधेरा छा गया और दोनों दोस्त राइफल कंधों पर लिए कैम्प वापस आ गए। साहब का शैतानी कहकहा। हाथ में चाकू और जूली की ज़िन्दगी के लिए भीख।

सुबह को वे अपने घर वापस आ गए। मेहमान खातिर-मुदारात से बहुत खुश थे। और उसी दिन उनसे इजाज़त लेकर रुख्सत हो गए। माधिया हांपता-कांपता पहुंचा और बताया कि वह सारे रास्ता कुत्ते को घसीटता हुआ लाया

है। वह किसी तरह वहां से हिलने के लिए तैयार न था। मालिक बड़े उदास बैठे हुए थे। माधिया और कुछ कहे वगैर, चुप-चाप चला गया। ज़मींदार अपनी हरकत पर वेहद नादम थे। अव तक वह अपनी कुव्वते इरादी के सहारे अपने आपको रोके हुए थे वरना वे पागलों जैसी हरकत करने लगते। कोई ताकत अन्दर से यह मुतालवा कर रही थी कि वे इस मामूली कुत्ते के पैरों पर गिर जाएं और उससे माफी मांगें। उन्हें महसूस हुआ कि वे एलवियन से भी ज्यादा ज़लील हैं। अफसोस, क्या मैं ऐसा खूनी और ज़लील हूं। क्या मैं इस गोश्तखोर जानवर से भी ज्यादा वहशी और खूंखार हूं। लानत है मुझ पर! क्या, ताकतवर कमज़ोरों को अपने वस में रखना और अपनी ज़िन्दगी के लिए उनको मार डालना चाहते हैं? क्या किसी एक की ज़िन्दगी के लिए दूसरे को मार डाला जाए।

पीछे से एक आवाज़ आई—जूली कहां है। उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा, उनकी चार साला बच्ची खड़ी थी। वे जल्दी से उठ खड़े हुए और बच्ची को सीने से लगाते हुए वोले—जूली जहां है मेरी बच्ची वह वहीं है। लेकिन बच्ची उनका जवाव सुनने के लिए तैयार न थी। उसने मुंह फेर लिया और गुस्से में अपने ओंठ दवाते हुए कहा—आप झूठ बोलते हैं। माधिया कहता है कि साहब ने उसे मार डाला है। मैं साहब को मार डालूंगी।

वाप से अपनी नन्हीं-सी वच्ची के गम व गुस्से को देख कर रहा न गया। और उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। वे विस्तर पर गिर गए और फूट-फट कर रोने लगे। लेकिन जूली कहां है। वरावर उनके दिमाग में यह सवाल गंजता रहा। उन्होंने यह सवाल अपने आपसे किया और फिर अपने जिस्म को देखा। जली के गोश्त के टुकड़े से, जो उन्होंने निगला था, एक दर्दनाक कराह निकल रही थी, जो उनके सारे जिस्म को छेदे डाल रही थी। वे दो हफ्ते तक बुखार में झुलसते रहे और उनकी हालत वहुत खराब हो गई। लेकिन वे सेहतयाब हो गए। बल्कि यों कहना चाहिए कि मर कर दोवारा ज़िन्दा हुए।

अंग्रेज़ अफसरों के लिए वनवाया गया मेहमानखाना वीमारों और मुअज़रों की पनाहगाह वन गया। ज़मींदार के घर में जानवरों का गोश्त पकना बिल्कुल बन्द हो गया और हुक्म दे दिया गया कि रियासत की हदूद में कहीं भी हिरन का शिकार न किया जाए।

जंगल से वापस आकर एलवियन ने कुछ न खाया। वह सारा दिन भूखा रहा। और जब ज़मींदार वीमार पड़े तो उसको मौका मिल गया और वह निकल गया। माधिया उसकी तलाश में गया और ढूंढ़ते-ढूंढ़ते शिकारगाह तक जा पहुंचा। उसने देखा कि एलवियन वहां बैठा है, जहां जूली को हलाक किया गया था। यही वह जगह है, जहां उसका सबसे प्यारा साथी हमेशा के लिए

बिछुड़ गया था। उसे वापस लाया गया और पूरी तरह से उसकी निगरानी रखी गई, मगर बेसूद। बस एक बार मौका पाकर वह भाग गया और फिर कहीं ढूंढ़े से न मिला।

कुछ लोग यह कहते थे कि वह उस तरफ गया है, जहां खेमे लगाए गए थे। लेकिन लकड़ी काटनेवालों का कहना था कि जंगल में दरख्त गिराते समय वे किसी जानवर के रोने की आवाज़ सुनते हैं—यह आवाज़ किस की हो सकती है? एलबियन की या जूली की—कौन कह सकता है?

रंगों का भ्रम

जोगिन्दर पाल

जुदाई, देश की भौगोलिक सीमा से नहीं होती, जुदाई अपने घर की ईंटों से भी नहीं होती। जुदाई तो सम्बन्धियों से होती है। उस वातावरण से होती है, जो सम्बन्धियों की सांसों से महका होता है।

जब मैं अपनों को हज़ारों मील पीछे छोड़ कर अफ्रीका पहुंचा, तो मुझे मालूम हुआ कि मेरा भरापूरा शरीर, मेरी ख्वाहिशों से लदा पड़ा यह घर, यदाकदा सूना हो गया है, इस घर के सदस्य—मेरे सभी सगे फांसी लेकर मर गए हैं और इस खाली-खाली मकान में. से मैं अकेला ही रह गया हूं। मुझे अपना शरीर अपने बाप-दादा के कस्बे की लाल सराय की तरह मालूम होने लगा, जिसकी दीवारें उजड़-उजड़ कर पीली पड़ चुकी थीं और जहां मैं सबकी दृष्टि से छिप-छिप कर वीरो से मिला करता था।

हमारी सगाई के बाद वीरो मुझसे परे-परे रहने लगी, पर कोई अपने आपसे कैसे परे रह सकता है—कभी-कभी वह लाल सराय के पीले सायों में मुलाकात के लिए आ जाती, तो उजड़ी दीवारों पर शर्माई हुई दुल्हिन के रंगदार दुपट्टे के बेल-बूटे निखर आते।

नाते जोड़ते हुए जी को यही खटका लगा रहता है कि कच्चे धागे से कहीं झटका न खा जाएं। रिश्ता जितना प्यारा हो, धागा उतना ही कच्चा होता है। मेरे अफ्रीका आने से पहले हमारी शादी में कुछ ही दिन रह गए थे कि अचानक हमारी सगाई टूट गई।

—ग्यान शाह!—वीरो का बापू आकर कहने लगा—मैं बड़ा शर्मिन्दा हूं। न लड़की की मां मानती है, न भाई, न मामा।

—पर लाल शाह, अब तो—

—नहीं मेरे भाई। वे सब ठीक ही कहते हैं, जानबूझ कर तो मक्खी नहीं निगली जा सकती। महान पुरुषों को मर कर स्वर्ग मिलता है, फिर भी वे मरना पसन्द नहीं करते। मैं अपनी लड़की को इतनी दूर कैसे भेज दूं? अफ्रीका बड़ा मज़ेदार शहर होगा, मुझे मालूम है, मेरी बेटी वहां राज करेगी। पर ग्याने! ज़रा सोच, हम सबके लिए तो मर ही जाएगी। इतना दूर।

——लाल शाह ! ये बातें तुमने पहले क्यों न सोचीं ? अब तो——।

अब तो मैं ईस्ट अफ्रीकन रेलवेज़ के कांट्रैक्ट पर हस्ताक्षर कर के भी भेज चुका था। अब क्या हो सकता था।

——नहीं ग्याने——बीरो के बापू ने अपनी पगड़ी उतार कर मेरे भाइयाजी के कदमों पर डाल दी,——तू मेरा भाई है। पंचायत में बैठ कर मैं अपना थूक चाट लूंगा मेरे भाई, पर बीरो को समुद्र में धक्का नहीं दूंगा। तेरे बेटे की नौकरी भली-चंगी, शहर के रेलवे स्टेशन पर लगी हुई थी। हमें तो वह भी दूर लगता था, पर यह दूरी तो हमारे सोचने से भी बाहर है।

और भाइयाजी बड़े उदास नज़र आने लगे। शायद यह सोच कर कि वे क्यों अपने बेटे को समुद्र में धक्का दे रहे हैं। परन्तु वे बेचारे लाचार थे। हमारी ज़मीन और मकान ठाकुर साहब के पास रेहन थे और जब से मेरी नौकरी की खबर उड़ी थी, ठाकुर साहब ने हमें बड़ी ढील दे रखी थी।

आजकल की बात कुछ और है। आजकल तो चांद की किरणें देख कर भी मनुष्य को यही लगता है कि पड़ोस के घर से रोशनी आ रही है। पर जिस ज़माने का किस्सा मैं सुना रहा हूं, उन दिनों लोगों के अपने-अपने कस्बे ही अलग-अलग चांद थे। कभी कोई दुर्भाग्यवश कस्बे से बाहर बसने की तैयारी करता, तो लोग यही समझते कि बेचारा दूसरे जहान में ईंटें ढो रहा है।

भाइयाजी खुश-खुश दिखाई देने की चेष्टा करते, परन्तु अचानक कभी हमारी नज़रें मिल जातीं, तो मुझे उनकी आंखों में वही पिघली-पिघली निराशा नज़र आती, जो कई वर्ष पहले अपना पला हुआ भोलू बैल बेचते हुए, उनकी आंखों से बह निकली थी।

और मेरी मां?

पहली बार जब मेरे अफ्रीका जाने की बात चली, तो वह मेरी ओर टुकर-टुकर देखती रही। फिर मैंने कांट्रैक्ट पर हस्ताक्षर करके इसे भेजा, तो उसे उम्र भर में पहली मूर्छा हुई और फिर तो यह हालत रही कि वह तस्वीर-सी बन गई। चलती-फिरती भी ऐसी ही दिखाई देती मानो बेहोशी में हो। अपनी मां की इस बेहोशी की कल्पना करके मुझे अटल विश्वास हो जाता कि दुखिया मनुष्य बेहोश हो या मुर्दा, उसका हृदय अपने दुख से बेखबर नहीं होता।

और मैंने अपना निर्णय कर लिया कि मैं अफ्रीका नहीं जाऊंगा !

मेरा छोटा भाई सरना अभी प्राइमरी स्कूल में ही पढ़ता है। एक बार मैं ईस्ट अफ्रीकन रेलवेज़ के चित्र सहित पैम्फलेट में काले-काले अजनबियों के चेहरे देख रहा था कि मुझे बाहर से सरने की आवाज़ सुनाई पड़ी——मेरा भैया

अफ्रीका जाकर ढेर रुपये भेजेगा—वह अपने एक भोले-भाले मित्र को बता रहा था—और उन रुपयों से मैं पढ़ूंगा और विलायत जाकर बड़ा डाक्टर बनूंगा।

और मैंने निर्णय कर लिया कि मैं अफ्रीका अवश्य जाऊंगा।

मेरे जाने में एक सप्ताह रह गया, तो मेरी बहन बसन्ती भी ससुराल से चली आई।

—भैया! राखी के दिन तो तुम अभी समुद्र-देवता की हथेली पर ही होगे।—आंसू की एक नन्हीं-मुन्नी बूंद समुद्र की तरह असीम और गहरी हो गई।

—हां।

—तो फिर मेरी तरफ से राखी यहीं बंधवा लो।

सब बन्धन कच्चे धागों के क्यों होते हैं? मैंने एक जर्द-सी मुस्कराहट से अपनी कलाई उसकी ओर बढ़ा दी।

—भैया! आज मैं वीरो के घर गई थी।

—मेरी बहन शायद सोच रही थी कि वीरो के बन्धन मुझे सचमुच बांध लेंगे, पगली!

—भैया! वह तो रो-रो कर झाड़ का तिनका निकल आई है।

और मेरी आंखों में भी झाड़ का तिनका चुभ गया और मैंने मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

—भैया! अफ्रीका कोई आकाश से दूर तो नहीं। फिर भी हम आकाश के सब तारे देख सकते हैं।

मैंने सोचा कि अफ्रीका पहुंच कर मैं अपनी आत्मा को किसी तारे में बन्द कर दूंगा और वह तारा यहां मेरे अपनों के सिरों पर झिलमिलाया करेगा।

—भैया! मैं प्रतिदिन तुम्हें आकाश पर ढूंढ़ा करूंगी।

और आकाश से रिमझिम वर्षा होने लगी। पता नहीं कब तक होती रही।

अफ्रीका जाने से पहले मेरी मुलाकात वीरो से भी हुई। वहीं लाल सराय की पीली दीवार तले। रोने के अतिरिक्त वीरो के मुंह से कुछ भी न निकला। अनुभूतियों में बाढ़ आई हो, तो मनुष्य शायद बातें कर ही नहीं सकता। बेज़बानों की तरह केवल हँसता अथवा रोता ही चला जाता है। पीली-पीली दीवार पर, वीरो के बेलदार दुपट्टे का कांपता हुआ साया देख कर मुझे लगा कि किसी कुंवारी की लाश पर रंगदार कफन लहरा रहा है।

—वीरो। मैं नहीं जाऊंगा, मैं नहीं जाऊंगा।

किन्तु इसका विश्वास न वीरो को था, न मुझे।

ठाकुर जी के शब्द पत्थर बन-बन कर मेरे दिल की तहों पर उतर आए थे।

—बेटा लक्ष्मण! हर महीने डेढ़ सौ का मनीआर्डर सीधा मेरे नाम ही भेज दिया करो, सीधा मेरे नाम ही बेटा। तुम्हारे बाप को व्यर्थ ही मेरे घर आने का कष्ट होगा। सीधा मेरे नाम ही—।

मैंने वीरो से एक बार फिर कहना चाहा कि मैं नहीं जाऊंगा। किन्तु इंजन के पीछे बंधे हुए, रेल के डिब्बे अपनी इच्छा से थोड़े ही रुकते या चलते हैं।

और अन्त में, मैं अपने बाप का ऋण उतारने के लिए सफर पर चढ़ गया, सूली पर चढ़ गया और यहां आ पहुंचा—अफ्रीका में।

जब मैं घर से चला था, तो अफ्रीका बहुत दूर लगता था और यहां पहुंच कर अब घर बहुत दूर लगने लगा। इतना दूर कि वापस पहुंच सकने की कल्पना भी दिमाग में न आ सकी—।

—यह अफ्रीका का पेट है बाबू—लिमरू रेल स्टेशन पर अफ्रीकी कांटे-वाले ने संसार की सबसे विशाल 'रिफ्ट वैली' की ओर उंगली करके कहा और मुझे लगा कि अफ्रीका का काला राक्षस मुझे हड़प कर गया है। और मेरी दृष्टि व्याकुल होकर इस पेट की स्याह विशालता में सरपट दौड़ रही है। बचपन में, मैं ऐसी कहानियां पढ़ा करता था—फिर राजकुमार, राजकुमारी की खोज में घने जंगल की स्याहियों में खो गया और उसका घोड़ा एक राक्षस के गार के सामने पहुंच कर खड़ा हो गया!·····

पर मैं अपनी राजकुमारी को रोता छोड़ कर यहां काले पेट में क्यों आ घुसा? मकई के लहलहाते पौधों के सायों में शायद मेरा खाकी रंग भी अफ्रीकी कांटे-वाले के रंग की तरह स्याह दिखाई देने लगा।

—आओ बाबू! तुम्हें तुम्हारा क्वार्टर दिखा आऊं।

स्टेशन के पीछे ही वादी में उतरते हुए मुझे यों प्रतीत हुआ जैसे वीरो मेरे साथ है।

—एक कमरे में हम सोएंगे, (हम?) एक में, मैं रामायण पढूंगी और तुम सुनोगे (रेल स्टेशन पर इंजन के ह्विसल ने चीख मारी) और एक कमरा मिलने-वालों के लिए होगा····।

मिलनेवाले! मैंने नज़र उठा कर खाली-खाली धरती की ओर देखा। कौन मिलनेवाले? यहां तो दूर-दूर तक किसी अपने आदमी की धूल भी उड़ती नहीं दिखाई देती। वह झुका-झुका पेड़ अपना पोपला मुंह झुका कर मेरे बूढ़े बाप की तरह अपने बेटे को परदेस भेज कर पछता रहा है।

मैं ठोकर खाकर अपने क्वार्टर के दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ और अन्दर झांकने लगा, मानो अपनी ही सूनी-सूनी, खाली-खाली अन्तरात्मा पर नज़र

खड़ी कर ली हों। अचानक क्वार्टर के एक कमरे से एक काली लड़की बाहर आई, हाथ में झाड़ू लिए हुए। अत्यन्त काले चेहरे पर बिना झिझक मुस्करा-मुस्करा कर लटकते हुए अत्यन्त सफेद दांतों की कतारें। और इन्हें देख कर मुझे स्टेशन के पास काली मिट्टी पर उगे हुए चमेली के दूधिया फूलों का ख्याल आ गया और वह भी परिहासपूर्ण प्रतीत होने लगा।

—यह मेरी लड़की है बाबू! तुम्हारा क्वार्टर साफ कर रही है।

वह यथावत मुस्कराती रही।

—इसका नाम मेरू है।

—मेरू ?

—हां, हमारी किक्यू भाषा में मेरू का अर्थ होता है, गोरी।

अचानक मेरू ने खुशी से ताली बजा कर अपने बाप से अफ्रीकी भाषा में तेज़-तेज़ कुछ कहा।

—मेरू क्या कर रही है ? यद्यपि यहां पोस्ट होने से पहले, मैं नैरोबी हैडक्वार्टर्स में अफ्रीकी भाषा का कोर्स पास कर चुका था, तथापि अभी मेरा इस भाषा का ज्ञान अपूर्ण था।

—वह देखो!—बूढ़े कांटेवाले ने नीचे ज़मीन की ओर इशारा किया, जहां मेरू का साया मेरे कन्धे पर सिर टेके बड़ी शोखी से हिल रहा था। कांटेवाले का बात करने का ढंग बड़ा स्पष्ट था।

—मेरू ने कहा है उसका साया और तुम्हारा साया दोनों एक जैसे काले-काले हैं।

मैं तेज़ी से पीछे हट गया।

कांटेवाला जाने के लिए मुड़ गया, पर मेरू वहीं खड़ी मेरी ओर देखती रही। कुछ दूर जाकर कांटेवाले ने मेरू को पुकारा। आओ बेटी, हम दोनों बाबू का सामान स्टेशन से ले आएं। फिर उसने मेरी ओर मुंह उठा कर कहा—तुम्हारे क्वार्टर के ज़रा नीचे मेरा घर है—किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ जाए, तो वहां आ जाया करो, या बुला लिया करो।

लिमरू में उन दिनों रात-दिन बरसात होती रही थी, जैसे हमारी विदाई पर वीरो रोती ही रहती थी। मेरा सारा दिन स्टेशन पर दूध और आलूचों की बिल्टियां बनाते, कांटे बदलवाते और नैरोबी हैडक्वार्टर्स से तरह-तरह के आदेश पाते हुए बीत जाता।

एक अधेड़ उम्र अंग्रेज़ किसान प्रति दिन बारह बजे दोपहर की माल गाड़ी पर दूध के कैन और आलूचों की बोरियां बुक करवाने आता और यदि कभी इत्तफ़ाक से स्वयं न आता, तो ठीक समय पर उसका काला नौकर और सफेद कुत्ता मेरे आफ़िस में आ खड़े होते।

मिस्टर हरवर्ट—कुछ दिनों में यह अंग्रेज़ किसान मेरा मित्र वन गया था।

—क्या तुम यहां अकेलापन महसूस नहीं करते ?

—अकेलापन ?—वह अपने मुंह से पाइप हटा कर आश्चर्य से मुस्कराने लगा—वह क्यों ?

—तुम भी यहां मेरी तरह अजनबी हो।

—ओ···नो, मैं अजनबी नहीं हूं, यह मेरा घर है।

—घर ?

—हां, मैं यहीं पैदा हुआ था और मेरी इच्छा है कि मरने पर मेरी कब्र भी यहीं कहीं, वादी में फिसलते हुए पहाड़ों पर वने—उसने अपनी आंखों के सामने से तम्बाकू का धुआं हाथ से परे झटक दिया और ममता उसकी दृष्टि से उड़ कर पहाड़ों की निद्रित धुन्ध को छूने लगी—यदि इत्तफाक से मेरा जन्म कहीं और होता, तो भी मेरा घर यहीं होता—हरवर्ट ने अपनी कुर्सी मेरे पास सरका ली—मेरे भाई ! जन्म तो केवल एक इत्तफाक है। आदमी यहां पैदा हो जाए या वहां, इससे क्या फ़र्क पड़ता है ? पैदा होने के वाद हमें पशु-पक्षियों की तरह घर के लिए चारों खूट घूमना पड़ता है, और फिर जहां सम्वन्धित हो गए, वहीं घर। प्रश्न तो सम्वन्ध का है।—हरवर्ट ने जेब में हाथ डाल कर चार-पांच वड़े पके हुए मोटे-मोटे आलूचे निकाले।

—लो खाओ, मुझे अच्छे लगे थे, इसलिए मैंने वोरी से निकाल कर अपने बेटे के लिए रख लिए थे।

आलूचे का मीठा-मीठा रस चूसते हुए, मुझे अपने सगे सम्बन्धियों का खयाल आया, तो मेरे कण्ठ में विष की बूंदें टपकने लगीं और मैंने जल्दी-जल्दी हरवर्ट की बिल्टी की ओर ध्यान देकर कहा—वज़न प्लीज़।—मेरी राय पर चलोगे, तो बहुत खुश रहोगे—उसने मेरे प्रश्न पर ध्यान न देते हुए कहा—अकेले मत रहो। ईश्वर की यही इच्छा है कि मनुष्य और पशु अपनी-अपनी स्त्री के साथ हंसी-खुशी जीवन व्यतीत करें और अपना-अपना वंश बढ़ाएं। यंगमैन ! जो मनुष्य अकेला रहेगा, वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार सदा उदास रहेगा।

—यह अच्छा आदमी है—जब हरवर्ट चला गया, तो कांटेवाला उसके विषय में वातें करने लगा—इस इलाके में केवल यही एक सफेद आदमी है और इसने हमारे कवीले की एक स्त्री से शादी कर रखी है। और इसके वच्चे—मानो कांटेवाला अपने ही पोतों की वात कर रहा हो—वड़ा प्यारा रंग है उनका, जैसे गहरे नीले आकाश में सफेद वादल घुले-मिले हों।

इसी समय दफ्तर में कहीं से वन्दर का एक वच्चा घुस आया। मैंने पेपर-वेट उठा कर उसे दौड़ाना चाहा, परन्तु कांटेवाले ने लपक कर वन्दर को अपनी

बांहों में थाम लिया और उसकी खाल पर हाथ फेरते हुए उसी की तरह मुंह बना-बना कर हँसने लगा।

—क्या बातें हो रहीं हैं इस बन्दर के बच्चे से, बाबा?

—इस बन्दर की तीन नसलों से मेरा मिलना-जुलना रहा है, बाबू—। कांटेवाले ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया और फिर बन्दर को ज़मीन पर छोड़ कर उसको सम्बोधित किया—जाओ बेटा, मेरू नीचे ही होगी—जाओ खेलो।

बन्दर का बच्चा दौड़ कर कांटेवाले के घर की ओर हो लिया।

—बाबू, इन पहाड़ों की ओट में रहता है। वहां—उसने उंगली के इशारे से मुझे बताया—यहां से कम से कम दस मील का फासला है, पर यह टोटो बच्चा बड़ा होशियार है। उछल-उछल कर पल भर में यहां आ पहुंचता है।

मैंने समझा कि बूढ़ा शायद अपनी बात भूल कर किसी इन्सान के बच्चे की चर्चा ले बैठा है।

—बाबू, यहां हमारे कबीले के, गिनती के ही कुछ लोग हैं। इसलिए हमारी और इन पशुओं की यहां साझी बिरादरी है। अपने आस-पास जानवरों की गिनती अधिक प्रतीत हो बाबू, वहीं जीवन सुखी रहता है।—मुझे अपनी बात में इतनी दिलचस्पी लेते पाकर, कांटेवाला मेरे पास ज़मीन पर बैठ गया—इस टोटो का दादा मेरा मुंहबोला भाई था। अपनी बुढ़िया से लड़-झगड़ कर प्रायः मेरे पास चला आता। पिछले साल मेरे रफीक (यार) को गाई (किक्यू व कबीले का ईश्वर) का बुलावा आ गया—कांटेवाला हथेली से आंसू पोंछ कर चाटने लगा—मुर्दों पर बहाए हुए आंसू हम लोग व्यर्थ में ही नहीं जाने देते बाबू! हमें गाई की आज्ञा है कि उन्हें पी जाओ।

मैं आश्चर्य से कांटेवाले की ओर ताकता रहा।

—परन्तु बाबा! पशु तो बेजबान होते हैं, फिर तुम एक-दूसरे से बात कैसे करते हो?

—बात? बूढ़े को शायद मेरी मूर्खता पर दया आ गई—बात केवल ज़बान से ही नहीं की जाती बाबू! तुम्हारी ही तरह, एक जानवर बेचारा बड़ा हैरान होकर एक दिन मुझसे पूछने लगा—बाबा, तुम्हारी केवल दो टांगें हैं, फिर तुम चलते किस तरह हो? अब कोई इस मूर्ख से पूछे कि सांप की एक टांग भी नहीं होती, फिर वह कैसे चलता है?

मैं निरुत्तर हो गया।

—बाबू, ये पहाड़, ये वृक्ष, ये नाले सब बातें करते हैं।

—अच्छा बाबा, बताओ वह पेड़ क्या कह रहा है?—मैंने उसे छेड़ने की नीयत से पूछा। और बाबा ने वृक्ष को ध्यानपूर्वक सुनने के पोज़ में उसकी ओर अपना सिर उठा लिया।

—पहले तो यह वृक्ष चुप-चुप रहा बाबू—कांटेवाला मुझ से कहने लगा—और फिर तुम्हारे बारे में शिकायत करने लगा कि यह अजनबी अब झटपट हमसे घुल मिल क्यों नहीं जाता ?

मैं ढीला पड़ गया ।

—हमें अजनबियों से बड़ा प्यार है बाबू । उनके गोरे रंग से, उनकी गोरी बुद्धि से । और हम चाहते हैं कि वे हमें भी अपनी तरह बना लें । इधर आओ बाबू —वह बुकिंग आफिस के पिछले दरवाज़े से मुझे बाहर एक जोहड़ के पास ले आया—पानी के नीचे वह मजानी (पौधे) देख रहे हो । साधारणतः पौधों की जड़ें ज़मीन के नीचे होती हैं, परन्तु जोहड़ के यह पौधे ज़मीन के ऊपर-ऊपर ही रहते हैं । हम लोग उन्हें पसन्द नहीं करते, क्योंकि ये हमारा ही पानी पी-पी कर पलते हैं, परन्तु अपनी जड़ों को हमारी धरती में नहीं उतरने देते । किन्तु हमें ऐसे अजनबियों से बड़ा प्यार है बाबू, जो यहां रच-बस जाते हैं, जो हमें अपने जैसा बना लेते हैं । जब तुम यहां आए थे, तो मेरी मेरू ने तुम्हारे क्वार्टर के सामने आम के पेड़ का बीज लगाया था ।

—मैं तो एक टूटी हुई टहनी हूं बाबा !—मैंने कांटेवाले से कहना चाहा—जो अपने घर के सायादार पेड़ के साथ जुड़ जाने की प्रतीक्षा में सूख रही है ।

—हमारा हरबर्ट साहब कहा करता है बाबू—कांटेवाला बोल रहा था—बीज की टहनी कहीं की भी हो, पर पेड़ तो उसी धरती का हो जाता है, जहां से उसकी शाखें फैलती हैं ।

उसकी बातें सुनते हुए मैंने आराम से अपनी जांच की और जोहड़ के मजानी की तरह अपनी जड़ों समेत अफ्रीकी धरती के ऊपर-ऊपर ही रेंग कर, मैं अपनी सीट पर आ बैठा ।

रात को अपने क्वार्टर के कमरे में, भाइयाजी की दी हुई रामायण पढ़ते-पढ़ते मुझे ऊंघ आ गई और यों लगा, जैसे बाहर आंगन में मेरी बावली मां बेहोशी में चल रही है । मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा और दरवाज़ा खोल कर बाहर देखने लगा । वहां मेरू खड़ी थी और उसके स्याह हाथ पर रखे हुए गिलास से बकरी का गर्म-गर्म दूध छलक रहा था ।

—लो दूध पी के सोओ ।

होते-होते मेरू ने मेरे घर का सारा कामकाज संभाल लिया था । शाम की साढ़े-पांच बजे की गुड्स ट्रेन से निवृत्त होकर, मैं घर लौटता, तो वह सदा मेरी प्रतीक्षा कर रही होती और मुस्करा कर दरवाज़ा खोलती । मैं आंगन में चारपाई पर बैठ कर सिगरेट सुलगा लेता और वह रसोई में जाकर झट मेरे लिए चाय ले आती ।

—अच्छी बनी है ?—मैं अभी पहली चुसकी ही भर रहा होता कि वह पूछ लेती ।

—हां, बहुत अच्छी ।

—मैंने पहले ही चख कर देख ली है—वह अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर देती—यदि अच्छी न होती, तो मैं झट दूसरी बार तैयार कर लेती ।

और तो और यदि, मेरे भाइयाजी भी हमें इस हालत में देख लेते, तो यही सोचते कि मैंने उसे जोरू बना लिया है ।

—यह मेरी जोरू !—उसकी ओर देख-देख कर मेरी हँसी फूट पड़ती —जो-रू ? काली-कलूटी । सिर पर उलझे-सिमटे बालों के छोटे-छोटे अनगिनत स्याह छल्ले, और यह मोटे-मोटे ओंठ, मानो ज़बान की बजाय इसके ओंठ ही बोलते हों —हा-हा-हा—यह मेरी जोरू !

—तुम हँस क्यों रहे हो ?

मेरी उदासी कभी उसकी उपस्थिति में खिलखिला पड़ती, तो मुझे यों लगता, जैसे वह गतिहीन खड़ी खुशी से गोमा (अफ्रीकी नाच) कर रही हो।

—बस यों ही मुझे ख्याल आया है कि हमारे रेल के इंजन में क्या आकर्षण होता है, जो गोरे-गोरे डिब्बे उसके पीछे-पीछे मारे फिरते हैं ।

—मैं बताऊं ?

—हां ।

—डिब्बे अपना रास्ता भूल गए हैं और उन्हें मालूम है कि काली-काली बंबूकाट उनके ठिकाने ढूंढ़ निकालेगी ।

एक दिन बैठे-बैठे चाय पर मुझे देर हो गई । सामने पहाड़ की दूसरी ओर, रात सज-संवर कर आ पहुंची थी और अपनी इस अफ्रीकी प्रेमिका को प्रणाम करने के लिए पहाड़ का सिर पिछाड़ी में डूब रहा था ।

चाय की अन्तिम चुसकियां भरते हुए, मैं न जाने किस सोच में डूबा हुआ था कि मेरा ध्यान अपने सामने क्वार्टर की दीवार की ओर चला गया, जहां एक भूला-भटका कौवा लगातार कांव-कांव कर रहा था । मेरू ने अपनी भोली-भाली दृष्टि कौवे पर जमा ली और अपने श्रद्धाभरे कानों से कांव-कांव सुनने लगी ।

मेरी भर्राई हुई, विचारों की लहरें व्याकुल हो-होकर नए किनारे बनाने लगीं ।

—तुम इतने उदास क्यों दिखाई दे रहे हो बाबू ?

—मैं अपने घरवालों के बारे में सोच रहा था मेरू—कौवा पूर्ववत कांव-कांव कर रहा था ।

—हमारे देश में यह परम्परा है कि जब कौवा किसी घर की मुंडेर पर

इसी तरह कांव-कांव करता है, तो घरवाले उसे अपने बिछड़े हुओं का संदेश समझते हैं। मेरू को शायद मुझ पर दया आने लगी थी। इसलिए मैंने अपने बोलने के ढंग को वश में करना चाहा।

—मेरू ! यह कौवा सात समुद्र पार करके यहां आया है और मेरी दीवार पर आ गिरा। अवश्य ही यह हिन्दुस्तान से मेरे घरवालों का समाचार लाया है।

—नहीं बाबू ! यह कौवा हिन्दुस्तान का नहीं, हमारे देश का है— मेरू ने मुझे टोक कर कहा—और हम लोगों में कौवे के बारे में एक और ही परम्परा प्रसिद्ध है—हमारे कौवे केवल अजनबियों की दीवारों पर बैठ कर कांव-कांव करते हैं।

पहाड़ी का सिर अपनी अफ्रीकी प्रेमिका को प्रणाम करते-करते अब अंधेरे में ओझल होता जा रहा था।

मुझे वसन्ती की चिट्ठी मिली, मानो कौवे की कांव-कांव को इन्सानी ज़बान में समझाने के लिए। मैंने खुश होकर तेज़ी से लिफाफा खोला। मंगल के दिन वीरो की शादी हो रही थी। जैसे मरते-मरते मरीज़ के चेहरे पर रौनक आ गई हो और फिर दम तोड़ने की स्थिति। मेरे सिर पर एक हवाई जहाज़ उड़ रहा था। और मैं इस हवाई जहाज़ में बैठा हुआ था और यह हवाई जहाज़ हिन्दुस्तान जा रहा था और सारा आसमान मेरे साथ-साथ उड़ रहा था।

वीरो !—वीरो !!—वीरो !!!

पर आज तो बुधवार है। वीरो की शादी हो चुकी है। वीरो अपने घर जा चुकी है। अपना घर। मैं सोचा करता था कि वीरो मेरे घर की मालकिन बनेगी—मेरा यह क्वार्टर, यह घर वीरो का भी हो सकता था।

—मैं तो डरती थी जी ! आपके अफ्रीका में किसी तरह हमें मर्जी की खुराक मिल जाए, पर यहां तो दूध की नदियां बह रही हैं। और यह आलूचों का ढेर। मुए अपने देश में तो इन्हें आग लगी रहती है। मैं कहती हूं जी, यदि हम घर के सभी आदमियों को साथ ले आते तो कितनी खुशी होती। सभी जी भर भर कर खाते-पीते। ए जी ! उठिए, अब आप की आठ बजे की गाड़ी का टाइम हो रहा है।

हां ! वीरो मेरी भी हो सकती थी। पर अब क्या लाभ ? अब तो·· वह मर चुकी है !

जुदाई में, हमारे सीने अपने प्यारों के सीनों से मिलने के लिए फटते रहते हैं, पर इसी दौरान हमें खबर मिल जाए कि हमारे प्यारे हमसे सदा के लिए छिन गए हैं, तो सुन कर पहले तो कलेजा मुंह को उछल आता है, पर फिर हमारी व्याकुलता के मुंह पर गहरी नींद के चिह्न प्रकट होने लगते हैं, शायद इसलिए

कि दूसरी ओर हमारे लिए रो-रो कर हल्का न होनेवाले भी अब अटूट नींद के मज़े ले रहे होते हैं। रात को सोने से पहले मैंने खिड़की से आकाश की ओर दृष्टि दौड़ाई। वहां एक ओर कोने में एक भीगा-भीगा तारा टिमटिमा रहा था, मानो बस्ती की आंसू-भरी नज़र मेरा ढांढ़स बंधा रही हो। थोड़ी देर में यह पुरनम आंख स्याह बादल की एक लम्बी चादर में छिप गई। मैं भी कमरे के अंधेरे में सिर तक रज़ाई ओढ़ कर सो गया।

मेरू बहुत खुश थी कि अब मैं पहले की तरह उदास नहीं रहता।

—बा—बू—!

बहरों की श्रवण-शक्ति का इलाज करना हो, तो उनके लिए ऐसी ही खुश-खुश आवाज़ों का रिकार्ड भर लेना चाहिए। मैंने अपने क्वार्टर के दरवाज़े की ओर नज़र उठाई, तो मेरू का मुस्कराता हुआ, प्रकाशमान स्याह चेहरा आ रुका।

—हम नीचे वादी में जा रहे हैं, आओ तुम भी चलो।

—यह इतनी खुशी क्यों है ?

पर मैं अपने आपको समझाने लगा कि खुशी का कोई विशेष कारण नहीं होता, क्योंकि मनुष्य की यही इच्छा है कि वह खुश रहे। कारण तो सदा मनुष्य की उदासी का होता है।

—चलोगे ? बाबा भी जा रहे हैं।

और मंद-मंद थकान की अनुभूति में भी, मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

कुछ देर में हम तीनों नीचे वादी में उतर रहे थे।

—अरी धीरे चल—कांटेवाले ने अपनी बेटी को पुकार कर आदेश दिया, जो हिरनी की तरह चौकड़ियां भर रही थी। फिर वह मेरी ओर मुंह करके कहने लगा—आज यह बहुत खुश है।

—क्यों ? बातचीत में से 'क्यों' उड़ा दी जाए, तो शायद मानवीय बातचीत भी जानवरों की तरह जबान की आश्रित न रहे।

—नीचे वादी में मेरे भाई का बेटा आज इसकी एक सहेली को बीवी बना कर घ र लाया है। हम वहीं जा रहे हैं।

—बा—बू—ऊ !

किसी पत्थर की तरह तेज़-तेज़ लुढ़क कर मेरू हमसे बहुत आगे पहुंच चुकी थी और अब ज़रा रुक कर हमारी ओर हँस-हँस कर देख रही थी।

—बा—बू—ऊ !

—नहीं, मैंने अपने-आपसे कहा—आदमी केवल खुश रहने की इच्छा से ही खुश नहीं रह सकता, बल्कि खुशी का भी कोई-न-कोई हीला होता

है। कोई भोला-भोला, नन्हा-मुन्ना सीधा साधा-सा हीला। जैसे यह भोली-भाली लड़की अपनी एक सहेली के दुल्हिन बनने की खबर पाकर, मन ही मन अपने सारे चाव भी पूरे कर रही है।

—मुझे यों लगता है बाबू, अब मेरी लड़की को भी मर्द की ज़रूरत महसूस हो रही है। मानो कांटेवाले ने गाड़ी के आने की सूचना पाकर बड़ी आसानी से कांटा बदला हो।

—बाबू—बू—ऊ! और मानो मेरू की आवाज़, लाइन पर तेज़-तेज़ दौड़ने लगी हो।

हम दोनों जल्दी-जल्दी उसके पास पहुंचे, तो वह एक सफेद बकरी के गले में बांहें डाल, उसके गाल से गाल जोड़े हुई थी?

—मैं अच्छी लग रही हूं या यह बकरी?

और बकरी की सफेदी मुझे उसके काले रंग से संवरी-संवरी-सी नज़र आने लगी।

—तुम सफेद बकरी हो और बकरी?

—काली मेरू—मेरू के बाबा ने कहकहा लगा कर कहा।

मेरू ने शरमा कर सिर झुका लिया। बिल्कुल हमारे देश की कुंवारियों की तरह और मैं देखता रह गया कि जंगली बकरियां भी इस तरह शरमा सकती हैं? जब हम काफी नीचे उतर आए, तो शाम ज़रा गहरी हो चुकी थी।

यकायक मेरे नथने आग में भुनते हुए जंगली शिकार का गोश्त सूंघ-सूंघ कर फड़कने लगे।—वह देखो। मेरू के बाबा ने वादी में एक ओर आगे के ढेर की ओर इशारा किया।

मैंने देखा कि ऊंचाई इस पहाड़ी पगडंडी पर बेसब्री से दौड़-दौड़ कर मेरी दृष्टि से भी पहले नीचे वादी की रोशनी से जा मिली है।

जब हम वहां पहुंचे, तो उन लोगों ने मानो हमारे स्वागत में अपना गोमा तेज़ कर लिया।

दायरे में दाखिल होने से पहले हमें टेंबी (अफ्रीकी शराब) का एक-एक प्याला पेश किया गया। एक गबरू सिर धुन-धुन कर ढोल की थाप पर गा रहा था और उसके माथे पर पसीने की बूंदें ताज के मोतियों की तरह चमक रहीं थीं।

—इस गीत का यह मतलब है—मेरू का बाबा मेरे लिए किक्यू बोली के उस गीत का अनुवाद सीधा अफ्रीकी ज़बान में करने लगा—कि ऐ अजनबी, अब तू अपने आपको अजनबी मत समझ, अब तू हममें से ही एक है। घरवाले यह गीत दुल्हिन के स्वागत में गाते हैं।

—मजूरी साना (बहुत खूब)—मिट्टी के प्याले से रही-सही टेंबी मैं गट-गट चढ़ा गया।

—मैं भी तुममें से एक हूं।

—यदि यह बात है—लड़के के बाप ने जो पास ही खड़ा था, अपने कन्धे से लंगूर की खाल का पहनावा उतार कर मेरे कन्धे पर टिका दिया—तो यह लो।

—इस का अर्थ है—मेरू के बाबा ने मुझे समझाया —कि अब तुम हमारे कबीले के हो गए हो।

—हां—किसी ने मेरे प्याले में और ज़्यादा टेंवी उंडेल दी।—अब मैं तुम लोगों का हो गया हूं।

और मेरू लड़कियों की टोली से निकल कर मेरे साथ आ खड़ी हुई। मैंने अपनी नशीली नज़रों से उसकी ओर देखा। उसकी आंखें आंसू बन गईं। मुझे मालूम होने लगा कि मेरी उससे पुरानी जान-पहचान है। भारत में हमारे घर एक तसवीर थी। कृष्ण की मक्खन रूपी गोपियों में एक गोपी रैन की तरह काली थी बड़ी सुन्दर और उसकी आंखें बिल्कुल ऐसी ही थीं।

दूसरे दिन जब मैं क्वार्टर में लौटा, तो डीन लोगों से इतना मेल-मिलाप बढ़ाने पर बहुत पछता रहा था। दरवाज़ा खोल कर पांव अन्दर धरने लगा, तो सामने एक नाग मेरी ओर घूरता हुआ नज़र आया। अभी मैं स्पष्ट, यह भी न सोच पाया था कि यह नाग मेरे दिल के पछतावे और घृणा के रूप से मिलता-जुलता है कि ज़ालिम ने उछल कर मेरा टखना डस लिया। मुझे केवल यही याद है कि मेरे पीछे से मेरू बेदम होकर दौड़ी-दौड़ी आई और फिर मैं बेहोश हो गया।

शाम को जब मुझे होश आया, तो मेरू का बाबा मेरे सिरहाने मुस्करा रहा था और मेरू मेरे पांव की ओर ज़मीन पर बैठी शायद कोई जड़ी-बूटी पीस रही थी।

—मूज़ी बड़ा ज़ालिम था बाबू! पर अब चिन्ता की कोई बात नहीं। मेरू ने अपने मोटे-मोटे ओंठों से तुम्हारा सारा विष चूस लिया है। मेरू के मोटे-मोटे ओंठों पर मुस्कराहट खेलने लगी, तो मेरा जी चाहा कि दुर्बलता से लड़खड़ाता हुआ, उन्हें चूम लूं।

मेरू उठ कर ज़रा रसोई में गई, तो बूढ़े ने खुश हो-होकर कहा—तुम हमारी औरतों के भरे-भरे झट चिपक जानेवाले ओंठों का चमत्कार क्या समझोगे बाबू। जब मेरी पत्नी ज़िन्दा थी और मुझे चूमा करती थी, तो गाई साक्षी है, मुझे यही लगता था कि सांप के कांटे का मन्तर फूंक रही है।

मेरू ने कमरे में लौट कर अपने बाबा को टोका—बाबू को आराम करने दो बाबा।

—हां भई मैं चलता हूं—बाबा ने उठ कर कहा—स्टेशन का चक्कर काट

आऊं। तुम चिन्ता न करो बाबू ! एक-दो दिन स्टेशन का काम मैं स्वयं ही सम्भाल लूंगा ।

जब बाबा चला गया, तो मैंने मेरू को अपने पास बुलाया और जब वह सिमट कर मेरे सिरहाने झुकी-झुकी आ खड़ी हुई, तो मैंने उसकी कलाई पकड़ ली, पहली बार उसके शरीर को छुआ। यह स्पर्श ! कोमलता की केवल कल्पना ही। मुझे बिल्कुल ज्ञात न था कि काली खाल इस प्रकार कोमल और स्वस्थ होती है। उसके संग में रस भरा जादू होता है। मैं अफ्रीकी त्वचा के घोर सांवले जादू से बिल्कुल परिचित न था ।

मेरी नज़रें उसकी नील नदी की-सी आंखों में झांक कर उसकी आत्मा को छूने लगीं, जो उसकी त्वचा से भी अधिक कोमल थी ।

—मेरू तूने मेरा सारा विष चूस लिया है, सब भ्रम मिटा दिया है। वह मुस्कराने लगी और मैंने चेष्टा करके अपना मुंह आगे बढ़ाया और चमेली के खिले हुए फूलों के मोटे-मोटे किनारों की उपजाऊ काली मिट्टी को चूम लिया।

—बाबा, दूसरे दिन जब बाबा मेरा हाल पूछने आया, तो मैंने उससे पूछा—यदि मैं तुम्हारी बेटी से ब्याह करना चाहूं, तो कितनी बकरियां लोगे ?

बाबा अपनी खुशी में मेरी दुर्बलता भी भूल गया और मेरी पीठ पर ज़ोर से हाथ मारते हुए प्रसन्नता से धड़कती हुई आवाज़ में कहने लगा—औरों से पूरी एक दर्जन, किन्तु तुम मेरे दूध-रंगे दोहतों के बाप बनोगे, इसलिए तुमसे केवल दो बकरियां। उसने एक और हाथ मेरी पीठ पर दे मारा—या अगर तुम चाहो, तो बेशक एक भी न दो ।

काको और उसके प्रेमी

बलवन्त सिंह

काको की उम्र ढाई-तीन साल की होगी। बड़ी प्यारी बच्ची थी। उसकी आंखों में तारे आंखमिचौनी खेलते थे। उसका चेहरा पिघले हुए चांद की तरह था। उसके ओंठों पर बीरबहूटियां दमकती थीं और गाल ऐसे दिखाई देते थे, जैसे सफेद बादलों पर निकलते हुए सूरज ने गुलाबी रंग फैला दिया हो। और बाल, जैसे बरसात का गीला चमकीला कोयला।

पंजाब में, बच्चे को काका और बच्ची को काकी कहते हैं और अगर बहुत लाडली हो तो काको।

ज़ाहिर है काको उसका असली नाम नहीं था, लेकिन नाम में क्या रखा है? वह एक सिख किसान दर्शन सिंह की लड़की थी। जब वह पैदा हुई, तो दर्शन सिंह को ज़रा भी खुशी न हुई। बल्कि लड़की पैदा होने की खबर सुन कर उसने यों सर नीचे डाल दिया, जैसे लोग अब उसके मर्द होने में भी शक करने लगेंगे। मगर जब काको ज़रा बड़ी हुई, तो सब लोग बाप से कहते कि तुम बड़े खुशनसीब हो, जो ऐसी खूबसूरत बच्ची पाई। धीरे-धीरे दर्शन सिंह को भी वह प्यारी लगने लगी और वह अक्सर उसे गोद में उठा कर उस वक्त तक प्यार किए जाता, जब तक कि उसे यह याद न आ जाता कि वह तो लड़की है। लेकिन सब लोग काको को प्यार करते थे। क्योंकि इनमें से किसी को इस बात की फिक्र नहीं थी कि जब काको बड़ी होगी, तो पराए घर चली जाएगी और अपने साथ, बाप की गाढ़ी कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा लेती जाएगी और अपने बूढ़े मां-बाप का सहारा नहीं बनेगी।

काको बड़ी हँसमुख बच्ची थी। ज़िन्दगी की तलखियों का उसे कुछ पता नहीं था। वह अपने सादे वातावरण में यों चहकती, जैसे बड़े अचम्भे के मेले में आ निकली हो। सुबह वह अपने बाप के कन्धे पर या अपनी मां की गोद में सवार होकर गुरुद्वारे जाती। वहां लम्बी दाढ़ीवाला ग्रंथी न जाने एक मोटी-सी किताब में से क्या पढ़ा करता था। वह गा कर नहीं पढ़ता था, लेकिन उसकी आवाज़ में संगीत और एक अजीब किस्म की खनखनाहट थी।

वहां पर उसे जो बात सबसे अच्छी लगी वह यह थी कि पाठ-कीर्तन के बाद उसे बहुत-सा हलुवा खाने को मिलता था। अपने हिस्से के अलावा अपने बाप और मां के

हिस्से में से भी वह हलुवा ले लेती थी, यहां तक कि गुरुद्वारे के बाहर बैठी गूंगी (लेकिन बहरी नहीं) माई सेवां भी अपने हलुवे में से थोड़ा-सा चख कर बाकी हलुवा काको को दे देती थी। हर सुबह इतना सारा हलुवा काको के लिए नाश्ते का काम देता था।

वह सारा दिन इधर-उधर घूमा करती। गांव के करीब वाले रहट का पानी किलबिलाता, बल खाता, झाग उड़ाता, किनारे-किनारे उगी हरी-भरी दूब से उलझता हुआ; पीपल के बड़े पेड़ की जड़ के करीब से होकर सरसराता बहता चला जाता। पीपल की छांव तले नमदार दूब में छिपे, नाक तक पानी में डूबे पीले-पीले मेंढकों की उसे तलाश रहती। अक्सर मेंढक उसे पहले ही देख लेते और उसकी नीयत भांप कर उछलते और गड़ाप पानी में डुबकी लगा जाते। काको पहले तो बिदक कर पीछे हट जाती और फिर खिलखिला कर हँसने लगती। उसकी हँसी का संगीत पानी की छनछनाहट में घुलमिल जाता।

खेतों में झड़बेरी की झाड़ियों के अलावा मीठी लसूड़ियों के पेड़ भी होते थे। अन्य बच्चों के साथ वहां जाकर वह बेरियों के कांटों का मज़ा भी चखती। मारे दर्द के सी-सी करती, फिर भी बेर खाती जाती। लसूड़ियों का तो भला कहना ही क्या; हां, कभी लसूड़ी की लेसदार गुठली मुंह से फिसल कर हलक में अटक जाती, तो खांस-खांस कर उसका चेहरा लाल हो जाता।

इस काम से फुर्सत पाकर वे सब बच्चे मदार के पौधों के पास जा खड़े होते और इन पर लगे हुए आमों की तरह के तुम्मे तोड़-तोड़ कर झोलियों में भर लेते, हालांकि वे उनके किसी काम में न आ सकते थे। फिर एकाएक किसी बड़े और मोटे पत्ते पर बैठा हुआ, मोटी-मोटी टांगोंवाला हरे रंग का टिड्डा उन्हें घूरता दिखाई देता। वे ठिठक कर हाथ रोक लेते, जैसे वह टिड्डा उनका चौकीदार हो, जो उन्हें तुम्मे तोड़ने पर डांटने-फटकारने लगेगा। टिड्डा भी उन्हें ऐसी संजीदगी से घूरे जाता, जैसे उसने सभी वेद और पुराण घोट कर पी रखे हों।

जब वह मिट्टी की कच्ची ईंटों की बनी हुई दीवारों की ठंडी छांव तले खेलती, तो शायद ही कोई राहगीर ऐसा होता जो उसे देख कर रुक न जाता।

यों तो सभी उसे प्यार करते थे, लेकिन इनमें से तीन बूढ़े सबसे प्रमुख थे यानी फग्गा सिंह, बग्गा सिंह और झण्डा सिंह। इनमें से सबसे छोटा 70 साल का था और बाकी दो 80 साल से कुछ इधर या उधर। इन तीनों बूढ़ों की आपस में कोई रिश्तेदारी नहीं थी। वे अलग-अलग गांव में रहते थे। इनमें से एक अपने ज़माने का नामी डाकू रह चुका था, दूसरा जुआ खिलाता था और तीसरा नशेबाज़ी की चीज़ें मसलन अफीम, भंग, चर्स वगैरा एक सूबे से दूसरे सूबे तक पहुंचाया करता था। अब ये बुरे धन्धे छोड़छाड़ कर "वाह गुरु नाम जहाज़ है" जपा करते थे।

इन बूढ़ों की दाढ़ियां बहुत घनी, बहुत लम्बी, करीब-करीब सफेद थीं। सर

पर भारी-भारी पग्गड़ बांधते थे, जैसे पूरा थान लपेट रखा हो। गले में खद्दर के कुर्ते और कुर्तों के नीचे नीले, हरे या तूतिया रंग के तहबन्द। कहने को बूढ़े, पर देखने में खूब लम्बे-चौड़े थे। बड़े-बड़े हाथ, मज़बूत बाज़ू, चमकदार आंखें जिन पर सफ़ेद भवें झुकी पड़ती थीं। इन तीनों को अफीम खाने का चस्का था।

हर बूढ़ा काको को बहुत चाहता था। इनका अपना आगा न पीछा। जो कोई आता काको के लिए खिलौने, मिठाई और कपड़े लाता। काको इनमें से किसी को भी देख लेती, तो दूर से ही चिल्ला उठती—बापू। और तब अपने नन्हें-नन्हें बाज़ू फैलाए दौड़ पड़ती और फिर उछल कर गले में बाहें डाल देती। बूढ़े भी इससे मिल कर इस तरह खुश होते कि इनकी आंखें पुरनम हो जातीं।

हर तीसरे-चौथे रोज़ एक न एक बूढ़ा आता ही रहता। अक्सर ऐसा भी होता कि काको एक बूढ़े की गोद में चढ़ कर गलियों की सैर के बाद लौटती, तो घर पर दूसरा बूढ़ा इन्तज़ार में बैठा होता। कभी वह तीनों एक के बाद एक आ टपकते। उस दिन काको की खुशी का ठिकाना न होता, क्योंकि उस रोज़ काको को ज्यादा से ज्यादा तोहफ़े और मिठाइयां मिलती थीं।

एक रोज़ शाम को जबकि अंधेरे की स्याही काफी गहरी हो चुकी थी, फग्गा सिंह काको से मिलने के लिए आया? ऐसे मौकों पर अक्सर काको ड्योढ़ी में अपने बाप के साथ बातें करती दिखाई देती थी, या सहन से उसके चहचहाने की आवाज़ें आया करती थीं। लेकिन आज उसका कुछ पता न था। दर्शन सिंह फांस ठोंक रहा था। फग्गा सिंह खाट पर बैठते हुए बोला—काको कहां है?

दर्शन सिंह ने सिर ऊपर उठाए बगैर जवाब दिया—वह बीमार है। रेशा (ज़ुकाम) हो गया है उसे।

—रेशा! फग्गा सिंह के मुख से बेइख्त्यार निकला।

अबके दर्शन सिंह कुछ नहीं बोला, तो फग्गा सिंह उठ कर अन्दर चला गया। काको पिछले छोटे-से कमरे में अपनी नन्हीं-सी चारपाई पर लेटी हुई थी। सरसों के तेल के चिराग की फड़फड़ाती रोशनी में वह बिल्कुल मोम की मूर्ति दिखाई दे रही थी। उसका चेहरा सुर्ख था, आंखें बन्द थीं और नाक भी बन्द थी। आज उसकी नाक की नोक भी ओंठों की तरह सुर्ख हो रही थी और वह मुंह से सांस ले रही थी। उसके कलियों के-से ओंठों में से दो दांत धीमे-धीमे चमक रहे थे।

फग्गा सिंह ने अपना बड़ा-सा हाथ इसके माथे पर रख दिया और फिर भारी आवाज़ में काको की मां से पूछा—बेटी! काको कब से बीमार है?

काको की मां पसार में बैठी रोटी पका रही थी। घूंघट की आड़ से बोली—कल सुबह से।

—कोई दवा-दारू?

—हकीम जी काढ़ा पिला रहे हैं।

फग्गा सिंह ने कुछ देर सोचा और फिर तहबन्द के पल्लू से अपनी अफीम की डिबिया निकाली और चुटकी में थोड़ी-सी अफीम लेकर उसकी नन्हीं-सी गोली बनाई और चुपके से काको के अधखुले मुंह में सरका दी। फिर बड़े इत्मीनान से बोला—फिक्कर नहीं। कल सुबह तक ठीक हो जाएगी।

यह कह कर वह झुका और उसने काको के छोटे-से उजले माथे को चूमा और भारी कदम उठाता हुआ बाहर निकल गया। वह जानता था कि अफीम बहते हुए जुकाम के पानी को सुखा कर, नाक खुश्क कर देती है और जुकाम दुम दबा कर भाग जाता है। उसने अपनी हकीमी का किसी से ज़िक्र नहीं किया। वह इसी में मग्न था कि सुबह जब सब लोग काको को एकदम ठीकठाक देखेंगे, तो कितने खुश होंगे।

इसके जाने के कुछ ही देर बाद बग्गा सिंह आ निकला। उसे जब पता चला कि काको बीमार पड़ी है, तो वह बेचैन हो उठा। तहबन्द फड़फड़ाता हुआ वह काको की खाट के पास पहुंचा। उसे कुछ देर तक पुरनम आंखों से देखता रहा। बाहर बैठी उसकी मां से इधर-उधर के सवाल किए। आखिर जब उसने बीमारी को अच्छी तरह समझ लिया, तो जेब टटोल कर अफीम की डिबिया निकाली और इसमें से नन्हें बच्चे के लिए मुनासिब खुराक निकाली और उसकी गोली बना कर प्यारी काको के प्यारे मुंह में लुढ़का दी। उसने भी चुपके से अपना काम किया, क्योंकि वह जानता था कि दवा-दारू के मामले में काको के मां-बाप बिल्कुल गधे हैं।

वह भी बड़े इत्मीनान से रुखसत हुआ।

कहीं से झण्डा सिंह को भी पता चल गया कि उसकी लाडली काको बीमार है। घर के लोग सोने जा रहे थे कि उसने आन दरवाज़ा खटखटाया और फिर अन्दर पहुंच कर बोला—भई दर्शन सिंह! माफ करना, काको की बीमारी की हालत सुन कर मुझसे रहा नहीं गया, भागा चला आया।

फिर वह काको की नन्हीं-सी खाट के एक किनारे पर बैठ गया। जब उसे पता चला कि काको को महज़ जुकाम है तो उसने ऐलान किया कि यह तो मामूली बात है। उसने भी सफाई से वाल्दैन की आंख बचा कर अफीम की मुनासिब खुराक उसके मुंह में डाल दी। जाते-जाते कहने लगा—मैं तो डर गया था कि कोई खास बीमारी न हो। जुकाम से घबराने की कोई बात ही नहीं। सुबह तक उछलने-कूदने लगेगी।

इसके बाद, "वाह गुरु जी का खालसा, वाह गुरु जी की फतह" का नारा लगा कर वह ड्योढ़ी के दरवाज़े से बाहर निकल गया।

जब दूसरी सुबह सूरज देवता ने प्रकाश का पहला नेज़ा फेंका, तो सुबह का तारा दूर से ही टूट भागा और नज़रों से गायब हो गया। फिर आसमान की नीलिमा हल्की पड़ती चली गई। बड़े पीपल के पत्ते तालियां बजाने लगे, हल्के नीले

आसमान में एक सफेद कबूतर चकफेरियां लेता हुआ यों दिखाई दे रहा था, जैसे चांदी के वर्क में जान पड़ गई हो। कौवों के कांव-कांव के शोर में किसान हल लेकर खेतों में जा पहुंचे। रहटों की रूं-रूं से सारा वातावरण गूंज उठा।

इन सब चीज़ों को देख कर चमकने और तालियां बजानेवाली काको इस वक्त तक मर चुकी थी।

दर्शन सिंह को पहले तो इस बात का यकीन ही नहीं आया, लेकिन जब उसे महसूस हुआ कि काको सचमुच ऐसी मरी है कि लौट कर नहीं आने की तो वह फूट-फूट कर रोने लगा और कहने लगा—नहीं, नहीं, मैं अपनी लाड़ली को जलप्रवाह नहीं करूंगा। मैं तो इसे बाकायदा चिता में जलाऊंगा। और फिर इसके फूल हरिद्वार में ले जाकर गंगाजी में बहा आऊंगा।

उस सुबह को काको गुरुद्वारे में हलुवे का नाश्ता करने नहीं गई। गूंगी माई सेवां बहुत देर तक कड़ाह प्रसाद हाथ में दबाए काको का इन्तज़ार करती रही। कहीं दोपहर तक किसी ने उसे बतलाया कि बेचारी नन्हीं काको वाह गुरु अकाल-पुरख के चरणों में पहुंच चुकी है।

माई सेवां का भी काको से गहरा प्यार था। वह उसकी मौत की खबर सुन कर बहुत उदास हुई। शाम के वक्त उसने गुरुद्वारे का सारा सहन झाड़ू से साफ किया। ग्रंथी जी की बीवी और बच्चों की मदद से उसने सबसे बड़ी दरी सहन में बिछा दी, क्योंकि उस रोज़ कोई त्यौहार था। इसी सिलसिले में उस रोज़ यह सब तैयारी की जा रही थी।

जब रात हो गई, तो माई सेवां संगत के जूतों की हिफाज़त करने के लिए गुरुद्वारे के बड़े फाटक के बाहरवाले चबूतरे पर बैठ गई।

धीरे-धीरे लोग आने लगे। संगत जमा हो गई, तो शब्द-कीर्तन शुरू हुआ। फग्गा सिंह देर से आया। जब वह माई सेवां के पास पहुंचा, तो काको के सिलसिले में दुख-सुख करने के लिए वहीं बैठ गया। उसका चेहरा बहुत उतरा हुआ था। काको का ज़िक्र आते ही उसकी आंखें डबडबा आईं। बेचारी माई सेवां इशारों ही इशारों में तस्कीन देने की कोशिश कर रही थी। फग्गा सिंह ने अफीमवाली बात भी बता दी और यह भी कहा कि मालूम होता है कि उसने काको को अफीम की खुराक ज़रा कम ही दी। अगर थोड़ी-सी और दे देता, तो शायद वह बच जाती।

इसके बाद वह आंसू पोंछता हुआ संगत में जा बैठा। फिर बग्गा सिंह और झण्डा सिंह भी आए। वे भी थोड़ी-थोड़ी देर के लिए माई सेवां के पास बैठे। उन्होंने भी अफीमवाली बात बता दी।

अब माई सेवां पर यह बात खुली कि अपनी प्यारी काको को उन बुड्ढों ने किस कदर खुलूस और प्यार के साथ मौत के घाट उतार दिया है।

माई सेवां दुनिया के बहुत दुख झेल चुकी थी। वह पढ़ी-लिखी नहीं थी

लेकिन उस पर वाहगुरु अकाल पुरख की खास कृपा थी। वह गुरु की वाणी को अच्छी तरह समझती थी। उसके दिल में इन गुरुओं के नूर की किरण रक्स करती थी। वह जानती थी कि संसार में कई ऐसी चीज़ें हैं जो नन्हीं-नन्हीं परियों की तरह हैं या रंगीन परोंवाली तितलियों की तरह हैं। वे परियां और तित-लियां इन्सान की समझदारी, उसकी चालाकी और उसकी प्रतिभा को सहन नहीं कर सकतीं। वे इन्सान की दुनिया की प्रखर ज्योति के सम्मुख मुरझा और कुम्हला कर ज़मीन पर गिर पड़ती हैं और निष्प्राण अवशेषों का हिस्सा बन जाती हैं।

सहन के परले सिरे पर दीवार के साथ बैलगाड़ी का भारी-भरकम पहिया टिका हुआ था। पास ही गोबर और गलाज़त के ढेर से बदबू उठ रही थी। सहन के इस सिरे पर चमेली के फूल हवा को खुशबू से बोझल कर रहे थे—वे तीनों बूढ़े अब भी कुछ-कुछ वक्फे के बाद अपने आंसू पोंछने लगते। वे फूट-फूट कर रोना चाहते थे।

गुरुद्वारे की फुलवाड़ी पर अंधेरा छाया हुआ था? वहां इस तारीकी में भूत नाच रहे थे।

माई सेवां ने आसमान की तरफ देखा। उजले-उजले तारे यों लगे, जैसे सफेद-सफेद फूल हों और किसी अनजाने हाथ ने धरती पर इनकी बारिश कर दी हो।

फिर न जाने क्यों, वे फूल, उजले फूल···रास्ते में ही लटक कर रह गए—अब न वे पीछे हट सकते थे और न धरती पर करुणा की बूंदें बरसा सकते थे।

तुम्हीं हो प्यारे कान्ह

सी० के० वेंकटरामय्या

भीमराव नौकरी से पेन्शन लेकर बंगलोर में रहने लगे। वहां उनका अपना मकान था। उनके दो बेटे थे। रामस्वामी बड़ा बेटा था और कृष्णस्वामी छोटा। कई बच्चों के अल्पायु में ही इस दुनिया से गुज़र जाने के बाद ये दो ही बच्चे बचे थे। इससे दोनों मां-बाप की आंखों के तारे थे। बाप की इच्छा थी कि दोनों खूब पढ़ें, ऊंचे से ऊंचे ओहदे पाएं और खूब नाम हासिल करें। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार कृष्णस्वामी से तो उनकी इच्छा पूरी होने की उम्मीद थी मगर रामस्वामी? वह बड़ा नटखट था, सदा उसे कुछ न कुछ शैतानी सूझती रहती थी। नटखट लड़कों के दल का वह लीडर था। पढ़ने-लिखने के नाम से उसे चिढ़ थी। रामस्वामी के इस वर्ताव से मां-बाप की आशा पर पानी फिरता दिखाई दे रहा था।

कृष्णस्वामी अपने वर्ग में सदा प्रथम रहता और सदा पुरस्कार के रूप में किताबें आदि पाता। मां-बाप अपने लाडले बेटे के पुरस्कार देख कर फूले न समाते। जब उनका प्यारा किट्टू (कृष्णस्वामी का प्यार का नाम) इनाम की किताबें दिखा कर खुशी से फूलता, तब रामस्वामी कहता—तुम्हें तो इन्सान ने इनाम दिया है, मुझे स्वयं ईश्वर इनाम देंगे। तुम तो खाली किताब लाए हो, यदि रंग-बिरंगी तस्वीरों वाली किताब लाते तो कितना अच्छा होता?

उसकी ये बातें सुन कर उसके पिता लाल-पीले होते। उनकी भौंहों में बल पड़ जाते। वे गला फाड़ कर चिल्लाते—इस गधे को ईश्वर इनाम देंगे! ईश्वर देंगे तेरे हाथ में झोली! भगवान का नाम लेते तुझे शरम नहीं आती। किट्टू से कहते—अब अपने भाई को तस्वीरों की किताब ला दो। बेचारा घुटनों के बल चलने वाला बच्चा है न? देखने दो तस्वीर। शर्म नहीं आती ऐसी ज़िन्दगी पर!

कृष्णस्वामी अपनी विजय पर खुश होकर खूब हँसता। रामू (रामस्वामी का घर का नाम) पिताजी की बातों की ओर ज़रा भी ध्यान न देता और छोटे भाई के साथ आप भी हँसता। पिता उसकी बेशर्मी पर कुढ़ते और बाहर चले जाते। जब कभी किट्टू कुछ इनाम लाता, तब घर में इसी प्रकार का प्रलय मच जाता।

रामू ने एक पिल्ला पाल रखा था। भीमराव जी को उससे हद दर्जे की चिढ़

पी। वे हमेशा यही कहा करते थे कि वच्चे पढ़ें-लिखें, जो कुछ भी करें, वह सब अच्छा मालूम होता है। लेकिन मूर्ख जो करे वह भद्दा ही मालूम होगा। रामू यह सब सुनता और पिल्ले को उठा कर उसका सर सहलाता हुआ चला जाता; वह चाहते थे कि उस कूकरी को घर से भगा दें। किन्तु वे मजबूर थे। वजह यह थी कि मालकिन, श्रीमती काल भैरव दूध बचा कर उसे पिलाती, इसी कारण श्रीमान पत्नी के क्रोध में आहुति वनना नहीं चाहते थे।

कृष्णस्वामी को जितनी अभिरुचि पढ़ने-लिखने में थी, उतनी ही अभिरुचि रामस्वामी को चित्रकारी में थी। एक दिन वड़े भाई ने छोटे भाई से कहा—क्यों पढ़-पढ़ कर वावले हो रहे हो? रूखी-सूखी किताबी तालीम से क्या फायदा? पता नहीं किन-किन देशों के नाम की रट लगा रहे हो, इधर तुम तो इस अपने शहर के मुहल्लों तक के नाम नहीं जानते। परसों जब मैंने वताया 'बसवन गुडि' तभी साहब की पोल खुल गई। तुम तो यह भी नहीं जानते कि इस शहर में ही—कहां क्या हो रहा है? लेकिन दुनिया भर की बातें दिमाग में भर लेना चाहते हो।

कृष्णस्वामी ने गर्व के साथ बड़े-भाई की अवहेलना करते हुए कहा 'वन्दर खुद ही नहीं विगड़ा, अड़ोस-पड़ोस को भी विगाड़ गया' वाली कहावत तुम्हारे लिए ठीक जंचती है। तुम अपढ़ रह कर आवारा घूमना पसन्द करते हो तो मैं क्यों तुम जैसा बिना लगाम का घोड़ा वना फिरूं?

दोनों भाइयों में वड़ी देर तक वहस होती रही। किट्टू को चिढ़ाने में रामू को बड़ा मजा आता था। दूसरे ही दिन किट्टू का इम्तिहान था। वह दिल-दिमाग एक कर पढ़ रहा था। रामस्वामी खंजरी लेकर ज़ोर-ज़ोर से वजाने, गाने और नाचने लगा।

घर में इन दोनों के सिवा और कोई था नहीं। उनके पिता काम से कहीं वाहर गए थे; माता पड़ोसिन की लड़की के बालों का फूलों से श्रृंगार करने गई थीं। रामस्वामी बड़ा ही निडर था। किट्टू को पढ़ना दुरूह हो गया। हींग से नफरत करने वाले के सामने हींग का धुआं दें तो नतीजा क्या हो? आखिर कृष्णस्वामी ने रूठ कर कहा—एक ही गाना क्यों वार-वार दोहरा रहे हो? वह भी ठीक से आता नहीं। अड़ोस-पड़ोस वालों के मुख से छीना हुआ है। तुम्हें तो कुछ भी नहीं आता। सुवह मेरा इम्तिहान है, उसकी तैयारी करनी है। यदि तुम अब चुप न रहोगे तो मैं वावूजी से शिकायत कर दूंगा।

रामस्वामी ने हँसते हुए जवाब दिया—क्यों इस पढ़ाई के लिए रो रहे हो? नीरस कागज़ों के पुलिंदे को आंखों के सामने पकड़ कर वैठ गए तो समझे कि हमने तीनों लोक जीत लिए। मैं तुम्हारे कमरे में तो आता नहीं। वहां जाकर शाम तक पढ़ो, सुवह तक लिखो, कौन मना करता है? यह तो बावूजी का कमरा है, मैं जो चाहूंगा, करूंगा। तुम कौन होते हो मना करने वाले? फिर वह अपनी आवाज़

को और भी ऊंचा कर उसी भगवती स्तुति रूपी श्लोक को गाने व नृत्य करने लगा। पर, कुछ ही देर में भीमराव घर पहुंच गए। यह सब देख कर उनकी त्योरी चढ़ गई। उन्होंने रामू का कान ऐंठ कर कहा—यह कैसा ऊधम मचा रखा है बदमाश! भीख मांगने क्यों नहीं जाता? मेरी ज़िन्दगी पर लानत है। तुझे ज़रा भी हया नहीं? गुण्डों की तरह तगड़ा हो गया है। दोनों वेला खाने को सेर भर चाहिए, पर मशाल लेकर तलाश करने पर भी दिमाग में दो हर्फ़ तक दिखाई न देंगे।

रामू पर गालियों की बौछार पड़ने लगी। अन्त में भीमराव जी रामू के हाथ में एक किताब पकड़ाते हुए बोले—शाम तक इसी जगह बैठ कर पढ़ना होगा, यदि उठा तो खाल उधेड़ दूंगा। इतनी ताकीद कर वे कहीं काम से चले गए। उनके ओझल होते ही रामस्वामी हँसता हुआ पुस्तक का पन्ना उलट कर बड़बड़ाने लगा—हाय पढ़ाई, मेरे दिमाग में घुसती क्यों नहीं? क्या करूं मैं? किस प्रकार तुझे अपनाऊं? इसके बाद अनमना होकर खिड़की की तरफ देखने लगा। वहां गिलहरी का एक नन्हा बच्चा बैठा था। वह अन्दर घुस आने की ताक में था। उसकी चंचलता से अन्दर आने पर फंस जाने का अन्देशा ज़ाहिर होता था। फिर भी खिड़की के पास पड़े लड्डू के चूर को खाने की लालसा उसे और भी चंचल बना रही थी। होशियारी से इधर-उधर देखता हुआ वह अन्दर घुसा और वहां बिखरे लड्डू के दानों को बीन कर खाने लगा।

रामस्वामी उसकी यह चंचलता देख रहा था। जेब से कागज़-पेन्सिल निकाल कर बिना पलक मारे उस गिलहरी के बच्चे का अत्यन्त चंचल व सुन्दर चित्र बना डाला, गिलहरी का प्रतिरूप कागज़ पर उतर आया। रामू ने कई बार दोनों को मिला कर देखा, आप ही प्रसन्न होकर बोल उठा—रामभक्त गिलहरी इतनी सुन्दर हो तभी राम प्रसन्न हुए! इतने में बाहर से कुछ आहट पाकर गिलहरी का बच्चा डर के मारे भाग गया। रामस्वामी ने भी आश्चर्य से दरवाज़े की तरफ देखा तो भीमराव जी खड़े हैं। पिता जी को देखते ही चित्र छिपा कर उसने पुस्तक हाथ में ले ली। उसकी घबराहट के कारण पिता को सन्देह हो गया, तो वे निकट गए। देखा कि किताब उलटी है। रामस्वामी ने जल्दी में किताब को उलटा ही उठा लिया था। भीमराव गुस्से के मारे बेकाबू हो रहे थे। उसकी पीठ पर एक मुक्का देते हुए बोले—इस तरह वक्त खो रहा है पाजी। तू तो दिल का कांटा बन गया है। अगर तू जन्म न लेता तो कौन अभागा रोता?

रामस्वामी बड़े विनीत भाव से हाथ जोड़े गिड़गिड़ा कर रोता हुआ बोला—मारिए नहीं बाबूजी, अब कभी ऐसा काम न करूंगा जिससे आपको दुख हो। मैं पढ़ नहीं सकता। मैं क्या करूं। मैं भी तो कभी रोया नहीं था कि मेरा जन्म क्यों हुआ। यदि मैं पैदा न होता तो अच्छा ही होता।

दो-चार चपत और लगाते हुए भीमराव ने कहा—क्या मुझे बना रहा है?

मेरी बातें मुझी से उलट कर कह रहा है ? इतने में बगल में दबा चित्र नीचे गिर जाने से रावजी की वक्र दृष्टि उस पर पड़ गई। फिर क्या पूछना था; उस कागज़ को लेकर देख ही लिया। उस पर बना था गिलहरी का चित्र। उसे देख कर वे और भी लाल-पीले हो गए। उन्होंने फिर से उसकी पीठ की मरम्मत करते हुए कहा—अरे बदमाश ! यही काम कर रहा था ? किसी चितेरे के घर क्यों नहीं चला जाता। आइन्दा कोई चित्र मेरी नज़र में आया तो अंगुलियां काट डालूंगा, खबरदार !

एक रोज़ की बात है कृष्णस्वामी को एक नक्शा बना कर मदरसे ले जाना था। कागज़ पर मिट्टी का तेल पोत कर उसे एटलस पर रख, नक्शा उतारना था। कई बार उसने कोशिश की पर कर न सका। आखिर बड़ी मुश्किल से वह एक नक्शा तैयार कर पाया। रोशनी में सेंक कर उसका तेल छुड़ाया। फिर जगह-जगह शहर, पहाड़ तथा नदियों का नाम लिख कर नक्शा तैयार कर लिया। तब खाने के लिए अन्दर गया। रामस्वामी का पिल्ला, जिसको कहीं जाना मना न था, कृष्णस्वामी के कमरे में गया तो वहां रखी हुई दवात, पैर टकराने से लुढ़क गई और सारी स्याही नक्शे पर फैल गई। भोजन कर कृष्णस्वामी खुशी-खुशी मदरसे जाने के लिए अपने कमरे में बस्ता लेने आया तो उसने जो कुछ देखा उससे उसका चेहरा फक हो गया। काटो तो खून नहीं। आंखों के सामने मानो अंधकार छा गया। सवेरे से जो परिश्रम किया था, सब मिट्टी में मिल गया। अब वह अपने भाई पर आग उगलने लगा। कुत्ते से वह डरता था। इसलिए वह दूर ही से छि:-छि: करने लगा। पर वह कुत्ता टस से मस न हुआ।

—क्या शोर मचा रखा है ?—कहते हुए भीमराव वहां आ पहुंचे। कृष्णस्वामी ने आंख-नाक साफ करते हुए सारा हाल नमक-मिर्च लगा कर सुना दिया। सुन कर भीमराव जी चिल्लाने लगे—अरे रामू रे, ले जा रे कुत्ते के पिल्ले को। तू तो सांड बना फिर रहा है, औरों की पढ़ाई में भी रोड़े अटकाता है। रामस्वामी झट अपने कुत्ते को ले गया। कृष्णस्वामी रोता हुआ बड़बड़ाने लगा—मेरा नक्शा खराब हो गया। अध्यापक जी मारेंगे। नौ बज गए हैं। अब मैं क्या करूं ? छ: बजे सुबह से मेरी करी-धरी मेहनत पर पानी फिर गया। रामस्वामी को बुला कर भीमराव ने कहा—देखो, उसका सारा परिश्रम बेकार गया। अब वह बेचारा क्या करेगा ? उसके बदले आज तुझे मार खानी होगी। अब तो तुझसे जी ऊब गया।

रामस्वामी ने हिम्मत बांध कर कहा—उसे भी मार खाने की ज़रूरत नहीं और न मुझे ही। मैं अभी-अभी उसे नक्शा बनाए देता हूं। राव जी ने ताने के तौर पर कृष्णस्वामी से कहा—लो अब किस बात की फिक्र है किट्टू ? तुम्हारा ऐसा अक्लमन्द भाई है, उससे नक्शा बनवा लो। तुम्हारे अध्यापक तुम्हीं को सबसे अधिक अंक देंगे।

रामस्वामी इस बात पर चुप रहने वाला न था। उसने दृढ़ता से कहा—यदि नक्शा अच्छा बने तो ले जाओ, नहीं तो मैं अध्यापक के पास जाकर, हाथ जोड़ कर उन्हें मना लूंगा और कहूंगा कि अगर मारना हो तो मुझे मारिए, कृष्णस्वामी का कसूर नहीं है। महाराज युधिष्ठिर मेरे इसी कुत्ते को एवज़ी में रख कर छुट्टी पर गए हैं।

एटलस लेकर रामू नक्शा बनाने बैठ गया। किट्टू ने पूछा—मिट्टी का तेल लाऊं! रामू ने आश्चर्यचकित हो कर पूछा—क्यों? मिट्टी का तेल किस लिए? उसकी ज़रूरत नहीं है? पूर्ण अविश्वास के साथ कृष्णस्वामी अपने भाई के हस्त-कौशल को देखने लगा। रामस्वामी ने कहा—जब तक काम खत्म न हो, तब तक इसे न देखो।

किट्टू यह कहता हुआ वहां से चलता बना—ऐसा ही सही, क्या दामाद का अन्धा होना सवेरे भी न खुलेगा। जब तुम बना लोगे तब न? खैर, तुम बनाते हो, तब तक मैं गोपाल के यहां से अपनी किताब ले आऊं।

कान होते हुए भी रामस्वामी को उसकी एक भी बात सुनाई नहीं दी। उसका पूरा ध्यान नक्शे पर केन्द्रित था। भूखे हाथी को ईख के खेत में छोड़ देने से जो आनन्द मिलता है, वही आनन्द इस चित्रकारी में रामस्वामी को अनुभव हो रहा था। वह नक्शा बना चुका है। अब उसमें रंग भर रहा है। अनार के फूलों का रस बना लाल रंग, हल्दी की बुकनी बनी पीला रंग और हरी स्याही ही हरा रंग हो गई। एक पतली सींक पर रुई लपेट ली गई तो बन गई कूची। इन्हीं उपकरणों को जुटा-कर नक्शे पर रंग भर कर छापे के से नाम वगैरह लिख कर, किट्टू के लौटने से पहले ही सब तैयार कर दिया। जैसे ही रामू ने नक्शे को हाथ में उठाया, किट्टू दौड़ कर आया और हांफते-हांफते पूछने लगा—क्या नक्शा तैयार है? भाई के हाथ में नक्शे को देख कर वह चिल्ला उठा—अरे यह तुमने क्या किया? नक्शा बनाने के बहाने एटलस फाड़ कर रख दिया? वास्तव में नक्शा क्या था, मानो एटलस का पृष्ठ ही था।

जब असल बात मालूम हुई तो किट्टू खुशी के मारे नाचने लगा। उसे ले गया पिता जी को दिखाने। वह बोला—देखिए पिता जी! रामू ने कितना सुन्दर नक्शा बनाया है। वे लापरवाही से बोले—शाबाश, अब मेरे लिए स्वर्ग का रास्ता बित्ता भर ही रह गया। यदि हम अनुमान कर सकें कि लड़कियां विवाह के बाद तीज का व्रत रखने के लिए कितनी उत्सुक रहती हैं, तो हम किट्टू के आनन्द को आंक सकते हैं। वह मदरसा जाने की तैयारी कर रहा था। उसका अंग-अंग फूला न समाता था।

उस दिन शाम को किट्टू शीघ्र घर लौट आया। पिता के पास जाकर बोला—पिता जी, आज अध्यापक जी ने नक्शे की बड़ी तारीफ की। जब मैंने कहा कि

मैंने ही इसे बनाया है तो वे मुझ पर विश्वास ही नहीं करते थे। तब मैंने सच्ची बात कह दी, कुछ देर तो वे ताज्जुब से चित्रवत बैठ गए और बाद में बोले—तुम्हारा भाई प्रसिद्ध चित्रकार बनेगा।

भीमराव एक लम्बी आह भर कर बोले—चितेरा हो या राजा हो, जाने दो उस बात को। लेकिन, तुम वैसे न बनो। समझे बेटा ?

(2)

भीमराव जी बीमार हैं, विषम ज्वर हो गया है। जब से उन्होंने बिस्तर का आश्रय लिया, रामू का दिन का खाना-पीना, रात का सोना हराम हो गया। वह उन्हीं की सेवा में मग्न रहता है। सदा पिता के बिस्तर के पास बैठा रहता है। विद्यार्थियों में दशहरे के आस-पास कुछ दिन खुशी रहती है। दिन भर खेलना-कूदना चलता रहता है। किन्तु, बिना दशहरे के ही रामस्वामी का थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना भी बन्द हो गया, पिता जी की बीमारी की वजह से। मगर वह खुश न था। उसे अपने पिता की बीमारी का सख्त रंज है। फिर भी वह अपने सवेरे के कार्यक्रम में नागा नहीं होने देता।

भाई-भाई के नित्य के कार्यक्रम के बारे में दो-चार बातें कहना यहां अनुचित न होगा। किट्टू सवेरे पांच बजे ही उठता और अच्छी तरह ओढ़ कर, माघ मास में मजबूरी से प्रातः स्नान करने वालों की तरह, परीक्षा का समय निकट देख कर पढ़ने बैठता और बीच में जम्हाई भी लेता। रामू भी उसी वक्त उठता, पर घर में न बैठता। धर्माम्बुधि सरोवर तक पैदल जाता और उषाकालीन छवि को निहारता, पक्षियों के साथ पक्षी बन कर उड़ता, उनका मधुर कलरव सुनता, मोरों की झंकार में अपना राग मिलाता और विकसित चमेली की तरह अपने चेहरे पर भी खिलता हुआ उल्लास लेकर घर लौटता। अपने घर के बगीचे में अपने हाथों लगाए पौधों को सींचता, उन्हें देख कर आनन्द से हिलोरें मारता। नवजात बछड़े की तरह छलांग मारता, बड़ी सावधानी से एक फुल तोड़ता और घर आकर बच्चों की तरह मां से कहता—मां, मां! देखो मां!! इस फूल को देखो। कैसे हंस रहा है। ज़रा घूमो तो सही मेरी अच्छी मां। अपने पौधे के फूल को मैं स्वयं तुम्हारे बालों में गूंथूगा। सामने से तुम हंसती हो और पीछे यह हंसता रहे।

माता रमाबाई हंस कर कह देतीं—जा, जा! मैं बूढ़ी हो चली, बाल सफेद हो रहे हैं। तू तड़के उठ कर मुझे सजाने आ रहा है? ये सब श्रृंगार लेकर अब मैं क्या करूंगी ?

रामू ताली बजाता, हंसता हुआ गुलाब के फूल को मां के बालों में खोंस कर कहता—बाल सफेद हो जाने से ही क्या हो जाता है मां। तुम तो मेरी मां हो न ? रमाबाई बच्चे को गले लगा कर चूमती और प्यार करती। मां का प्यार! उसी वक्त किट्टू आता और मां से पूछता—मां! काफी तैयार है? रामू जब अपनी

मां के साथ निसर्ग सौन्दर्य की वात करता, तव किट्टू ज़ोर-ज़ोर से रट-रट कर पाठ याद करता।

एक रोज़ की वात है। रामू वड़े प्यार से अपने भाई से कहने लगा—किट्टू, सुवह और शाम को प्रकृति-सौन्दर्य वड़ा मनोहर होता है। सुवह घर ही वैठे रह कर तुम तन्दरुस्ती खराव कर लेते हो। एक दिन मेरे साथ प्रातःकाल सैर करने चलो और प्रकृति की मनोहारिणी सुन्दरता का अवलोकन कर, अपनी आंखों को सफल वनाओ। उसे देखने के लिए फ़ीस देने की ज़रूरत नहीं। यह तुम्हारी किताव की तरह कभी गन्दी नहीं होती। हम देखने वाले वालक से युवा, युवा से वूढ़े हो जाएं, वह तो सदा नवल किशोरी है। पूर्व में उदय होने वाले सूर्य को देखो, उसके सुनहले प्रकाश में जगमाने वाली मेघमाला को देखो। तव ऐसा ज्ञात होता है कि मानो वह सूर्य की सुनहली किरणों में स्नान कर आई हो।

—इसीलिए रोज़-वरोज़ घर में तुम्हारी इज्ज़त वढ़ती जा रही है। ये सव तुम्हारे लिए मुवारक हो वावा। मुझे उसकी ज़रूरत नहीं। —किट्टू यह कह कर व्यंग्य से मुस्कराता हुआ चला जाता। ऐसा मतभेद कभी-कभी भाई-भाई में हो जाता था।

भीमराव जी के वीमार पड़ने के साथ ही यह सव हँसी, दिल्लगी एकदम गायव हो गई। भीमरावजी को ज्वर के ताप से रात भर नींद न आती। सुवह की वेला कुछ देर के लिए ज़रा-सी झपकी लेते। उसी समय रामू, मुक्त तोते की तरह उड़ कर अपना कार्यक्रम पूरा कर लेता।

किट्टू पिताजी के जागने का समय देख कर उस कमरे में जाता। जाते-जाते दो वातें पिताजी से कर, अपना सवक याद करने चला जाता। जाते-जाते यह कहना कभी न भूलता कि आप शीघ्र अच्छे हो जाएंगे। रामू परमात्मा से कहता—हे भगवान, अभी तक पिताजी अच्छे नहीं हुए, उनका वुखार उतरा नहीं। अव वे कव तक पूर्ववत चलने-फिरने, घूमने लगेंगे भगवान? उन्हें जल्दी चंगा कर दो हे नाथ!

रामू को दिन और रात अपने पास वैठा देख कर तथा किट्टू को पढ़ने के वहाने पास तक न फटकता देखकर, भीमराव जी का दिल कुछ का कुछ हो गया। उनमें अनिर्वचनीय परिवर्तन आ गया। वे सोचते—अगर पढ़ता नहीं तो क्या हुआ? कितना अच्छा लड़का है। उसे मुझसे कितना प्रेम है। मैंने तो कभी उससे प्यार की एक वात तक नहीं की। जव अच्छा हो जाऊंगा, तव उसके साथ अवश्य अच्छा सलूक करूंगा।

एक रात उनका दिल पिघल कर पानी-पानी हो गया। उसका कारण भी वैसा ही था। कृष्णस्वामी की परीक्षा शुरू हो गई थी। दूसरे दिन सुवह ही उसकी आखिरी परीक्षा भूगोल की थी। भूगोल उसे विल्कुल पसन्द नहीं था। इस विषय में सदा वह कम अंक पाता था। वह चाहता था कि वह इस वार्षिक परीक्षा में ज़्यादा

से ज़्यादा अंक लेकर उस्ताद को चकित कर दे। निद्रा देवी की परेशानी से बचे रहने के लिए, उसने चाय पीकर सुबह तक बैठ कर पढ़ने की ठान ली। वह ज़ोर-ज़ोर से रटने लगा—कन्धार भारत की कुंजी है, कन्धार भारत की कुंजी है। रामू ने नरमी से कहा—पिताज़ी को तकलीफ हो रही है ज़रा धीरे पढ़ो। घर की कुंजी कोने में पड़ी है, तुम भारत की कुंजी के लिए रो रहे हो।

भाई-भाई में खूब बहस हुई। किट्टू हार मान कर आहिस्ता पढ़ने लगा। झूठे सबूत से पकड़े गए प्रतिवादी की आवाज़ की तरह किट्टू की आवाज़ भी बैठ गई। भीमराव पड़े-पड़े ये सब सुनते रहे। उनके दिल में अनजाने ही एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा होने लगी। उनका कलेजा मुंह को आ गया।

किसी भी उपाय से रामू के दिमाग में विद्याकांक्षा उत्पन्न कराने की भीमराव ने अपने मन में ठान ली। उन्होंने घर में भी रामू के लिए मास्टर रख कर पढ़ाने का निश्चय किया। श्रीमती जी ने इस बात पर ज़ोर देकर कहा—हां, यह बात ठीक है, ऐसा ही करना चाहिए। अपने बच्चे का तिरस्कार यदि हम ही करें, तो उस पर रहम करने वाले कौन होंगे? उस दिन जब आपने डाक्टर को आंखें दिखाईं तो उन्होंने कहा था कि बाईं आंख से दाईं आंख ज़्यादा कमज़ोर है। एक ही देह में क्यों ऐसा हुआ? चश्मा ठीक करा लेने पर अब दोनों आंखों से बराबर दिखाई पड़ता है कि नहीं। यही बात हमारे बच्चों में भी है। घर में मास्टर रख कर पढ़ाने से रामू भी लायक आदमी बन जाएगा।

रामू को पढ़ाने के लिए अध्यापक घर आने लगा। अध्यापक का नाम था नारायणस्वामी। वह पढ़ाने में बड़ा उस्ताद था। रामू ने पन्द्रह-बीस दिन के अन्दर ही नारायणस्वामी की बोली तमिल भी सीख ली। इसके अलावा पाठशाला का सबक बस्ते से बाहर का प्रकाश नहीं देख पाया। एक रविवार की बात है। जल्दी रामू को पढ़ा कर चले जाने की इच्छा से नारायणस्वामी दोपहर के दो बजे ही भीमराव के यहां पहुंच गया। राव जी के जलपान का वक्त था। अध्यापक को भी कुछ मिल जाने की सम्भावना थी। नारायणस्वामी के पहुंचते न पहुंचते रामू ने कहा—पण्डित जी, आज मैंने एक गुलाब के फूल का चित्र बनाया है। देखिए तो ज़रा, कैसा बना है। इतना कह कर उसने, दूध पीकर उछलने-कूदने वाले बछड़े की तरह-एक छलांग में कमरे से वह चित्र लाकर उस्ताद के सामने रख दिया।

चित्र क्या था, सचमुच प्रत्यक्ष गुलाब का फूल था। नारायणस्वामी ने दांतों-तले उंगली दबाते हुए प्रसन्न हो कर कहा—रामस्वामी, चाहे कुछ भी हो, इस कला के अभ्यास को कभी न छोड़ना। तुम अवश्य एक दिन रवि वर्मा या नन्दलाल बोस जैसे मशहूर हो जाओगे? इसमें कोई सन्देह नहीं, पर मेहनत व मशक्कत की ज़रूरत है। मैं हमेशा तुमसे यही बात कहता आया हूं और अब भी कहता हूं। परिश्रम करते रहना, भगवान भला करेंगे।

रामस्वामी चंचल जलराशि की तरंगों के बुदबुदों की तरह फूला न समाया। उसने अपने को बड़ा समझा। कुछ देर के बाद सबक आरम्भ हुआ। शिष्य को आता न था, गुरु छोड़ते न थे। कुछ भी हो, पढ़ाई चलती रही। रामू को इस पढ़ाई से मुक्ति नहीं मिलती थी। इतने में रामू की पाठशाला के अध्यापक वहां पधारे। मूल, विग्रह तथा उत्सव मूर्ति का मिलाप हो गया। वे भीमराव जी के दूर के रिश्तेदार भी थे। भीमराव जी ने रामस्वामी को पढ़ाने के लिए पहले उन्हीं से कहा था। पर मुफ्त में पढ़ाने में अभिमान ज़रा अटकता और वेतन लेने में अभिमान घटता। खैर, यह तो पुरानी बात हो गई। राव जी तथा अध्यापक जी में बातें शुरू हुईं। राव जी ने मास्टर साहब से पूछा—कहो जी। कैसे रास्ता भूल पड़े।

—नहीं जी, यह क्या आप कहते हैं। रास्ता भूल कर नहीं आया, खास कर यहीं आया हूं। आपके सुपुत्र ने परीक्षा में तो बहुत ही अच्छा लिखा है, उसे खूब अंक मिले हैं।

—हे भगवान, यह दिन देखने के लिए मैं किस प्रकार तरसता रहा। घर में मास्टर लगा देने का फल प्राप्त हुआ।

—रमाबाई दरवाज़े की आड़ ही से बोल उठीं—मैंने तो पहले से ही कहा था न, कि वह ठीक हो जाएगा।

नारायणस्वामी ज़रा आगे बढ़ता हुआ बोला—मैं भी दिल से पढ़ाता हूं। और मन में लड्डू खाता रहा कि अगले महीने वेतन वृद्धि की मांग पेश करूंगा।—रामस्वामी तमिल भी जानने लगा है। इसका भी परिचय उसने अपनी उत्तर पुस्तक में दिया है।

—अच्छा दोनों भाषाओं में जानकारी दिखाई है? उसने तमिल भी सीखी है तो नारायणस्वामी जी से, केवल बातचीत करने से ही।

वर्षारम्भ में जिस प्रकार पण्डित जी यजमान को पंचांग सुनाने आकर बगल में अपने पोथे की गट्ठी निकालते हैं, उसी प्रकार अध्यापक महाशय ने भी बगल में दबी हुई उत्तर-पुस्तकों का पुलिंदा निकाल कर सामने रख दिया। और उधर राम-स्वामी घर से भाग गया। अध्यापक ने कहा—यह गणित की उत्तर-पुस्तक है। बहुत अच्छी तरह प्रश्न को हल किया है। अन्य उत्तर-पुस्तकें भी इसी प्रकार की हैं। अब की बार गणित के आठ प्रश्न थे। रामू ने प्रथम प्रश्न का उत्तर लिखा है; नहीं आता, दूसरे का—नहीं आता बाबा, तीसरे—का नहीं आता बाबा, नहीं आता। चौथे का—नहीं आता साहब, नहीं आता। और एक का उत्तर है—सचमुच मुझे नहीं आता, मैं क्या अपना सर हल करूं? फिर लिखता है—खुदा की कसम नहीं आता। शेष दो प्रश्न उसने किए हैं, मगर गलत। इस प्रकार गणित के परचे में अंक शून्य प्राप्त हुआ है। अब सुनिए भूगोल का क्या हाल है? प्रश्न था—किंबर्लि कहां है? उसका उत्तर है—यह हिमालय की तलहटी में समरेखा पर है।

वहां की खानों में पत्थर के कोयले काफी मिलते हैं। यह हुआ भूगोल। अब इतिहास सुन लीजिए। प्रश्न था—महाराजा पृथ्वीराज कहां, कब और कैसे मरे? रामस्वामी ने उत्तर दिया है—पृथ्वीराज दिन में या रात में नहीं, तो तड़के मरा होगा। वह राजा था इसलिए युद्धक्षेत्र में मारा गया होगा। और नहीं तो सब की तरह बीमारी से घुल-घुल कर मर गया होगा।

मास्टर साहब की ये बातें सुन कर सब के सब एकदम अवाक् रह गए। नारायणस्वामी का बना-बनाया आकाश भवन जहां का तहां ढह गया। आगे क्या हुआ, इसकी चर्चा यहां अनावश्यक है।

कुछ महीने गुज़र गए। रामू ज्यों का त्यों बना रहा। घर पर मास्टर लगा दिया है, सिखाते हैं, यह सोच कर रामू पाठशाला में बेफिक्र रहने लगा। वहां पढ़ाई की ओर ध्यान ही नहीं देता। भीमराव घर के मास्टर से लड़के को कोई फायदा न होने से उसे हटा देने के लिए बहाना ढूंढ़ रहे थे। संयोग की बात है कि एक दिन रामू अपने मास्टर से बोला—मास्टर जी, देखिए मैंने पिताजी का चित्र बनाया है। जब हजामत बना रहे थे, उस वक्त का यह चित्र है। यह कहते हुए रामू ने चित्र लाकर सामने रख दिया। चित्र में भीमराव जी देखने ही लायक थे। उनकी चोटी खुली हुई थी। जनेऊ कान पर था। नारायणस्वामी का यह कहना कि चित्र बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक है और भीमराव जी का यह कहते हुए वहां पहुंच जाना कि क्या है, कैसा चित्र किसने बनाया है, इधर लाओ तो सही देखें ज़रा, एक ही समय में हो गया। इसी को कहते हैं न—काक तालीय न्याय। राव जी चित्र को देख कर झुंझला गए। उन्होंने सोचा कि शायद गुरु-शिष्य दोनों ने मिल कर उन्हें चिढ़ाने के लिए उसे बनाया है। यह तो प्रसिद्ध है ही कि— मालिक का गुस्सा नौकर पर। वे नारायणस्वामी पर हमला कर बैठे। उन्होंने क्रोध से चिल्ला कर कहा—क्या तू यही सब लड़के को सिखा रहा था इतने दिनों से? दोनों बेलगाम के सांड निकले। नालायक कहीं के। अब इस तरफ भूल से भी कदम रखोगे तो मारे जूतों के नाक में दम कर दूंगा। अच्छा पाठ पढ़ाया है लड़के को। अच्छी शिक्षा दी है। रामस्वामी पर भी खूब मार पड़ी। बस, उस दिन से घर का अभ्यास बन्द।

(3)

भीमराव जी के यहां मेहमान आए हुए थे। उन्हें सांस लेने की भी फुर्सत न थी। उन लोगों की खातिरदारी में दौड़-धूप करते-करते वे थक गए थे। इस गड़बड़ से तथा बीमारी की वजह से स्मरण शक्ति भी जवाब दे रही थी। एक क्षण जो कहते उसके बिल्कुल विपरीत बातें, दूसरे क्षण में कर जाते। घर में हर एक पर नाराज़ होते। सुबह दस बजे का वक्त था। राव जी के हाथ में सौ रुपये का एक नोट था। रामस्वामी का जी उसे हाथ में लेकर देखने को ललचाया। पिता से लेकर कुछ देर तक घुमा-फिरा कर उसे देखने के बाद उसने वह नोट पिता के हाथ में

रख दिया। दोपहर के समय रावजी को नोट की याद आई तो रामस्वामी को बुला कर पूछने लगे कि नोट कहां है? इधर लाओ। रामस्वामी सकपका कर बोला—मैंने सवेरे ही आपके हाथ में दे दिया था। पिता ने अचम्भे से कहा—कहां, नहीं तो, ला जल्दी ला। एक सौ का नोट था, सभी ओर आतंक छा गया। सबके सब इधर-उधर खोजने लगे। नोट नहीं मिला। नहीं मिला। रामस्वामी की दशा सांप-छछूंदर की-सी हो गई। पिता जी तो चिल्ला-चिल्ला कर आसमान सर पर उठाते थे। गाली-गलौज की तो कोई बात ही नहीं। इस पर धधकती आग में ईंधन की तरह मेहमानों ने भी अपनी जीभ रूपी तलवार चला कर गाली की बौछार ही कर दी। राव जी का यही निर्णय था कि रामस्वामी ने नोट नहीं दिया है। वह चालाकी से उसे हड़पना चाहता है। रामस्वामी बड़ा स्वाभिमानी था। बेइज्जती और अपमान सह कर जीने की अपेक्षा मरना उसके लिए वांछनीय था। वह चाहता था कि धरती फट जाए तो उसमें समा जाऊं। पिता का एक-एक शब्द उसके हृदय में तीर की तरह चुभता था। चारों ओर से पुत्र पर हमला होते देख, माता का हृदय पिघल गया और आंसू के रूप में बहने लगा। रामस्वामी की मातृ भक्ति उसे सह न सकी। उसने सोचा—हे भगवान, किसी हालत में माता की आंखों में आंसू नहीं देख सकता। पिता जी मुझे भले ही मार डालें सह लूंगा। मगर माता की आंखों में आंसू मुझसे नहीं सहे जाएंगे।

भीमराव जी कड़ाके की आवाज़ में गरज उठे—अगर रामस्वामी नोट ला कर नहीं देगा, तो वह घर में रहने नहीं पाएगा। कहीं मुंह काला करके चला जाए। चोर को घर में रख कर अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मार लेने वाला मूर्ख मैं नहीं हूं।

रामस्वामी घर के बाहर ओसारे पर खड़ा रोता रहा ...... रमाबाई ने उसे समझाने के लिए घर से बाहर जाना चाहा, तो भीमराव जी ने डांट कर कहा—तेरे ही दुलार के कारण वह ऐसा नालायक बनता जा रहा है। जा, अन्दर चली जा। पत्नी से इतना कह कर, लड़के की ओर घूम कर बरस पड़े—खड़ा-खड़ा क्या ताक रहा है, जा यहां से निकल जा। तुम जैसे सपूत के रहने की बनिस्बत मर जाना ही बेहतर है।

मां रमाबाई अपने बेटे के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित थीं। इसलिए उसके चले जाने पर उन्हें कुछ डर-सा लगा।

शाम का वक्त था। रामस्वामी के चले जाने के बाद मेहमानों के साथ मेज़बानों का भी जलपान हुआ। मेहमानों के कारण ही उस दिन जलपान जैसा नाटक खेलना पड़ा, नहीं तो उस दिन सौ रुपये के नोट के खो जाने के गम में जलपान या चाय-पानी की किस को दरकार थी? इस वक्त भीमराव लाचार थे। उनके साथ तो बैठ कर निबाहना ही था। पर भीतर रमाबाई कुछ न कर सकीं। भीमराव जी मेहमानों के साथ सिनेमा देखने चले गए। रमाबाई न जा सकीं। सिर दर्द का बहाना

कर घर पर ही रह गईं। आज का दिन था भी ऐसा ही, जिसके कारण वे रमाबाई को विवश करने के लिए मजबूर थे। रामू के चले जाने से उन्हें कुछ अच्छा न लगता था।

रात हो गई। रामस्वामी नहीं आया। रमाबाई पर घड़ों पानी पड़ गया। फिर भी उन्होंने सोचा था कि शायद वह भी मेहमानों के साथ सिनेमा चला गया है। सिनेमा वाले आ गए पर रामस्वामी नहीं आया। तब लोग ढूंढ़ने निकले। राव जी ने भी रामू का पता लगाने में कुछ उठा न रखा। जगह-जगह आदमी भेज कर तलाश कराई। समाचारपत्र में—खो गया स्तंभ में—विज्ञापन भी दिया गया। अपने नाते-रिश्तेदारों को लिखा कि यदि रामस्वामी आया हो, तो मेहरबानी करके फौरन घर वापस भेज दें। रामस्वामी का कहीं कुछ पता न चला। माता-पिता के दुख की सीमा न रही। परन्तु कालचक्र तो स्वतन्त्र रूप से घूमता ही रहता है। उसे किसी की परवाह नहीं। कई साल बीत गए, रामस्वामी का कुछ पता नहीं चला।

मां रमाबाई उसी के शोक में घुली जाती थीं। रामस्वामी के चले जाने के बहुत समय बाद एक दिन भीमराव जी ने पंचांग निकाला। तब उसमें सौ रुपये का वही नोट, जिसके लिए इतना प्रलय मच गया था मिल गया। अब राव जी पूरी तरह समझ गए कि रामस्वामी निरपराध है। पर अब इस समझ से क्या लाभ?

उनका दुख दिन ब दिन बढ़ता गया। अब तक वे साठ पार कर गए थे, पर यह नहीं जानते थे कि बदहज़मी किस चिड़िया का नाम है? अब उन्हें सदा उसी की शिकायत बनी रहती। वे बहुत दुबले-पतले हो गए। इसके पहले वे रामस्वामी के कुत्ते को देख कर नाक-भौं सिकोड़ते थे। लेकिन अब उसे प्यार करने लगे। रमाबाई के लिए तो दुख का दरिया ही उमड़ पड़ा था। रामस्वामी की एक-एक चीज़ को देख कर तमाम बातों की याद कर वे रोती थीं। उनका खाना-पीना तक हराम हो गया।

कई साल बीत गए। ज़माने के साथ आदमी का रंज भी कम होता जाता है। इसी को कालाय तस्मै नमः कहा जाता है। एक दिन की बात है कि भीमराव जी अपने किसी नातेदार के यहां न्योते पर गए थे। वहां पर उन्होंने एक तस्वीर देखी। वह बहुत ही सुन्दर थी। बाल मोहन, प्यारे कन्हैया का लीला-विनोद उसमें चित्रित था। करीब आठ साल का बालक कन्हैया किसी एक गोपी के घर में घुस गया है। घरवालों से छिप कर दही का मटका सामने रख दही खा रहा है और इधर-उधर छिपी निगाह से देखते हुए दोस्तों को खिला रहा है। चोरी पकड़ी जाने की शंका उसकी आंखों में प्रत्यक्ष दर्शित है। एक छोटी-सी दीपशिखा टिमटिमा रही है। उसकी रोशनी उस बालक के घबराए हुए चेहरे पर पड़ने से उसे और भी आकर्षक व मन-मोहक बना रही है। पेट पर दही, हाथ, मुंह, छाती पर, कमरे की ज़मीन, सब जगह दही! दही!! जीवन भार से लदा बादल कभी-कभी उदीयमान सूर्य की आड़ में

होता है, तब आप लोगों ने उस सूर्य की खूबी को तो अवश्य देखा होगा। वह देदीप्यमान होकर सारे आकाश मण्डल को जगमगाता है। इस अवसर पर कृष्ण का मुख भी उसी प्रकार जाज्वल्यमान है। उनकी कमर में करधनी, घुंघरू, अंगुली में हीरे की अंगूठी, गले में मोतियों का हार, कानों में कर्णफूल, और सिर पर मोर-मुकुट है। ये बाल गोपाल की शोभा को बढ़ाने की अपेक्षा खुद उनकी कान्ति से कान्तिमान हो रहे हैं।

भीमराव चित्र को देख कर स्वयं भी चित्रस्थ हो गए। उन्होंने घर के मालिक अपने दोस्त नारायणराव से पूछा—यह सुन्दर चित्र तुम्हें कहां मिला? जितना भी देखो इसकी भाव-भंगिमा से तृप्ति ही नहीं होती।

नारायणराव—यह तो नया चित्र है। यह देखने योग्य चीज़ है। बाज़ार में तो इसकी मांग बहुत है। इसके चितेरे को विलायत के ललित कला निकेतन से पारितोषिक भी मिला है। अगर आप चाहें तो इसे ले जाइए। मैं एक और मंगा लूंगा। नारायणराव के आग्रह से भीमराव जी उसे लेकर खुशी-खुशी अपने घर चले गए।

(4)

ट्यूशन छूट जाने पर नारायणस्वामी ने बम्बई जाकर कानून पास किया और वहीं पर वकालत करने लगा। खुद मेहनती था। वकालत पनपी, खूब धन भी प्राप्त हुआ। गर्मियों की छुट्टी में जब अदालत बन्द हुई, वह बंगलोर गया। तभी भीमराव जी के यहां भी गया। उसको देखते ही भीमराव जी को रामस्वामी की याद सताने लगी। उनका मुख पीला पड़ गया। कुशल समाचार के बाद भीमराव तथा रमाबाई ने रामस्वामी की बात छेड़ी तो उनको भी बड़ा दुख हुआ। नारायण-स्वामी ने उन्हें हिम्मत बंधाई और किट्टू के बारे में पूछताछ की।

—किट्टू अब अकेला है। उसका भी जी अब पढ़ने में नहीं लगता। फिर भी पढ़ रहा है, एम० ए० में है।

इतने में नारायणस्वामी ने कान्ह की तस्वीर की ओर देख कर पूछा—ओह! यहां भी यह तस्वीर आई है!

राव जी ने कहा—हां जी, यह तो बड़ी सुन्दर तस्वीर है। पता नहीं किस चितेरे ने इसे बनाया है। शायद वह महान् चित्रकार कृष्ण का अनन्य भक्त होगा।

—भीमराव जी! क्या चित्रकला इतनी उत्तम है! चित्र खींचने के लिए इतनी अक्ल की क्या ज़रूरत है?

—भैया, ऐसी मर्मभेदी बातें न कहो। मुझे बड़ा खेद है। क्या जाने मेरा रामस्वामी भी इसी के बराबर का चितेरा होता। मेरी अक्ल तो चरने चली गई थी। मैंने अपने घर में आप ही आग लगाई है। अब सिर पीटने से क्या होगा? जैसी

करनी वैसी भरनी। जाने दो उस बात को। यह तो जन्म के साथ लगा हुआ है। इस चित्रकार की जितनी भी तारीफ करो कम है।

—यह तो है ही। मैं उन्हें जानता हूं। बम्बई में हैं। उन्होंने तो कई चित्र बनाए हैं। चन्द्रशेखर का एक चित्र है। उसे देखने से ऐसा मालूम होता है मानो ईश्वर उठ कर हमारे निकट आ रहे हों। चन्द्रमा की रेखा ऐसी प्रकाशमान है मानो साक्षात शरच्चन्द्रिका है। बड़े भक्त तथा उदार भी हैं।

—ऐसे ही तो होना चाहिए। इस चित्र की दीपशिखा देखने पर ही उसका भी अनुमान लगाया जा सकता है। सत्य का भ्रम हो जाना स्वाभाविक हैं। इसी में तो है हस्त-कौशल। तुम तो इनको जानते हो?

—उनके बारे में क्या कहना, जितनी भी प्रशंसा करूं कम है। उनके यहां इसी का व्यापार भी चलता है। खूब कमाते हैं। राजा, महाराजा, नवाब लोग उनकी चित्रशाला में स्वयं आकर चित्र चुनते हैं पर मूल्य पर नहीं, क्योंकि ये अमूल्य हैं—हज़ारों रुपये भेंट में दे जाते हैं। पर ये बड़े त्यागी हैं। विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देते हैं। वे एक ओर धन-कुबेर हैं, तो दूसरी ओर दान-वीर भी हैं। हां, भूल ही गया। वे तो कल ही यहां आनेवाले हैं, अब की बार दक्षिण की यात्रा करना चाहते हैं। हम दोनों कुछ दिन के लिए नीलगिरि जा रहे हैं। यदि आप उनसे मिलना चाहें तो शाम के वक्त सैर कराते हुए आपके यहां भी ले आऊंगा। बड़े सज्जन हैं।

—अवश्य ऐसा ही कीजिएगा। शाम का जलपान यहीं हो। ऐसे ही लोगों से हमारे भारत का नाम उज्ज्वल है। उनका दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझूंगा।

—यह आप क्या कह रहे हैं। वे तो अभी नवयुवक हैं, हां होनहार अवश्य हैं। नन्दलाल वसु की तरह वयोवृद्ध तो हैं नहीं कि आप दर्शन से अपने को कृतार्थ समझेंगे। वे तो स्वयं आपका आशीर्वाद पाकर सन्तुष्ट होंगे।

—विद्या तथा कला के सामने, योग्यता के सामने, उम्र क्या चीज़ है? कल अवश्य उन्हें लेते आना।

दूसरे दिन दोपहर से ही भीमराव जी, नारायणस्वामी के साथ चित्रकार की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भीमराव की नज़र सड़क की ओर ही थी। अन्त में नारायणस्वामी कुछ सामान-पेटी-बिस्तर के साथ पहुंच गया। भीमराव जी ने पूछा—क्यों जी अकेले आए? वे कहां हैं? यह सब सामान किसका है? कहां से आ रहे हो?

—वे अभी चन्द मिनटों में आएंगे। आज रात यहीं रह कर कल सुबह चले जाएंगे। इसीलिए असबाब के साथ उन्हें यहीं ले आ रहा हूं। मेरा घर तो आप जानते ही हैं, चिड़ियाघर है। इसी वास्ते मैंने यह इन्तज़ाम बेहतर समझा।

—तुम्हें अब किस बात की कमी है जी! अच्छा कमाते हो, अच्छा खाते-

पहनते हो। कुबेर होने में कोई कसर तो बाकी न रही। उनका यहां आना तो मेरे सौभाग्य की ही बात है।

भीमराव जी की बातें खत्म होते न होते नारायणस्वामी ने कहा—आइए! आइए!! चित्रकार जी तशरीफ लाइए। भीमराव जी दरवाज़े की तरफ पीठ किए चित्र देख रहे थे। आवाज़ सुन कर फौरन घूम कर देखने लगे। निगाह पड़ते ही वे मूर्ति के समान खड़े के खड़े रह गए। उन्होंने वहां क्या देखा? अपने रामस्वामी को। भीमराव जी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। होश सम्भाल कर बोले—तुम्हीं हो प्यारे कन्हैया?—वे कहना चाहते थे—तुम्हीं हो प्यारे कन्हैया के चितेरे? किन्तु गला भर आने से वाक्य पूरा न कर सके।

रामस्वामी ने पिताजी को प्रणाम किया। अन्दर जाकर माताजी के चरण छुए। वे बचारी खुशी से रो पड़ीं। भीमराव जी भी उसके पीछे-पीछे अन्दर गए थे, वे भी आंखें पोंछने लगे। माता-पिता की खुशी का क्या कहना? जिस पुत्र के बारे में वे निराश हो गए थे, जिसके दर्शन अलभ्य समझ बैठे थे, जिसको पाजी, झूठा, बेईमान कह कर घर से निकाल दिया था, वही आज खरा सोना बन कर चमकता हुआ सामने खड़ा है; जितनी भी खुशी मनाएं कम है।

पुत्र को देख कर माता का हृदय तृप्त ही न होता था। बातें खत्म न होती थीं। वे यह भी भूल गईं कि हमने एक विख्यात चित्रकार को जलपान के लिए निमन्त्रित किया है।

नारायणस्वामी जिस दिन कानून पढ़ने बम्बई जाने वाला था, उसी दिन भीमराव जी के यहां नोट की घटना घटी थी। माता-पिता से जेब-खर्च के लिए जो पैसे मिलते थे, उन्हें रामस्वामी ने इकट्ठा कर रखा था। उसी की सहायता से नारायणस्वामी से बिना कहे रामस्वामी भी बम्बई का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया था। जब दोनों बम्बई के दादर स्टेशन पर उतरे तो रामस्वामी ने सारी बातें कह दीं और यह भी कह दिया कि यदि वे माता-पिता को खबर भेजेंगे या उन्हें बुला भेजेंगे, तो वह कहीं डूब कर मर जाएगा। नारायणस्वामी बड़ा दयालु था। उसी ने रामस्वामी को एक चित्रशाला में भर्ती करा दिया। वहां के प्रधान आचार्य ने चित्र-कला में उसकी रुचि देख कर, उसकी तीव्र बुद्धि से खुश होकर अपने ही घर में उसके खाने-पीने तथा रहने का प्रबन्ध किया। उसके परिश्रम तथा भगवान की कृपा से रामस्वामी का प्रत्येक चित्र बहुत उत्तम बनता था।—यह कहानी नारायणस्वामी के मुंह से सुन कर, माता-पिता ने हर्ष के मारे पुत्र को हृदय से लगा लिया। किट्टू भी भाई के नक्शे बनाने का तरीका याद कर निहायत खुश हुआ।

भीमराव जी ने नारायणस्वामी को गले लगा कर गद्गद कंठ से कहा—तुम्हारे ही कारण आज मुझे यह दिन देखने को मिला। मैं बड़ा पापी हूं। उस दिन मैंने तुम्हें भी खरी-खोटी सुनाई थी। इस वक्त मुझे जो दुख है वह भगवान ही जानता है।

भैया मेरे ! जो मेरे अपराध हैं उन्हें कृपया मन में न रखना।——यह कहते-कहते उनकी आंखों से आंसुओं की धारा वह निकली। नारायणस्वामी ने भी उनकी बातों का समयोचित जवाब देकर उनके मन को सांत्वना दी।

एक दिन रामस्वामी ने पिताजी से बड़े दीन भाव से कहा——मैं तो पढ़ाई में पीछे ही रह गया; कम से कम किट्टू को खूब पढ़ने दीजिए। जहां चाहे वह पढ़े। खर्च की कोई बात नहीं, जितने वर्ष चाहे वह पढ़े। चलिए हम सब बम्बई जाकर रहें। किट्टू की पढ़ाई की भी वहीं सुविधा रहेगी। अब इस बात की चर्चा छिड़ गई कि सब बम्बई चले जाएं या बंगलोर में रहें। अब हम क्यों उसकी फिक्र करें ? हम तो इतना अच्छी तरह जानते हैं कि भीमराव तथा रमाबाई फूली नहीं समाती हैं।

लाल सलवार

अख्तर मुहीउद्दीन

नविर शाल की आयु सत्तर से ऊपर थी। उसने ये ढेर से सारे वर्ष लोगों के फटे कपड़ों को रफू करने में गुज़ारे थे, और इस समय भी वह यही काम करता था। उसका दो ताकोंवाला तीन मंज़िला लकड़ी का कोठा झेलम नदी के किनारे पर खड़ा था। नविर शाल इस कोठे के एक ज़रा वाहर निकले हुए कमरे में बैठा नाक पर मोटे शीशोंवाली एनक को धागे से वांधे काम करता और गीत गाया करता था—

मस वो चोवनस रातो के प्यालय हनो।

(यार ने मुझे रात की बची हुई थोड़ी-सी शराव पिला दी)

नविर शाल ने अपनी ज़िन्दगी का ज्यादा हिस्सा इसी जगह गुज़ारा था और उसे इस दौरान में केवल दो गीत याद रहे थे।

चोनोन पोशि रंग है ढींठमस तन
हा चोनो वोनज्यस बोज़ो आलम।

(मेरे प्रीतम का शरीर आड़ू के शगूफे की भांति सफेद-गुलावी है। पर सखी, इस वात की चर्चा न करना, वरना मेरे प्रीतम को सारे विश्व की नज़र लग जाएगी।)

नविर शाल वचपन ही से हकलाता था और अव दांत उखड़ जाने के कारण यह हकलाहट और भी वढ़ गई थी। वह एक भोलें-भाले मासूम वच्चे की भांति टूटी-फूटी वातें करतां। उसकी दाढ़ी के इक्के-दुक्के वाल मुंह पर सफेद वर्फ की भांति चमक रहे थे। ऐसा महसूस होता था, जैसे उसने अपनी स्त्री के दामन से पशम के सफेद रोएं उठा-उठा कर मुंह पर चिपका लिए हों। उसके हाथ थर-थर कांपा करते थे। फिर भी वह काम किए जा रहा था। और ज्यों-त्यों करके अपनी जीविका कमाता था। उसका काम भी खूव चल रहा था। उसके ग्राहक कहा करते थे कि पुराना कारीगर है, इसके मुकावले में नए कारीगरों की क्या विसात ?

नविर शाल को संसार में केवल दो चीज़ों से प्यार था। एक तो उसका अपना लकड़ी का यह पुराना कोठा और दूसरी उसकी स्त्री, जिसका नाम था खोतन दृयद। वह हर शाम नविर शाल के हाथ-पांव दवाती, उसके थके हुए अंगों को सहलाती और उसे आराम से सोने के काविल बना देती।

वह गर्म-गर्म भात का बर्तन उसके आगे रख देती और हर समय चिलम में तम्बाकू और आग भर कर हुक्का ताज़ा कर देती। जिस समय नविर शाल अपने कोठे में बैठ कर पशमीने के कपड़ों के घावों की अपनी सूई और धागे से मरहमपट्टी करता, उसकी स्त्री उसके सामने बैठ कर पशम से बाल पृथक् करती, या साफ की हुई पशम को सफेद रंग देने के लिए उस पर चावलों का आटा छिड़क देती, या पास बैठी-बैठी चर्खा कातती। ऐसे अवसरों पर नविर शाल उससे सदा कहा करता था—

—मैं तुम्हाला तुस्ताद हूं और तू मेली शागिल्द।' (मैं तुम्हारा उस्ताद हूं और तू मेरी शागिर्द।)

और खोतन द्यद इसके जवाब में तुनक कर जवाब देती—वाह, तुम उस्ताद कैसे बन गए और मैं क्यों शागिर्द हुई? शागिर्द तो तुम हो।

खोतन द्यद का मुंह भी सामनेवाले एक दांत के अभाव में पोपला-सा था। उसका निचला ओंठ मुंह के अन्दर धंस गया था और उस पर ऊपरवाले जबड़े का अकेला दांत कील की भांति झुक गया था। उसके मुंह पर झुर्रियां ऐसे फैल गई थीं, जैसे उबला हुआ शलगम हो और उसके बाल अत्यन्त मैले लट्ठे की भांति लग रहे थे। बीस वर्ष से उसके यहां कोई बच्चा नहीं हुआ था। इससे पहले उसके यहां ईश्वर की दया से दस बच्चे हुए थे। मगर उनमें से पहलौठी लड़की और उसके बाद की एक लड़की ही बच पाई थीं। शेष सब खुदा को प्यारे हो गए थे। बड़ी लड़की अब नातेदारों वाली गृहस्थिन बन चुकी थी और छोटी लड़की भी अपनी सास की मृत्यु के बाद घर की मालकिन बन चुकी थी।

खोतन द्यद और नविर शाल अब कितने ही वर्षों से लकड़ी के इस कोठे में अकेले रहते आ रहे थे। दोनों का दो समय साग-भात मज़े से चल जाता था। उन्हें आज तक कभी किसी बड़ी मुसीबत का सामना नहीं करना पड़ा था। बेटियों की शादियों पर उधार लिया था, किन्तु धीरे-धीरे वह सब अदा कर दिया था। खोतन द्यद की केवल एक ही अभिलाषा बाकी रह गई थी। वह यह कि उसका कोई लड़का जिन्दा होता। वह सोचती कि कितने मजबूत और स्वस्थ बच्चे जने थे, फिर उन्हें किसकी नज़र खा गई। मुहल्ले भर में मशहूर था कि नविर शाल के पास काफी पैसा है। हज़ार दो हज़ार तक भी हो सकता है। किन्तु वास्तव में उनका क्या-हाल था, यह तो ईश्वर ही जानता था। सच तो यह था कि नविर शाल जो कुछ कमाता, वह पेट को अर्पित कर देता था।

आज भी नविर शाल अपने कोठे के बाहर निकले हुए कमरे में अपनी मोटे शीशोंवाली ऐनक से, धागे को कानों में फंसा कर पशमीने के कपड़े पर रफू करते हुए अपना प्रिय गाना गा रहा था—यार ने मुझे कल रात की बची हुई...। खोतन द्यद पास ही एक ओर बैठी चर्खा कातती, मुंह ही मुंह अपने पति

के गीत के बोल उठा रही थी। जेहलम नदी का गंदला पानी बहता हुआ दिखाई दे रहा था। शायद दक्षिण कश्मीर में वर्षा हुई थी, तभी तो नदी का पानी इस कदर गंदलाया हुआ था। किन्तु शहर में आज कई दिनों से मेह न बरसा था, इससे बहुत गर्मी हो गई थी और किसी काम में जी न लगता था। किन्तु नबिर शाल बेचारा अकेली जान था। काम करने को जी चाहता या न चाहता, लेकिन काम करने के बिना कोई चारा भी न था। नबिर शाल को आज महसूस हो रहा था कि वह अपनी आंखों का सारा का सारा खून धागे की सूरत में सुई में डालता जा रहा था और इसी धागे से लोगों के फटे हुए कपड़ों को रफू किए जा रहा था। इस समय उसका सारा शरीर पसीने में लथपथ हो रहा था और उसके घुटने पर पड़ी हुई पशमीने की हल्की-फुलकी चादर उसे बुरी तरह खल रही थी। इतनी गर्मी और इस पर यह बला घुटनों पर सवार। मगर, बहरहाल काम तो करना ही था। इसी अनुभूति से पिण्ड छुड़ाने के लिए या अपनी आदत से विवश वह चिल्लाए जा रहा था—यार ने मुझे कल रात की बची हुई···।

बड़ी कठिनाई से उसने चादर का रफू खत्म किया और अब केवल इस चादर से लटकते हुए फाजिल धागों को काटना बाकी था। उसने कैंची के लिए इधर-उधर यों ही हाथ मारा, किन्तु कैंची उसके हाथ न आई। अन्त में उसने अपनी स्त्री से पूछा।

—कैंची कहां है ली ?

—वह मैंने अभी उठा कर रखी है।—स्त्री ने जवाब दिया।

—इधल ला, उठा के क्यों लखी थी ?

खोतन द्यद की तबीयत उठने की नहीं थी। उसकी टांगों में गठिया का दर्द था और इस कारण उसे उठने-बैठने में बहुत तकलीफ होती थी। अगर उसके बस की बात होती, तो वह जन्म भर के लिए उठने का नाम न लेती। किन्तु अपने पति के कहे को कैसे टाल सकती थी। वह उसके मुंह कैसे लग सकती थी ? हाय-हाय करती हुई वह उठ खड़ी हुई और कैंची ढूंढ़ने लगी। सब से पहले उसने ताकचा देखा। पर कैंची वहां न थी। छोटी टोकरी को खोला, किन्तु वहां भी वह हाथ न आई। उधर नबिर शाल उतावली मचा रहा था। वह चाहता था कि रफू के फाज़िल धागे जल्द से जल्द काट के वह काम खत्म करे और टांगें फैला कर आराम से लेट जाए।

उसने शोर मचाया—कैंची, जल्दी ढूंढ़ निकाल।

—ढूंढ़ तो रही हूं —खोतन द्यद ने उत्तर दिया। और फट्टे पर से पुराने कपड़े की गठरी उतार कर नीचे ले आई। इस गठरी में पुराने चिथड़े और बच्चों के पोतड़े जमा थे। बच्चे नहीं थे, पर उनके पोतड़े अब भी मौजूद थे। खोतन द्यद ने इन पोतड़ों की ओर देखा और उसका मन हिचकोले खाने लगा।

वह सोचने लगी—किस कदर मज़बूत और स्वस्थ बच्चे थे, फिर उन्हें किसकी नज़र खा गई। बच्चों के कपड़े उलटने-पुलटने के दौरान कई विचार आए। एक-एक करके उसे अपने सारे बच्चे याद आए। उसकी सूखी-सिकुड़ी छातियों पर जैसे कितने ही नर्म-नर्म ओंठों ने दूध चूसना शुरू किया। इतने में ही एक लाल कपड़े पर उसकी नज़र पड़ी। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। यह एक लाल सलवार थी। उसके ब्याह के जोड़ों में से बची हुई, आखिरी सलवार। उसे अपनी जवानी याद आ गई।

खोतन द्यद लजा गई। उसने अपने पति की नज़रों से इस विचार को बचाना चाहा। किन्तु सलवार की सुर्खी कहीं छिपाए छिप सकती थी? यह सुर्खी तो जैसे छन-छन कर सारे कमरे पर छाई जा रही थी। मारे लाज के खोतन द्यद के मुरझाए हुए चेहरे पर सुर्खी दौड़ने लगी। उसके चेहरे पर एक युवती की-सी लाज सुर्खी बन कर छा गई और उसका मन फिर डोलने लगा। उसे महसूस हुआ, जैसे वह पहली रात की दुलहन थी और नबिर शाल उसका दुलहा। जैसे धंधों मोज (दूध माता) अभी-अभी कमरे से निकल कर खोतन द्यद को नबिर शाल के साथ पहली रात गुज़ारने के लिए छोड़ आई हो। उसने एक उचटती निगाह नबिर शाल पर डाली। वह टकटकी लगाए उसे देख रहा था, हँस रहा था और गा रहा था—मेरे प्रीतम का शरीर आड़ू के शगूफे की भांति गुलाबी है।

इस समय खोतन को नबिर शाल वास्तव में एक युवक नज़र आने लगा। अलपाक के कपड़े का फिरन पहने हुए पशमीने का शाल शानों से लटकाए हुए और नौ सौ बहत्तर वाली मलमल की पगड़ी बांधे हुए जैसे एक स्वस्थ दुलहा घोड़े से नीचे उतरा हो। जैसे वह शरमाई-लजाई हुई दुलहन थी। गरदन झुकाए हुए? भोले-भाले नादान विचारों को मन में लिए हुए भय से कांपती, इस विचार से थर्राती हुई कि—हाय अगर वे बात करेंगे, तो मैं क्या जवाब दूंगी? मैं लजाऊंगी तो नहीं?

खोतन द्यद इन्हीं विचारों में डूबी थी कि उसे नबिर शाल की एक पुरानी बात जैसे, मुद्दत के बाद पुनः सुनाई दी। हां, उसी ने तो कहा था। वह कह रहा था—जला पहन तो लो यह शलवाल! (ज़रा पहन तो लो यह सलवार)।

वह लज्जित हुई थी और उसने बात टाल दी थी। करती भी क्या? नबिर शाल फिर बोल उठा—पहनो ना!

इतना कह कर नबिर ने अपने घुटनों पर से पशमीने की चादर धुस्से की भांति गिरा दी और दुलहे की भांति खोतन द्यद के समीप जाकर उससे कहने लगा—अब पहन भी लो।

—तुम सठिया गए हो।—खोतन द्यद ने एक कुंवारी की भांति वल खाते हुए जवाव दिया।

—मैं सठिया गया हूं ?—नविर शाल ने पूछा। खोतन द्यद अव खामोश हुई। उससे तो उठा भी नहीं जा रहा था। उठने की वात अलग रही, उसकी गरदन एक वार झुक कर सीधी होने का नाम न ले रही थी।

—अच्छा न पहन।—नविर शाल ने कहा। और उसके सामने से उठ खड़ा हुआ। वह दरवाज़े से निकल कर वाहर चला गया। खोतन द्यद के सिर पर से जैसे मनों वोझ उतर गया। वह जल्दी-जल्दी उठी। उठ कर सारे कपड़े गठरी में बांधे। लाल सलवार को वह काफी देर तक आंखों ही आंखों देखती रही। उसका जी मचलने लगा कि नविर शाल के कहने पर उसने वह क्यों न पहनी। किन्तु लज्जा आड़े आती थी। अन्त में उसने गठरी में सारे चिथड़ों के नीचे उसे छिपा दिया और गठरी को ताक के एक कोने में लुढ़का कर छिपाने की कोशिश की। इसके वाद उसने नविर शाल की तलाश शुरू की।

—आखिर वह कहां चला गया। अचानक ही मेरे सामने से उठ कर कहां चला गया ?

खोतन द्यद को इस वात का खेद हो रहा था कि नविर शाल इस तरह कमरे से वाहर क्यों निकल गया ? वह शरमाते-शरमाते वार-वार यही सोच रही थी कि नविर ने मुझे यह लाल सलवार पहनने पर विवश क्यों नहीं किया था।

वहुत देर वाद नविर शाल वापस आया। आंगन के दरवाज़े पर से उसके आने की आवाज़ आई और वह गाते हुए दाखिल हुआ। —सखी तू इस वात की चर्चा न करना—

खोतन द्यद ने गाने की आवाज़ सुनी, तो वह एक वार फिर अपने आप ही में सिमट-सी गई। उसे न जाने आज यह लाल सलवार वार-वार क्यों याद आ रही थी और यह विचार उसके गालों को लाल किए जा रहा था। वह सोच रही थी—अगर अव वह मुझे सलवार पहनने को कहे तो मैं पहनूं या नहीं ? हाय ! यह तो लज्जा की वात हुई।

नविर शाल ऐसे ही में गाते-गाते अपने कोठे की तीसरी मंज़िल में जा पहुंचा और उसने कागज़ में लिपटा हुआ पाव भर चरवीवाला मांस खोतन द्यद के सामने रख दिया और उससे कहने लगा—क्यों शलवाल नहीं पहनी अभी तक ? कैसी औलत है ? कभी तो वात माना कलो !

—तुम्हें लाज भी नहीं आती ?

—अले पति-पत्नी में शलम कैसी ?

—यह मांस काहे को लाए हो ?

—पकाने के लिए !

खोतन द्‌यद को अपने दांत याद आए। उसके मुंह में अब सिर्फ एक दांत बाकी बच रहा था। किन्तु नबिर शाल तो इस एक दांत से भी वंचित था। वह सोचने लगी यह मांस हमसे कैसे खाया जाएगा। इसी समय नबिर शाल ने कहा—सुना है तूने ? इसे अच्छी तलह से उबाल। आज एक मुद्दत के बाद हम मांस खाएंगे ? ओ शुन तो उथ, शलवाल पहन, उथ भलीमानस ! शुनती नहीं क्या ? अब उथो भी !

नबिर शाल एक बालक की भांति हठ करने लगा और मचलने लगा। खोतन द्‌यद न मानी। किन्तु नबिर शाल भी अपने हठ पर कायम रहा। अन्त में फैसला यह हुआ कि नबिर शाल कमरे से बाहर निकलेगा और खोतन द्‌यद लाल सलवार पहनेगी।

नबिर शाल ने कागज़ में लिपटा हुआ मांस हाथ में उठा लिया और नीचे उतर आया। खोतन द्‌यद ने दरवाज़ा अच्छी तरह बन्द किया। भीतर से कुण्डी चढ़ा दी। शरमाती-लजाती हुई वह उठी और उठ कर ताकचे की ओर चल दी। ताकचे से उसने गठरी उतारी। उसमें से सलवार निकाली और इज़ारबन्द उसमें डाला। इसके बाद चारों ओर ताकते हुए उसने सलवार पहन ली। डरते-कांपते कदमों के साथ वह भी नीचे उतरी। इस समय सीढ़ियां उतरने से उसकी टांगों में तकलीफ नहीं हो रही थी। वह गठिया के दर्द को भी इस समय पूरी तरह भूल गई थी। उसे रह-रह कर यही खयाल आ रहा था कि सलवार पहन कर मैं उसकी ओर कैसे देख सकूंगी। या ऐसे में किसी ने हमें देख लिया तो ? उसके मुंह से आप से आप निकला—उफ, मेरे अल्लाह !

उसका मन इस विचार से डांवाडोल हो रहा था। वह धीरे-धीरे सीढ़ियां उतर कर रसोई में दाखिल हुई। नबिर शाल वहां पहले पहुंच चुका था। वह कभी चूल्हे में फूंक मारता और कभी गाता—मेरे याल ने—उसने मांस उबालने के लिए चूल्हे पर हांडी रख दी थी और चूल्हे में शोले पूरी तरह से दहक रहे थे।

खोतन द्‌यद यह सोचती हुई धीरे-धीरे कमरे में दाखिल हुई कि वह नबिर शाल को खबर किए बिना ही चूल्हे के सामने आकर बैठ जाएगी, पर उसका अंगूठा फटी हुई चटाई की रस्सी से उलझ गया और वह धड़ाम से मुंह के बल फर्श पर आ गिरी। नबिर शाल चौंक कर उठ खड़ा हुआ। उसने खोतन द्‌यद को एक देवदार की भांति फर्श के साथ हमवार देखा और मारे डर के उसके मुंह से एक चीख निकल गई। किन्तु खोतन द्‌यद ने जल्दी से मुंह ऊपर उठा लिया और हँसते-हँसते नबिर शाल की ओर नज़रें दौड़ाईं। नबिर शाल ने उसकी बांह पकड़ ली और वह उसे ऊपर उठाने लगा। साथ ही बड़े प्यार से उसने पूछा—मेली जान, चोट तो नहीं आई कहीं ?

खोतन द्‌यद ने सिर हिलाते हुए नकारात्मक उत्तर दिया। किन्तु नबिर शाल

भी इस बात पर ज़िद करने लगा कि वह उठ कर खड़ी हो जाए। खोतन द्यद ने भी जैसे न उठने की शपथ खा ली। इस पर नबिर शाल ने उस पर ज़ोर आज़माना चाहा और उसे ज़बर्दस्ती उठाने लगा, बिल्कुल उस युवक पति की भांति जो अपनी युवती पत्नी के प्रति प्यार और प्रेम के इज़हार में कभी-कभी ऐसी हरकतें करता है, नबिर शाल भी खोतन द्यद को गोद में उठाने का प्रयत्न करने लगा। खोतन द्यद भी इस क्षण यह बात बिल्कुल भूल गई कि वह पोतों-दोहतोंवाली एक गृहस्थिन है और नबिर शाल भी जैसे एकाएक भूल गया कि अब तो उसका जामाता भी बूढ़ा होने को आ रहा है। इसी छेड़छाड़ में दोनों संसार से बेनियाज़ हो गए। खोतन द्यद बैठी हुई थी और नबिर शाल उसके बाज़ुओं को, उसके शानों को प्यार से खींचे जा रहा था। वह सलवार के ऊपर पहने हुए उसके फिरन को भी खेंचे जा रहा था, पर केवल उसे ऊपर उठाने के लिए और उसकी लाल सलवार पर एक नज़र डालने के लिए। उनकी छेड़छाड़ नव-विवाहितों की छेड़छाड़ तक पहुंच गई थी कि अचानक दरवाज़ा खुल गया और उसी क्षण कोई खांसा। नबिर शाल फौरन ही नीचे बैठ गया, जैसे वह कुछ भी न कर रहा हो। खोतन द्यद मारे लाज के मानो धरती में गड़ी रह गई। उनकी बड़ी बेटी का पति दरवाज़े के भीतर आकर उनकी ओर बड़ी हैरानी से देख रहा था, जैसे उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही न हो रहा हो। नबिर शाल ने उसे देखते ही कहा—सलामालेकुम। आइए!

किन्तु उसका जामाता खामोश ही रहा। एक गहरी खीज में जला-भुना वह उलटे कदमों दरवाज़े से बाहर निकल गया।

खोतन द्यद हक्की-बक्की रह गई, जैसे भरे बाज़ार में वह चोरी करते हुए पकड़ी गई हो। अकृत पाप के एहसास से दब कर खोतन द्यद ने नबिर शाल की आंखों में अपनी आंखें डाल दीं। पर नबिर शाल ने सिर ऊंचा उठा कर बड़े गर्व से कहा—हमने क्या किसी की चोरी की है। सब अपने-अपने घर के राजा हैं।

रूपान्तरकार : ब्रजलाल कौल

बात की बात

पन्नालाल पटेल

वसन्त ने दो-तीन बार टेढ़ी नज़र से पत्नी की ओर देखा। आखिर साहस बटोर कर बोला—चलो सिनेमा देखने चलें, सुरू।

दूर बैठी सुरबाला ने किताब में मुंह रखते हुए कहा—मेरी इच्छा नहीं है, आप हो आइए।

क्षण भर की शान्ति के बाद वसन्त ने पुनः पूछा—सुरू, छः मास बीत गए, फिर भी तुम्हारा रोष कम नहीं हुआ।

सुरबाला ने हँसने का मिथ्या प्रयत्न किया और वसन्त की ओर देख कर बोली—इसमें रोष किस बात का ? और यदि आपका आग्रह है, तो मैं चलूंगी।—वसन्त को अपना ओंठ चबाते देख उसने पूछा—किस शो में जाएंगे ?

सुरबाला की ओर एक दृष्टि निक्षेप कर, वसन्त बड़बड़ाया—इसका मतलब 'नहीं' है, सुरू।

—जैसी आपकी इच्छा।—सुरबाला पुनः पढ़ने में व्यस्त हो गई। इतने में दूधवाला आया और सुरबाला बाहर गई।

वसन्त, छः मास पूर्व के उस बदनसीब दिन को याद कर, अपनी शंकाशील प्रकृति को कोसता हुआ बैठा रहा। एक खानदानी कुटुम्ब में उसने जन्म लिया था। बड़े भोग-विलास में वह पला था। परिवार में अमन-चैन था। सुरबाला का दरिद्र परिवार, वसन्त के बंगले के पीछे के आउट हाउस में किराए पर रहता था। बचपन में साथ खेले हुए वसन्त और सुरबाला बड़े हुए। उन दोनों की मित्रता से वसन्त के माता-पिता को कुछ आशंका हुई। सुरबाला के पिता से मकान खाली करने को कहा गया। वे भी सचेत हो गए, किन्तु कुछ विलम्ब से।

मकान खाली कराने के पीछे रहे हुए कारण को भांप कर वसन्त ने सुरबाला को सांत्वना दी और वचन दिया—मैं तुम्हारे यहां आता-जाता रहूंगा और एक वर्ष बाद हम विवाह कर लेंगे।

और ठीक उस वचन के अनुसार, दूसरे वर्ष बी० ए० की उपाधि प्राप्त

कर, वसन्त ने अपनी प्रचुर पैतृक सम्पत्ति का मोह छोड़ कर सुरवाला के साथ विवाह किया। साठ रुपयों की नौकरी भी उसने पा ली।

वसन्त के इस बलिदान का मूल्य सुरवाला ही नहीं, उसके माता-पिता भी समझते थे। इसी कारण उन्होंने सुरवाला के लग्न के समय अधिक से अधिक गहने तथा कपड़े-लत्ते दिए थे।

इधर सुरवाला भी उसे सदैव अपने प्रेम में तर रखती; खाने-पीने में, घूमने-फिरने में, तथा हर प्रकार से उसे आराम में रखने के यत्न में वह सदा व्यस्त रहती थी।

सिनेमा के शौकीन वसन्त को, वह एक न एक सिनेमा देखने के लिए प्रोत्साहित किया करती—आपको यह फिल्म न देखनी हो तो न सही, मुझे तो देखनी ही है।

वसन्त हँस कर प्रत्युत्तर देता—लो चलो, मैं तुम्हें थियेटर तक पहुंचा आऊं। समय पर लिवा ले आऊंगा।

सुरवाला मीठे उपालम्भ से पूछती—ऊं यह आपको शोभा देता है?—और वसन्त को सिनेमा देखने जाना ही पड़ता।

इतनी साधारण तनख्वाह में सुरबाला जिस तरह घर का संचालन करती थी उसे देख कर वसन्त को बड़ा आश्चर्य होता था। एक-दो बार तो उसने सुरवाला से पूछा भी था—इतना खर्च करती हो, लेकिन इसमें से हारी-बीमारी के समय के लिए कुछ बचत की गुंजाइश रखती हो न?

सुरवाला इसका ऐसा प्रत्युत्तर देती कि वसन्त चुप रह जाता। वह ऐसी गृहिणी पाकर निश्चिन्त बन गया—हमें तो, जैसा तुम बता रही हो, काम से काम है, शेष तुम जानो और तुम्हारी बात!

उनके ऐसे सुखमय जीवन के पांच वर्ष बीत गए। ऐसे सुखी दाम्पत्य जीवन पर जैसे विधि को भी ईर्ष्या हुई। कालेज जीवन का पांच वर्ष पूर्व का सहपाठी साहित्यरसिक मित्र न यकायक मिलता, न वह मोपासां की उस कहानी का सारांश बताता।

गाड़ी के छूटने में कुछ समय बाकी था। वसन्त ने ही बात प्रारम्भ की—तुम्हारी अन्तिम कहानी सचमुच बड़ी सुन्दर थी। यदि तुम ऐसी ही कहानियां लिखते रहे तो···

वह मित्र बीच में ही बोल उठा—काश! तुम ने चेखव और मोपासां को पढ़ा होता और उसमें भी उस अन्तिम कहानी को पढ़ कर, मैं तो जैसे मुग्ध हो गया हूं।—और वसन्त के मुख पर कौतूहल के चिह्न देख, उसने शीघ्र ही कहानी कहना प्रारम्भ किया। उसका सार यह था—अध्यापक की नौकरी करने वाला साधारण तनख्वाह पाने वाला एक मनुष्य अपने घर की सफाई,

सुन्दरता और व्यवस्था को देख कर, अपनी शिकायत न करने वाली पत्नी की प्रशंसा अपने मित्रों के समक्ष यदा-कदा करता रहता···इतने में उसकी पत्नी का अवसान हो गया और अध्यापक को अनुभव हुआ कि वहुत किफायत करने पर भी इतनी छोटी तनख्वाह में अपना गुज़ारा भी करना मुश्किल है। पहले वह अपनी पत्नी के साथ वार-बार सिनेमा देखने जाता था। अपनी पत्नी की गहने सम्वन्धी इच्छा को परितृप्त करने के लिए नकली मोती के गहने खरीदता था और अव तो वह सव स्वप्न जैसा वन गया। अपनी ऐसी सुशील और दक्ष पत्नी को याद कर, उसकी दक्षता की प्रशंसा में वहुधा वह अपने मित्रों के समक्ष अश्रुपात भी कर लेता।

ऐसी ही हालत में वह अपनी इस छोटी-सी तनख्वाह वाली नौकरी को भी खो देता है। अपने पेट को पालने के लिए वह सामान-असवाव वेचने लगता है। आखिर तीन दिन के उपवास के वाद वह उस नकली मोती वाले गहनों का डिब्वा जौहरी के यहां बड़े संकोच से ले जाता है— चार-छः आने मिल ही जाएंगे उससे, इस आशा में।

किन्तु मालूम हुआ कि यह सब माल चार लाख रुपयों की कीमत का है और है भी उसी दुकान से खरीदा हुआ। आश्चर्यचकित अध्यापक को वह उसे जौहरी आश्वासन देता है कि वह उसके सही दाम वता रहा है और उसके समर्थन में वह अपनी उस पुरानी विक्री की वही को दिखाता है—यह फलाने ड्यूक हैं; अमुक मिसेज़ को दिलाया हुआ यह अमुक गहना है।

वसन्त का दिमाग चक्कर खाने लगा। वह वड़ी मुश्किल से घर तक पहुंच पाया। उसने यह पक्का मान लिया कि उस मित्र ने जो वात वताई थी, वह सावधान करने के लिए ही थी। और वह यदि केवल कहानी ही हो तो भी उसके मन में सन्देह हुआ कि उसकी पत्नी भी उस कहानी वाले अध्यापक की पत्नी जैसी होनी चाहिए। नहीं तो इतनी सी तनख्वाह में वह घर का संचालन ऐसे सुचारु रूप से कैसे कर पाती?

सुरवाला ने एक जोड़ी नकली वुन्दे तथा चार आने की सफेद मोतियों की माला कुछ दिन पहले ही खरीदी थी और उसे वसन्त को दिखाया भी था। यह सव स्मरण करते हुए उसे सन्देह हुआ, कदापि वे गहने असली भी हो सकते हैं और अपने मित्रों में से दो-तीन को तो उसने उस ड्यूक के स्थान पर रख भी लिया।

रसोई घर में कुछ सफाई आदि करती हुई पत्नी को अपने सामने हँसते हुए वह देख न सका। उसको अव वह डायन-सी लगी। वैठक के कमरे की ओर जाते हुए उसने रोष को वड़े प्रयत्न से दवा कर सुरवाला से कहा—ज़रा इधर आओ तो।

सुरवाला ने वसन्त को ऐसे मिज़ाज में कभी नहीं देखा था । अनेक शंका-आशंकाओं को दबाती हुई वह बैठक में गई । उसने सरलता से पूछा—क्यों आज आप कुछ नाराज़ हैं क्या ?

वसन्त ने सुरवाला की ओर से मुंह फेर लिया और कोट उतारते हुए कहा—इसी कारण तुमको मैंने बुलाया है ।

सुरवाला ने साहस बटोर कर वसन्त के निकट की कुर्सी की ओर पग बढ़ाते हुए कहा—इधर बैठो, नहीं यह सच है क्या ?

—देखो, यह सब हँसी-मज़ाक में उड़ाने के लिए मैं तुमसे नहीं कह रहा हूं—और प्रत्येक शब्द पर ज़ोर देते हुए उसने कहा—आज मुझे पाई-पाई का हिसाब चाहिए । मैं जानना चाहता हूं, तुम यह सब किस प्रकार निभाती हो ?

सुरवाला गम्भीर हो गई । वह रसोई घर में जाकर दो-चार क्षण में हिसाब की डायरी ले आई और उसे वसन्त के पास डाल कर बड़ी रुक्षता से वापस चली गई ।

दो-चार मिनट तक डायरी के पृष्ठों को टटोलने के बाद वसन्त ज़ोर से चिल्लाया—कहां हो ?

सुरवाला का चेहरा लाल हो गया । दृढ़ता से कदमों को बढ़ाती वह दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गई और उसने पूछा—क्या है ?

—यह तो चालू वर्ष का हिसाब है । मुझे अपना पूरा हिसाब चाहिए—जब से घर चलाना प्रारम्भ किया, उस दिन से आज तक का ।

—मैंने उसका संग्रह थोड़े ही किया है ?

वसन्त को जैसे आग लग गई—इसके क्या मायने ?

सुरवाला ने कमरे के भीतर प्रवेश करते हुए कहा—कृपया आप यह बताएंगे कि आपको किस प्रकार का हिसाब चाहिए ?

—घर के खर्च का ।

—ऐसा ! तो आप साफ़-साफ क्यों नहीं बताते ? मैं यह सब कहीं से, किसी के बदले में ले आती हूं, यही न ?—सुरवाला तिरस्कार भरी दृष्टि से वसन्त की ओर देखती रही ।

जैसे इस दृष्टि से जलता हुआ वसन्त ज़ोर से चिल्ला उठा—अपना सयानापन रहने दो । मुझे साफ़-साफ हिसाब बता दो ।—और वसन्त के इन अन्तिम शब्दों से, उसके कहने के ढंग से, सुरवाला के भोले हृदय पर ऐसी चोट लगी जो इस जन्म में क्या जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं मिट सकेगी ।

संयोग से सुरवाला ने बेचे हुए अपने गहनों के बिल पर कपड़े आदि की खरीद का हिसाब भी जोड़ रखा था । उसने कागज़ों के उन दो टुकड़ों को

दरवाज़े के बाहर से ही वसन्त की ओर फेंका । सुरवाला भीतर के कमरे में जब गई थी, उसी क्षण से वसन्त के हृदय में कुछ पश्चाताप प्रारम्भ हो गया था । और इन कागज़ों के देखने के बाद तो संशय का कारण रहा ही न था । तथापि न जाने क्यों उसने पूछ लिया—वे, वे नकली गहने क्या सचमुच नकली हैं ?

तीसरे क्षण उसकी गोद में माला आ गिरी । तूफान-सी सुरवाला सामने आकर खड़ी हो गई । रोष और तिरस्कार से वह बोल उठी—नौसिखिया कसाई भी काम तमाम हो जाने के बाद सेंतमेंत के प्रहार नहीं किया करता । —बाहर जाते हुए वह कहती गई—शीघ्र ही जाकर बाज़ार में परख करवा लीजिए नहीं तो हाथ के हाथ ही कहीं असली न हो जाएं ।—सुरवाला की आवाज़ बदल गई थी जैसे किसी टूटे हुए वर्तन की आवाज़ हो ।

इस घटना को आज छः मास हो गए···तथापि वसन्त को अनुभव हो रहा था कि उस दिन से पड़ा हुआ अन्तर तो उतना ही है, फिर चाहे सुरवाला सिनेमा देखने चले या न चले ।

गुजराती कहानी

ज़िन्दगी ही ऐसी है

गुलाबदास ब्रोकर

उसका चेहरा भरा हुआ, स्वस्थ और खूबसूरत होने पर भी कुछ कठोर-सा लगता था। मूंछें थोड़ी, पर ऐंठी हुई बांकी। सिर पर पगड़ी बंधी हुई है, कमीज़ पर बंडी। पांवों में पायजामा पहना है और हाथ में चाबुक है। रोबदार शरीर और मर्दानी आवाज़। सामान्य गाड़ीवालों की अपेक्षा चरित्र उसका कुछ विलक्षण ही था। गाड़ी में बैठते ही इसका पता लग गया और प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल गया।

—गाड़ीवान, हिन्दू हो या मुसलमान ?—गाड़ी चलते ही मैंने पूछा।

—आपका क्या अनुमान है ?—हँसते हुए उसने मुझसे ही प्रश्न किया।

—मैं क्या समझूं भला ? लगता है यहां रावलपिण्डी में मुसलमान ही अधिक होंगे। हैं न ?—मैंने पूछा।

—ऐसी बात नहीं है। यहां तो दो ही जातियां बसती हैं। एक गरीब और दूसरी अमीर। न हिन्दू और न मुसलमान।

—लेकिन तुम किस जाति के हो ?

—मैं ? मैं तो हूं गरीब जात का। —कहते हुए वह हँसा। उसने घोड़े की मांसल पीठ पर हाथ का चाबुक फटकारा। घोड़े ने गति बढ़ाई।

रावलपिण्डी हमारी नज़र के सामने से काठियावाड़ के किसी बड़े शहर-सा दिखाई देता हुआ घोड़े की गति के साथ तेज़ी से गुज़रने लगा।

थोड़ी देर बाद मैंने पूछा—नाम क्या है तुम्हारा ?

—मुझे गुलामदीन कहते हैं—उसने कहा और हँसते हुए बोला—वाह साहब, जात-बिरादरी जानने का अच्छा तरीका है आपका ?

मुझे भी हँसी आ गई और इस हँसी के बाद हमारी बातचीत शुरू हुई ?

—दंगे होते हैं यहां ?

—होते हैं, कभी-कभी।

—उनमें तुम भी हिस्सा लेते हो।

—जी, मुझे क्या लेना दंगों से जो बेकार की झंझट में पड़ूं ?

कुछ क्षण बाद उसने प्रश्न किया—सेठजी, कश्मीर जा रहे हैं क्या?

—हां। तुम गए हो कभी?

—जी हां, केवल एक बार।

हम सब लोग उसकी ओर ताकते रह गए।—कैसा है? बहुत सुन्दर है न?

—बड़ा ही दिलचस्प। ऐसी मनभावनी जगह तो दुनिया में और कहीं नहीं होगी।

कुछ देर तक वह हमारे साथ कश्मीर के बारे में बातें करता रहा। कुछ क्षण तक हमारे कल्पना-चक्षु कश्मीरी बाग-बगीचों, नदी, पर्वत और हिम-श्रेणियों को निहारते रहे। वह कहता जा रहा था—और वहां की औरत! क्या कहूं? बहिश्त की हूर-सी सुन्दर। सिर्फ गरीबी इतनी है कि···

उसका वाक्य अधूरा ही रह गया। जिस मार्ग से गाड़ी जा रही थी, उससे कुछ दूरी पर उसकी दृष्टि फैली और एक स्थान पर अटक गई। मेरी निगाह भी सहज ही उधर दौड़ गई और वहीं स्थिर हो गई।

उधर से एक स्त्री जा रही थी। यद्यपि इस समय उसकी पीठ ही दिखाई दे रही थी, पर कितनी मस्ती भरी थी उसकी चाल में कि नज़र उधर से हटती ही नहीं थी। उसने रेशमी इज़ार पहनी थी और पीठ को ढकती हुई कुर्ती पहने हुए थी। कंधे पर दोनों ओर झूमने वाले दोनों छोर मस्ती भरी चाल की गरिमा से युक्त होकर डामर के सीधे, चिकने और सुन्दर मार्ग को अद्‌भुत सुन्दरता प्रदान कर रहे थे। एक क्षण में तो हमारी गाड़ी उसके सामने आ पहुंची। एक हाथ से लगाम को छोड़, मुख पर अत्यन्त रसभाव ला, कुछ झुक कर भाव-भीनी वाणी में गुलामदीन बोल उठा—सलामालेकुम।

—वालेकुम अस्सलाम—उसने मधुरता से कहा।

अब तक हमारी गाड़ी उससे आगे निकल चुकी थी। सीधा, सपाट, चिकना और रंगरेखा-विहीन रास्ता हमारे सामने फैला हुआ था।

मैंने उस औरत को एक क्षण के लिए ही देखा था, फिर भी उसके खिले हुए गुलाब जैसे भरे-भरे गाल, पुष्ट, लम्बा शरीर, प्रवाल सी लालिमा लिए होंठ, फैली हुई चंचल आंखें और स्पष्ट खुमार, ये सब एक क्षण में ही हृदयपटल पर अमिट छाप छोड़ गए।

मैंने सोचा, यह गाड़ीवाला शौकीन जान पड़ता है। गाड़ी आगे बढ़ जाने पर भी वह कभी मुझे और कभी पीछे मुड़-कर उसे देख रहा था। ऐसा लग रहा था, मानो वह कुछ विचार कर रहा है और किसी निश्चय पर पहुंचने का प्रयत्न कर रहा है। अन्त में, उस स्त्री से कुछ ही दूर गए होंगे कि उसने गाड़ी रोक दी और नीचे उतर कर उसकी ओर दौड़ गया।

—इसका कुछ सम्बंन्ध उसके साथ जान पड़ता है—कौतूहल भरी दृष्टि उधर डालते हुए मेरी पत्नी ने कहा।

—औरत है तो सुन्दर।—मैं बोला।

—पिता जी, यह क्यों वहां गया है?—गाड़ी में बैठे मेरे लड़के ने मुझसे पूछा।

और फिर हम सबने देखा, दोनों चुपचाप हमारी ओर चले आ रहे हैं।

स्त्री के चेहरे पर हँसी थिरक रही थी। पुरुष का चेहरा दिखावे और हावभाव के कारण ऐसा दिखाई दे रहा था मानो कुछ विनती कर रहा है। वे गाड़ी से सात-आठ कदम की दूरी पर रहे होंगे कि वह दौड़ा और गाड़ी पर चढ़ गया। लगाम हाथ में ली, घोड़े के कान के पास चाबुक फटकारा और ज़रा पीछे मुड़ कर उससे कहा—कल शाम मिलूंगा, समझी? ज़रूर आना।—उसने सुना और हँस दी। उस हँसी की सुन्दरता को हृदयंगम कर मैंने घोड़े की ओर मुंह फेर लिया। गाड़ी चल पड़ी।

डामर की सड़क पर घोड़े के दौड़ने से टप्-टप्, टप्-टप् की आवाज़ आ रही थी। मैं गाड़ीवान की बगल में बैठा था, मेरा बेटा, पीछे की ओर बैठी मेरी सुहागन और अन्य बालक कौतूहल भरी नज़र से उसके चेहरे को देखते रहे। कुछ कठोर-सा लगने वाला गुलामदीन का चेहरा इस मुलाकात के बाद कोमल प्रतीत हो रहा था। उसके होठों पर हँसी थिरक रही थी। वह सामने देखते हुए, पुलकित चेहरे से गाड़ी हांके जा रहा था। थोड़ी देर तक सब चुप रहे। कोई किसी से नहीं बोला। हमारी नज़र तो उसके चेहरे पर टिकी थी। पता नहीं उसे इस बात का खयाल था या नहीं? कुछ ही देर में उसने मेरी तरफ देखा और हँस कर कहने लगा—सेठजी, देखा उस औरत को आपने?

—हां ज़रूर। क्यों, क्या बात है?—मैंने पूछा।

—किसी समय वह मेरी बीवी थी।—कहते हुए उसने ज़ोर से घोड़े को चाबुक लगाया।

—किसी समय थी, इसका क्या मतलब है। क्या अब वह तुम्हारी बीवी नहीं है?—पीछे घूम कर मैंने अपनी पत्नी की ओर देखा। मैं समझ गया कि भीतर की ओर बैठे हुए सभी इस बात को रसपूर्वक सुनने के लिए कान लगाए थे।

मेरी बात का उत्तर देते हुए उसने कहा—नहीं। मैंने इसे तलाक दे दिया है।

—क्यों भला?

—यह एक लम्बी कहानी है, हुजूर । और हम गरीबों की बात में आपको आनन्द भी तो नहीं आएगा ?

—गरीबों की बात कैसे ? यह तो इन्सान की बात है । क्या हम इन्सान नहीं हैं ?—अचानक मुझे इस प्रकार कहने का विचार आ गया था । वह खुश हो गया ।

—ठीक कहते हैं, सेठजी । हम सब इन्सान ही तो हैं । पर इतना समझ लीजिए कि कहानी लम्बी है । ऊबना मत ।

—अरे, इसमें ऊबने की क्या बात है ? अभी घण्टे-दो घण्टे शहर में घूमना ही तो है न ? कोई काम तो है नहीं । तुम अपनी कहानी सुनाओ, मज़ा आएगा ।

—हुजूर, बताइए यह तांगा और घोड़ा कैसा है ?—अपनी बात कहने के बदले उसने मुझसे प्रश्न किया ।

—एकदम अफ़लातून । पर तुम्हारी बात से इसका क्या सम्बन्ध है ?

—यही तो कह रहा हूं न । बचपन से ही मुझे ऐसी सुन्दर गाड़ी-घोड़ों का शौक है । गाड़ी पुरानी होते ही और घोड़ा बूढ़ा होते ही बदल देता हूं । सुन्दर गाड़ी, सुन्दर घोड़ा और हाथ में अच्छा लम्बा-सा चाबुक, यह तो मुझे चाहिए ही । ऐसा ही शौकीन था मेरा बाप भी । उसी के कारण तो मैं गाड़ीवान बन सका हूं ।

हम उसके बाप-दादा का इतिहास नहीं सुनना चाहते थे । इसका उस स्त्री के साथ क्या इतिहास है, यही जानने का कौतूहल था । पर यह सोच कर कि वह अपने ढंग से ही अपनी बात कहे, मैं चुप ही रहा । पत्नी की ओर देखा तो पता चला कि वह गाड़ीवान की इस मूर्खता पर हँस रही थी कि उसकी कहानी अनिश्चित दिशा की ओर बढ़ रही है ।

—बाप चाहता था कि मैं पढ़-लिख जाऊं, तो अच्छा हो । पर मुझे अच्छा नहीं लगा । सोलह वर्ष की उम्र में मैं कुशल गाड़ीवान बन गया । बाप ने एक घोड़ा और गाड़ी खरीद दी ।

—सारे पिण्डी शहर में मैं सबसे कम उम्र गाड़ीवान हूं, और सबसे सुन्दर गाड़ी और घोड़ा मेरे हैं । तब तो मेरी पोशाक भी छैल-छबीली थी ।—कहते हुए वह हँसा ।

—तुम्हारी पोशाक तो सुन्दर है ।—मैंने कहा ।

—यह पोशाक ?—तिरस्कार से उसने अपने कपड़े देखे—यह तो कुछ नहीं हैं । सचमुच पहले मैं अच्छे कपड़े पहनता था । बाप-बेटे दोनों कमाते थे और फिर मेरे पिता मुझसे बहुत प्यार करते थे । अभी-अभी आपने जिस औरत को देखा, उसका नाम 'आयशा' है । पैसे-टके से उसका

बाप सुखी था । हमारी कोई जान-पहचान नहीं थी । बाप अपनी लड़की को स्कूल में भेजता था । लड़की को स्कूल ले जाने के लिए उन्होंने मेरी गाड़ी ठीक की । उस समय मैं सत्रह वर्ष का था । आयशा उस समय मुश्किल से ग्यारह वर्ष की रही होगी । पहले तो आयशा के साथ कोई न कोई नौकरानी अवश्य आती थी, पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, मैं उनके लिए काफी परिचित हो गया और इसीलिए मेरे प्रति उनका विश्वास बढ़ता गया । एकाध वर्ष में ही मैं उनके घर के नौकर-सा हो गया था, बल्कि इससे भी अधिक निकट का हो गया । फिर तो बिना किसी को साथ किए वे लोग आयशा को मेरी गाड़ी में स्कूल भेजने लगे और मैं अकेला ही उसे वहां से घर लाने लगा ।

एक-दो वर्ष इसी तरह बीत गए । कौन जाने क्या पढ़ती थी वह ? इतना निश्चित है कि चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र तक वह हमेशा स्कूल जाती रही । रास्ते भर हम दोनों खूब बातें करते थे ।

—कैसी बातें करते थे ?—मैंने पूछा ।

—सीधी-सीधी बातें ।—उसे हँसी आ गई ।—पहले कुछ समय तक तो ऐसा ही चलता रहा, पर जैसे-जैसे वह बड़ी होती गई, हमारी बातों का रंग-ढंग बदलने लगा । मेरा मन धीरे-धीरे प्रेम की ओर आकर्षित होने लगा —कह कर वह रुका फिर क्षण भर में उसने बात पूरी की—और उसका मन भी ।

गला साफ कर वह इधर-उधर देखने लगा । एक ओर वृक्षों की विस्तृत श्रेणी दिखाई दे रही थी । यद्यपि यह जगह हमारी गाड़ी से दूर थी, पर स्पष्ट दिखाई देती थी ।

—देखिए सेठजी, वह रहा कम्पनी बाग । जल्द ही हम वहां पहुंच जाएंगे ।

—आगे क्या हुआ ?—मैंने आयशा की बात को आगे बढ़ाने के लिए पूछा ।

—आगे ? क्या होता आगे ? हम एक-दूसरे के प्रेमी बन गए ।

कुछ देर चुप रह कर फिर कहने लगा—जानते हैं, हुजूर, उस समय वह कैसी लगती थी ? बहिश्त की हूर भी उसके सामने कुछ नहीं थी । बस, अनारकली ही समझ लो ।

दो क्षण वह चुप रहा, मानो वर्षों पूर्व के उस सौन्दर्य को देख रहा हो । गाड़ी चल रही थी ।

मैंने कहा—सुन्दर तो वह अब भी खूब है ।

—ठीक कहते हैं आप । लेकिन उस समय तो बात ही कुछ दूसरी थी । सारा शहर पागल था उसके पीछे ।

फिर ज़रा लजा कर बोला—मैं भी पागल था। उसे भी अच्छा लगता था। और फिर हम दोनों एक-दूसरे के लिए पागल-से बन गए थे।

—क्या उसके घर किसी को कुछ पता नहीं चला ?—मैंने प्रश्न किया।

—पता कैसे नहीं चलता ? पन्द्रह वर्ष की रही होगी, तब अचानक उसका स्कूल जाना बन्द करवा दिया गया, लेकिन मुझसे मिलना बन्द न हुआ। मेरी और उसकी शादी उन्हें मंजूर नहीं हो सकती थी। इस सम्बन्ध में मैंने उसके बाप के कान तक बात पहुंचाई थी, पर मुझे भारी अपमान ही मिला। वे लोग ऐसे नहीं थे कि हम दोनों की शादी कर देते। दूसरी ओर ऐसा भी सम्भव नहीं था कि हम एक-दूसरे के बिना रह सकते। आखिर घर में जो कुछ रुपया-गहना था लेकर, एक दिन हम रावलपिण्डी से भाग गए।

एकाएक बातचीत का आनन्द बढ़ गया। मेरा छोटा लड़का भी गुलामदीन की ओर टकटकी लगा कर देख रहा था। पत्नी ने मेरी ओर नज़र डाली और हँस दी।

मैंने पूछा—फिर कहां गए तुम लोग ?

बस, यहां से चले गए लायलपुर। खूब मौज की वहां। जो कुछ साथ में था उससे साल भर काम चल सकता था। वहां मैं नौकरी की तलाश में ज़रूर था, पर कहीं भी नौकरी मिलती नहीं थी। इसी समय मुझे मालूम हुआ कि आयशा के पिता द्वारा भेजे गए आदमियों को हमारा पता चल गया है और वे कुछ सख्त कार्रवाई करने की सोच रहे हैं। इससे पहले कि वे कुछ करें, अचानक हम सहारनपुर भाग गए।

—वे दिन हमारे सुख-चैन के थे, हम दोनों एक-दूसरे के प्यार में मस्त थे। नाज़ुक गुलाब की कली-सी आयशा धीरे-धीरे खिले हुए गुलाब-सी दिखाई देने लगी। वह मुझे कितना चाहती थी। और मैं ? मैं तो उस पर दुनिया निसार करने को तैयार था।

गुलामदीन मेरी ओर देखने लगा। मैंने देखा, सचमुच ही उसकी आंखों में दुनिया निसार कर देने का भाव दिखाई दे रहा था।

हँस कर बोला—लेकिन दुनिया निसार करने के बदले, जो पैसे निसार करने के लिए जेब में थे, वे भी अब तो चुकने लगे थे। नौकरी मिल नहीं रही थी। चिन्ता थी कि यदि उन लोगों को यहां का पता चल जाएगा तो क्या करेंगे ! और मानो यह सब कुछ कम था इसलिए एक चिन्ता बढ़ गई थी। आयशा···आयशा···

वह ज़रा रुका।

—आयशा मां बनने वाली है, ऐसा लगा, यही न ?—मैंने उसे उलझन से बचा लिया ।

—जी हां, यही बात थी । बहुत विचार किया कि क्या करें, अन्त में एक कदम उठाने का निश्चय किया । आयशा को वहीं छोड़ कर मैं पिण्डी के लिए रवाना हो गया ।

—उसे छोड़ कर तुम भाग गए ?—मेरी पत्नी के प्रश्न में दुख और आश्चर्य का भाव स्पष्ट हो रहा था ।

—नहीं, नहीं, बाई साहब ! गुलामदीन मरना मंजूर कर लेता पर ऐसा नहीं कर सकता था । रात के लगभग बारह बजे मैं घर पहुंचा और सारी हकीकत पिता को बता दी । उन्होंने थोड़ी-बहुत मदद देने का वचन दिया । लेकिन इतने से होता क्या ? रातों रात आयशा के बाप के पास जा पहुंचा ।

मुझे देखते ही वह गरज उठा—सूअर, नमकहराम, बदमाश, बता मेरी बेटी को कहां फेंक आया ? और भी बहुत कुछ उसने मुझे सुनाया ।

—मैंने बड़ी मुश्किल से उसे शान्त रहने के लिए मनाया । अपनी सभी बातें बता दीं, शादी की, बच्चा भी होने वाला है, अब हमारे साथ दुश्मनी रखने से कोई लाभ न होगा, आदि बातें की। अन्त में उससे यह वचन ले लिया कि यदि पति-पत्नी दोनों पिण्डी आ जाएंगे, तो वह किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं करेगा । आयशा के पति के रूप में मुझे स्वीकार करते हुए उसने वचन तो दिया, पर हमारे साथ सम्बन्ध रखने के लिए वह किसी भी रूप में तैयार नहीं हुआ । सारी रात इसी में बीत गई । सवेरे छः बजे की ट्रेन से मैं वापस सहारनपुर के लिए चल पड़ा ।

—तीसरे दिन हम दोनों अपने प्यारे शहर पिण्डी लौट आए। फिर से मेरे हाथ में घोड़ागाड़ी आ गई ।

दूर से दिखाई देने वाला वृक्ष-समूह बिल्कुल पास आ गया । हम बिल्कुल उसके बीच पहुंच गए तो गुलामदीन ने लगाम खींच ली।

—लीजिए हुजूर, यही है कम्पनी बाग ? आराम कीजिए।

—क्या ! यही है कम्पनी बाग !—इधर-उधर देख कर मैंने कहा—यहां तो कुछ भी नहीं है ।

—लगता है हुजूर को किसी ने गलत खबर दी है । अच्छा बाग तो उस छोर पर है ।

—तब वहीं चलो ।—मैंने कहा ।

पुनः लगाम खींचने से घोड़े के कान खड़े हो गए । गाड़ी आगे चल पड़ी ।

—गुलामदीन, तुम किसी से कम नहीं हो । इतना सहन किया उसके लिए और अन्त में उसे ही तलाक दे दिया ?—मैंने उसे पिछली वात की ओर लाने के लिए कहा ।

—उसकी आदत खराव हो गई थी । जिस-तिस मर्द से वात करती रहती । मना किया, मानी नहीं । रोज़ शिकायत सुन-सुन कर कान पक गए थे ।

—सुना ही था या खुद भी देखा ?

—देखा क्यों नहीं ? उस दिन छिप कर देखा, गली में एक आदमी से वातें कर रही है । मेरा खून खौल उठा···

मैंने वीच में ही पूछा—वातचीत के सिवा और कुछ तुमने देखा था क्या ?

—नहीं जी ! मैं नहीं मानता कि और कुछ हुआ हो । यह भी नहीं जानता कि कौन-सी वातें की होंगी ? पर इससे आगे कुछ हुआ नहीं, यह मेरा विश्वास है ।

—तव क्या इतनी-सी वात के लिए इतना हुआ ? तुम्हें इतना चाहते हुए, तुम्हारे लिए जिसने घर-वार, सगे-सम्वन्धी सव छोड़े, पर तुम्हारे मना करने पर भी वह नहीं मानी और फिर भी ये सव क्यों करती रही ?

—जनाव औरत की जात ही ऐसी होती है ।—गुलामदीन ने कह तो दिया, परन्तु तुरन्त ही पीछे मुड़ कर मेरी पत्नी से कहने लगा—माफ करना, वीवी जी ! सच वात तो यह है, सेठजी, कि औरत अपने पैर के नीचे के पानी के सिवा और कुछ नहीं देख सकती । यदि अक्ल ही होती तो औरत ही क्यों होती भला ।

मैंने उसकी वात का समर्थन नहीं किया तो खिसियाना-सा वह चुप रह गया । मैं भी चुप ही वैठा रहा । पास में वैठा हुआ मेरा लड़का वोला—फिर क्या हुआ, पिताजी ?

—पूछ इसी से ।—मैंने कहा ।

—होता क्या ? मैंने सोचा कि इस वदचलन को मार ही डालना ठीक है । गुस्से में घर पहुंचा और उसके आने का इन्तज़ार करता वैठा रहा । घण्टे-दो घण्टे में वह आई तव तक मैंने लाखों विचार कर डाले थे । सोचा आखिर इसे मारने से क्या लाभ ? मर्द होकर एक औरत पर हाथ उठाना यह कोई मर्दानगी है भला । इससे तो उसे छोड़ देना ही क्या ठीक नहीं होगा । उसके आने के पहले ही मैंने विचार कर लिया था ।

—आखिर वह आई । जैसे ही कमरे में दाखिल हुई, मैंने पूछा—क्यों वीवी जी ! आज किसके साथ वातें हो रही थीं ?

—मैं ? किसी से तो नहीं ।—उसने हँस कर कहा ।

—झूठी, बदज़ात ! मैंने अपनी आंखों से देखा है और तू झूठ बोल रही है ?—मैंने उसकी गर्दन पकड़ ली । मुश्किल से दूर किया हुआ क्रोध फिर रोम-रोम में फैल गया ।

उसकी आंखें बदल गईं । तन कर खड़ी हुई और कहने लगी—छोड़ दो मुझे । कहती हूं, बात की भी मैंने तो क्या हुआ ? किसी आदमी के साथ पांच मिनट बात भी नहीं की जा सकती क्या ?

धक्का देकर मैंने उसे दूर फेंकते हुए कहा—बार-बार मना करने पर भी तूने उसके साथ मिलना-जुलना बन्द नहीं किया ।

—हां । वह मेरा पहले का जान-पहचान वाला है ।—उसने इतना ही कहा ।

—हम दोनों झगड़ते रहे । मैंने इतना तो जान लिया कि 'बात' बात-चीत से आगे नहीं बढ़ी थी, किन्तु मैं अपने निश्चय पर अटल रहा और मैंने उसे तलाक दे दिया ।

—उसे दुख तो हुआ होगा ?—मैंने पूछा ।

—दुख क्यों न होगा ? मेरे ऊपर उसकी मुहब्बत कम नहीं थी । शान्त होने पर वह रोई, पैरों पड़ी, माफी मांगने लगी, पर मैं था कि एक का दो न हुआ ।

—लेकिन गुलामदीन ऐसा भी किया जाता है क्या ?—मेरे कथन में उलाहना था ।

—जनाब, आपको सच नहीं लगेगा, पर औरत तो पैर की जूती की तरह है । एक बार तैयार होकर आने पर पैरों में बैठी तो ठीक, वरना फिर हज़ार बार उसे ठीक करो तो भी वह ठीक से कभी नहीं बैठेगी । उसे तो पैरों से निकाल कर फेंक देने में ही लाभ है, वरना हमेशा कहीं न कहीं तकलीफ देती रहेगी ।

—गुलामदीन, सच बात कहूं ?

—कहिए न ?—वह मेरी ओर देखने लगा ।

—तुम बात तो लम्बी हांकते हो, पर मैंने अभी-अभी देखा कि उसे देखते ही तुम दौड़ पड़े और झुक-झुक कर बड़े प्यार से उससे बातें करते रहे । और वह तुमसे ऐसे बातें कर रही थी मानो तुम पर मेहरबानी कर रही हो ।—मैंने कहा ।

गुलामदीन मक्कारी से हँसा । उसका चेहरा पहले से भी कठोर बन गया । उसने कहा—हुजूर, अब तो वह केवल औरत है और मैं मर्द हूं । अब वह मेरी बीवी थोड़े ही है । और फिर ऐसी खूबसूरत परी के सामने कोई भी मर्द मस्त हो जाए, झुक जाए, तो इसमें आपको कौन सी नई बात दिखाई देती है ?

—मतलब यह कि अब तुम उसे अपने घर में नहीं लाओगे ?—उसकी मुखमुद्रा से लग रहा था मानो उसने कोई अच्छी बात कह दी है ।

—कितने वर्ष हुए तलाक दिए ?—पैसे निकालते हुए मैंने पूछा ।

—यही कोई डेढ़ साल ।—उसने कहा ।

—इतने समय में तुमने उसके बारे में कुछ बुरी बात सुनी ?

—मैं तो इतना जानता हूं कि यह जूती मेरे पैर में बैठती नहीं, बात खत्म ।—उसने कहा और पैसे लेकर गाड़ी भगाता हुआ चला गया ।

—यह आदमी भी खूब था ।—सीढ़ियां चढ़ते हुए मेरी पत्नी ने कहा ।

—लेकिन इतनी सी बात पर औरत को छोड़ दिया ?—मैंने प्रश्न किया ।

—यह उसे मना करता था, फिर भी वह क्यों बार-बार किसी से बातें करने जाती थी ? इस पर भी उसने मारा नहीं, छोड़ दिया, वरना ये लोग तो ऐसे होते हैं कि कत्ल ही कर दें ।

—तुम ध्यान में रखना, समझीं ।—बच्चे भीतर चले गए तो मैंने पूरी की—तुम सम्भलना । मैं भी किसी दिन तुम्हें छोड़ न दूं ।

—तुम ? तुम क्या छोड़ोगे भला ?—कहते हुए उसने मेरी ओर इस तरह दखा कि सब कुछ भूलकर मैं उसके नेत्रों के सरोवर को ही निहारता रह गया ।

—अनवादक : अरविन्द जोशी

गोपुर का दीप

ति० जानकीरामन

पूरब की रोशनीदार गली से मुड़ कर गोपुर वाली वीथी पर पांव रखा, तो मुझे लगा कि किसी ने अचानक मेरी आंखें बन्द कर दी हों । घना अंधेरा छाया हुआ था । सावधानी से धीरे-धीरे पांव रख कर चलना पड़ा । चांद की तरह रोशनी छितराने वाला गोपुर का मेकुरी दीया जल नहीं रहा था । झिलमिलाते तारों के हल्के प्रकाश में मन्दिर का गोपुर काला और ऊंचा खड़ा दीखता था । मन्दिर के अन्दर भगवान की सन्निधि में भी दीपमालिका नहीं थी । मैंने अनुमान कर लिया कि मन्दिर का द्वार खुला ही नहीं । रास्ते पर पड़े हुए कुत्तों से कहीं पांव न टकराए, इसी डर से मैं बहुत सम्भल कर पैर बढ़ाता हुआ घर आ पहुंचा ।

—अगर आज पूजा नहीं करानी हो, तो मन्दिर का द्वार भले ही न खोलें, पर गोपुर का दीपक क्यों बुझ गया है ?—सामने के घर से आवाज आई ।

—गांव की पंचायत तो ठहरी निरे निकम्मों की जमात । वीथी भर के लिए एक ही दीया है । हफ्ता बीत गया, वह भी 'फ्यूज़' हो गया । पूछने वाला कोई है ही नहीं ।—बगल के घर से वैद्यजी का आह भरा स्वर सुनाई पड़ा । वे आगे बोले—गोपुर का दीप रोज़ जलता है । उसके सामने पंचायत बोर्ड का वह नाममात्र का दीया टिमटिमाता रहता, जैसे दिन में चांद दिखाई पड़ता है । आज वह सूरज (गोपुर का दीप) ही बुझ गया । मन्दिर के अधिकारी महोदय यों स्वेच्छा से दीप न बुझाते, तो अच्छा रहता । शायद वे इसी मंशा में होंगे कि कोई आरज़ूमन्द आकर मिन्नत करे ।

उस 'कोई आरज़ूमन्द' का मतलब है, उन वैद्यजी को छोड़ कर और कोई व्यक्ति । ऐसी छोटी-मोटी बातों के लिए मन्दिर के अधिकारी के पास जाकर अपनी प्रतिष्ठा को कलंकित करना वे नहीं चाहते थे । वैद्य-कर्म उनका पेशा नहीं था, केवल कालक्षेप का एक साधन था । आखिर मैं जो था 'शुनःशेप' की तरह, उस अधिकारी के पास जाकर मिन्नत करने के सिवाय और क्या काम धरा था मेरा ?

दूसरी वेला की पूजा होने का समय भी आ गया । प्रतिदिन इस समय ढोल, शंख और तुरही की ध्वनियां गूंज उठतीं । पर आज निपट निस्तब्धता छाई है, जैसे न जाने किसका महाप्रयाण हो गया हो ।

घर का द्वार खटखटाया । मेरी पत्नी गौरी ने आकर दरवाज़ा खोला । मैंने उससे पूछा—मन्दिर का द्वार बन्द क्यों है ?

—हां, हां ! कुछ विशेष बात है ।—कहते हुई उसने कुण्डी लगाई ।

—विशेष क्या है ?

—दक्खिनी वीथी में कोई मर गई है ।

—कौन है वह ?

—और कौन, वही आपकी कथा-कहानी की चरितनायिका !

—कौन ? मेरी समझ में तो नहीं आता कि ऐसी कोई चरितनायिका भी है ।

—मैंने इसीलिए कहा कि मरने के बाद ही तो ऐसी औरतें आपकी चरितनायिका बन जाती हैं ।

—कैसी औरत ?

—धरमु सरीखी ।

—कौन है धरमु ?

—आपने उस दिन कहा था न, देवी दुर्गा के सामने एक लड़की वर मांग रही थी कि······। वही 'जुगनी' ।

—क्या, वह ?······।

—अजी ! गश आ गया क्या आपको ?

सचमुच मूर्छित करने वाली ही बात थी। परसों भी मैंने उस तरुणी को मन्दिर में देखा था । मुझे देख कर वह शर्म और डर के मारे तेज़ी से बाहर चली गई, वह दृश्य अब भी मेरी आंखों के सामने है ।

—मैंने परसों ही उसे मन्दिर में देखा, गौरी !

—इससे क्या ? चार बजे तक रहने-वाला व्यक्ति सवा-चार तक नहीं रह पाता। दिल की धड़कन बन्द हुई कि बस, मुर्दा हो जाता है ।

—क्या बीमारी थी उसको ?

—ऐसी बदचलनों को और क्या बीमारी होगी ? संपेरे का घातक सांप ही होता है, बाघ नचाने वाले की मौत बाघ से ही होती है ।

मैं पत्थर सा निस्पन्द बैठ गया । धरमु की लचीली सूरत मेरी आंखों से ओझल नहीं हुई ।

* * *

परसों रात को, दूसरी 'बेला की पूजा' होने के बाद मैं मन्दिर गया, तब धरमु वहां थी । मन्दिर सुनसान था । नदी के पास अर्घ-जप-पूजा की

प्रतीक्षा में दो बूढ़ियां बैठी ऊंघ रही थीं। मुंडे हुए सिर; भूरापन लिए सफेद रंग की साड़ी, माथे पर विभूति की रेखाएं, निकले दांत वाले और ताड़फल सरीखे चेहरे, चमड़ी की सिकुड़नों से भरी शिथिल देह। मालूम होता था कि दोनों व्रत-उपवासों द्वारा 'कायाक्लेश' सहती हैं। नहीं तो, पचास साल की आयु में इतनी कमज़ोरी और शिथिलता क्यों आती। मानवी देह पाकर भी सुख का आस्वादन लेश मात्र भी उनके भाग्य में नहीं वदा था। अवोध अवस्था में ही दोनों का सुहाग मिट गया। इस समान दशा की संवेदना से दोनों में स्नेह की गांठ पड़ गई। रोज़ दोनों साथ ही आतीं और जातीं। वे राग-द्वेष से शून्य और काठ की तरह निस्संज्ञ हो गई। उमंगों का उत्साह ही उनमें मिट चुका था। उन बूढ़ी वेवाओं की एक ही प्रतीक्षा थी—जीवन की अन्तिम घड़ी !

उनको पार कर मैं अन्दर गया। वहां शिवजी की सन्निधि में धरमु खड़ी थी।—तुमसे ये दोनों विधवाएं भाग्यवती हैं। अपने मुंडे सिर पर घूंघट डाल कर वेझिझक चलने-फिरने का अधिकार इनको मिला है। तुम वेचारी सुहागिन होकर भी वड़ी अभागिन हो।—धरमु को देख कर मेरा मन वोल उठा। मुझे देखते ही वह लज्जा और वेदना से कुण्ठित होकर वहां से जल्दी चली गई। उसके घने घुंघराले वाल उसकी पीठ पर झूल रहे थे। वह सांवली थी, लम्वी-पतली देह थी उसकी, हाथों पर रवड़ की चार-पांच चूड़ियां थीं, कण्ठ पर सोने का मुलम्मा लगी एक फीकी चेन थी। वह फूलदार वायल की साड़ी पहने हुए थी। एक अजीव चमक उसकी देह में नज़र आई।

मुझे देखते ही उसके शरमा कर भाग जाने का कारण भी था। दो महीने पहले जव मैं मन्दिर-प्राकार में प्रदक्षिणा कर रहा था, तव धरमु देवी दुर्गा की सन्निधि पर खड़ी होकर प्रार्थना कर रही थी। गद्‌गद्‌ स्वर ज़रा ऊंचा सुनाई पड़ा। दुख-वेदना ने उसको इतना वेसुध कर दिया कि मेरे आने की खवर ही उसको नहीं हुई।—ईश्वरी! दो दिन से हमारे पेट में कुछ भी नहीं गया। आज हम पर कृपा करो मां! आज किसी उदार दिल वाले को भेज दो कि······मेरे कान में ये शव्द साफ सुनाई पड़े। धरमु ने मुझे देख लिया, उसकी देह कांप उठी। मैं क्या करूं ? मैंने छिप कर चोरी-चोरी तो नहीं सुना था। तुरन्त उसने सम्भल कर ऊंचे स्वर में देवी से प्रार्थना की—ईश्वरी! मेरी वहन का उद्धार करो ? किसी उदार दिलवाले के साथ उसकी शादी करा दो मां! यही सच्ची प्रार्थना है।···

मैंने सोचा—ऐसा है तो उसके सुर में वह कृत्रिमता और कंपकंपी क्यों ? दूसरे ही क्षण उसके हड़वड़ा कर भाग जाने की भी क्या ज़रूरत थी ?

धरमु के चले जाने के बाद मैं माता दुर्गा को एकटक देख रहा था। उस पाषाणमयी मूर्ति की मुस्कान का क्या तात्पर्य है ? ····· महिषासुर का संहार करनेवाली "मैं" अब यह काम भी करूं ? क्या उसकी वह प्रार्थना पूरी कर दूं ? आखिर उसने बहन-बहन का जो बहाना किया, वह सिर्फ तुम्हें चकमा देने के लिए ही। पर तुम भी धोखे में नहीं पड़े।

मेरा दिल जल कर धुंधा रहा था। गुस्सा भी आया, पर समझ में नहीं आया कि गुस्सा करूं किस पर ! मेरा कण्ठ रुंध गया। धरमु की इस दयनीय प्रार्थना पर विक्षुब्ध होने वाला बाहर कोई नहीं था। देवी दुर्गा के सामने एक दीप निश्चल जल रहा था। भगवान दक्षिणामूर्ति मौन समाधि पर निर्विकार बैठे हुए थे। मन्दिर के अधिकारी महोदय बड़ी लगन के साथ हिसाब लगा रहे थे, उनके झुके सिर के ऊपर लटकने वाले पिंजड़े में एक तोता आंखें बन्द करके तपोमग्न-सा बैठा था।

घर आकर मैंने सारी बातें अपनी पत्नी से कहीं। गौरी बोली—देवी सुबुद्धि देती है, ज्ञान देती है और विवेक आदि भी देती है। अब मालूम पड़ा कि देवी यह वर भी देती है।

—क्यों नहीं दे सकती ?

—मैं यही कह रही हूं कि देवी को वह भी अवश्य देना चाहिए। सब काम के लिए दैवबल की आवश्यकता है। चोर-डाकू का भी अपना देवता होता है। उस तरह वेश्या का भी एक देवता क्यों न रहे ? अगर वेश्या अपने देवता से अच्छे उदार दिल वाले को भेज देने की प्रार्थना करती है, तो देवता को वह प्रार्थना पूरी करनी ही चाहिए।

—वह बेचारी लड़की रोती हुई अवरुद्ध स्वर में यह वर मांग रही थी। मन ही मन मिन्नत करने का सब्र भी नहीं था। देवता की जलन ने उस अभागिन को वैसे रुला दिया। उसकी बदनसीबी है कि यह बात मेरे और तुम्हारे कानों में पड़ कर अब दिल्लगी बन गई है।—मैंने गम्भीर होकर कहा।

गौरी सव्यंग्य बोली—शायद आपको देख कर ही उसने यह वर मांगा होगा।

—बात ऐसी होती, तो तुम्हारे कान तक यह खबर कैसे आती ?

—वाह ! आप इतने चालाक बने कब से ? हां, साहब का दिल उदार तो ज़रूर है, पर अब हाथ बड़ा तंग है, इसीलिए तो यह खबर मेरे कानों में करुणा की वर्षा कर रही है।

—बस करो भई ! क्या बकती हो यों ऊल-जलूल ?

गौरी झेंप गई। फिर उसने पूछा—कौन थी वह लड़की ?

—नाम-धाम मैं नहीं जानता। सांवली है, लम्बे कद की है, घुंघराले बाल हैं, और चेहरा उसका सुन्दर है।

—क्या, सांवली और लम्बी······?

—हां

—क्या उसके दांत बाहर निकले दीखते हैं ?

—मैंने उसके दांत नहीं देखे ।

—कौन सी अजीब औरत है, मेरी समझ में नहीं आता ?

—वह हमारी बीथी से होकर अक्सर जाती है ।

गौरी फिर भी पहचान न सकी कि वह लड़की कौन है ।

दूसरे दिन वह लड़की अपनी मां के साथ वीथी पर जा रही थी । मैंने तुरन्त गौरी को बुला कर दिखाया । वह मुंह बिचका कर बोली—ओहो, यह रानी है ! क्या आप इसी कुलटा के लिए इतने पसीज गए ?

—तुम जानती हो इसे ? कौन है यह ?

—जानने को क्या बाकी रहा ? मन्दिर, तालाब, चौराहा, बाज़ार सब जगह खड़ी रहती है । दिन नहीं, रात नहीं, समय-कुसमय नहीं, छिः-छिः भ्रष्ट परिवार है ।

—यह सब रहने दो । आखिर वह है कौन ?

—भिंडी का मतलब भिंडी ही है । किस गांव की, किस दुकान की किस खेत की और किस जात की—इन सब बातों की ज़रूरत क्या है ?

—वह क्या भिंडी है ?

—भिंडी नहीं है, तो रंडी है । उसका पूर्वोत्तर इतिहास-इतिवृत्त सब मैं बता नहीं सकती । ऐसी बेकार और बेतुकी बातों को लिख-लिख कर रुपया बनाने की लत है आपको । शीनु ऐयर के पास जाइए, उस गप्पी सरदार से सारी बातें मालूम हो जाएंगी ।—मेरी पत्नी कटाक्ष के साथ यह सलाह देकर अन्दर चली गई ।

तीन-चार दिन के बाद शीनु ऐयर की दुकान पर मैं बैठा था, तब धरमु और उसकी मां दोनों कहीं जा रही थीं । मैंने उनकी ओर संकेत कर ऐयर से पूछा—ये कौन हैं, जी ?

—दक्षिण वीथी पर रहती हैं । कुछ विचित्र प्रकृति की हैं ?

—मतलब ?

—मैंने अपनी आंखों से कुछ देखा नहीं, तो बताऊं कैसे ? हां, लोग कुछ कहते हैं ।

—क्या कहते हैं ?

—राई का पहाड़ बना देते हैं लोग । बिना ठीक जांचें या देखे, कुछ का कुछ बोल देने का मैं आदी नहीं हूं, साहब !

—अजी ! आपने अब तक कहा ही क्या है, तिस पर यों हिचकते हैं ?

—कहूं क्या ? वही चाल-चलन की बावत है, और क्या ?

—कृपा कीजिए, ऐसी पहेली-बुझौवल तक मेरी अकल की पहुंच नहीं है।

मेरी मिन्नत कारगर हुई। शीनु एयर ने अपना बयान शुरू कर दिया—इसी गांव में मंतिरच्चामा नाम का एक व्यक्ति था। पुरोहिताई उसका पेशा था। वह कुछ गुस्सैल स्वभाव का आदमी था, पर था बड़ा उपकारी भी। बात करने में ऐसा चतुर कि सुनने वाला हां में हां मिलाए बगैर न रहता। बड़े-बड़े अमीरों में उसकी पूछ थी। मिल-मालिक चेट्टियारजी उसकी सलाह को वेदवाणी समझते थे। उसी की लड़की है यह धरमु और यह 'विडो' (विधवा) उसकी स्त्री है। मंतिरच्चामा ज्योतिष भी खूब जानता था। त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियों की वाणी में कहीं भूल-चूक हो भी सकती है, पर मंतिरच्चामा की बताई भविष्यवाणी अमोघ निकल कर ही रहेगी। झाड़-फूंक भी उसको आती थी। मगर उसका चाल-चलन इतना अच्छा नहीं था। मनमौजी आदमी था। बपौती के रूप में जो कुछ ज़मीन थी, उसे स्वाहा कर दिया। चालीस साल की उम्र पूरी हुई होगी, तब बात रोग ने उसे हमेशा के लिए खाट पर लिटा दिया। ऐसे ही वह सात बरस तक जीता रहा। जो कुछ नकद था, वह इस लड़की धरमु की शादी में खर्च हो गया। गृहस्थी चलाना दूभर हो गया, तो इस स्त्री ने पति के सामने ही यह धंधा शुरू कर दिया। जब यह खबर धरमु की ससुराल तक पहुंची, तब उसके पति ने उसे घर से निकाल दिया। मां बदचलन हो गई है, तो उसकी बेटी क्या करेगी ? उन दिनों यह लड़की अच्छी-भली ही थी। फिर मां ने उसको भी बरबाद कर दिया। वह भी क्या करेगी ? घर पर सात-आठ बच्चे हैं और उसकी बूढ़ी मां भी है। सबके पेट कैसे भरेंगे ? मां-बेटी दोनों होटल में पिसाई-सफाई का काम करके कुछ कमा लेती हैं। दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद मुश्किल से कुल एक रुपया मिलता है। एक रुपये में दस प्राणियों की उदर-पूर्ति कैसे हो सकती है ? छिप-छिपा कर यह धंधा भी करना पड़ता है। देखिए साहब, मैंने अपनी आंखों से कुछ देखा तो नहीं है। बिना ठीक जांचे या देखे कुछ का कुछ बोल देने का मैं आदी नहीं हूं।

शीनु ऐयर ने इस प्रकार अपनी मुहर लगा कर बयान पूरा किया। व्यथा से मेरा दिल बोझिल हो उठा। उनकी यह कैसी मुसीबत है, जी ! मैंने कहा।

शीनु ऐयर ने कुछ जोश में आकर कहा—मुसीबत ज़रूर है। मगर देखिए, ज़मीन-जायदाद रखने वाले बड़ों के घरों में जो भ्रष्टाचार चल रहे हैं, उनसे इन बेचारियों का चाल-चलन गया-गुज़रा हुआ नहीं। आपको भी मालूम है न, उस बड़ी हवेली की बात ? सारा संसार जानता है। पर किसी को

हिम्मत नहीं होती, कि खुल्लमखुल्ला उसकी चर्चा करे। उन सबको पूछने वाला कोई नहीं। धन है, वह सब पापों और बुराइयों का प्रायश्चित करा देता है और सब का मुंह बन्द कर देता है। ऐसी गरीब अनाथाओं के विवश आचरण पर उंगली उठाने वाले सूरमा ढेरों मिल जाएंगे। सब कायदे-कानून इन जैसे गरीबों के लिए बने हैं······।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद शीनु ऐयर ने अपनी बात आगे बढ़ाई—जब मंतिरच्चामा रहता था, उन दिनों उससे राशिफल पूछने के लिए दूर-दूर से लोग आया करते थे। बड़े-बड़े व्यापारियों और ज़मींदारों के यहां से उसको बुलावे आते थे। उसके घर के सामने हमेशा मोटरें और घोड़ा-गाड़ियां खड़ी रहतीं। उसको धन-मान की कमी नहीं थी। ऐसे व्यक्ति का दुर्भाग्य देखिए, जब वह रोगशय्या पर पड़ा, तब से कोई यातना बाकी नहीं। सब भोग चुका है। बची-खुची कसर अब ये दोनों—पत्नी और बेटी निकाल रही हैं। गांव वालों ने मिल कर उन्हें 'एक घरा' कर दिया। मेल-मिलाप सब बन्द कर दिया। खंडहर-सा एक घर ही, इनका अब शेष बचा है। बेचारी दोनों होटल में काम करती हैं······।

गप्पी शीनु ऐयर से मैंने इतनी दया-माया की अपेक्षा नहीं की थी। सचमुच इस करुण कथा में, जिसने ऐयर के मन को भी इतना पिघला दिया, सचाई होनी ही चाहिए।

मेरी पत्नी और शीनु ऐयर की बातें सच ही थीं। मैंने भी कई बार उस लड़की धरमु को रात के समय सुनसान गलियों में घूमते हुए देखा। कभी वह पुलिस के सिपाही के साथ बातें करती, कभी पान की दुकान के सामने खड़ी रहती और रात को किराए की मोटर-शैड के पास छिप-छिप कर खड़ी रहती।

ये सब बातें मैंने अपनी पत्नी से कहीं। वह नाक-भौं सिकोड़ कर बोली—मान-प्रतिष्ठा की क्या बात है इसमें? औरत जात है। कितने दिन तक इसकी तलाश करके आदमी आएंगे? पहले कुछ दिन तक नए माल का आकर्षण रहेगा ही। ऐसी हालत भी आ गई है कि अब इस बदचलन को खुद आदमियों की तलाश करनी पड़ती है। नहीं तो, इस तरह गली-गली फिरने और मन्दिर, मोटर-शैड, बाज़ार, चौराहा, आदि पर खड़े रहने की क्या ज़रूरत है? आगे तेज़ी से ही सब चलेगा—रोग, अस्पताल, भिखमंगी, सराय की पनाह और कुत्ते की मौत। कौन किसको रोक सकता है? अब तो माता दुर्गा की सन्निधि पर जा कर आदमी भिजवाने का वर मांगने की नौबत आ गई। मुँहजली यह वर न मांग सकती कि धन दो और कष्ट मिटा दो? छिः-छिः कलमुंही देवता के सामने 'अच्छे उदार दिल वाले' को भेजने का वर मांगने चली!

—वह काम करके रुपया कमाना चाहती थी । बिना कुछ किए-धरे, अचानक धन-वर्षा बरसाने का वर मांगने वाली निकम्मी-मूर्ख जाति की नहीं है वह । उसका विश्वास है कि इस दुनिया को कुछ देने पर ही, हमें भी कुछ न कुछ खाने को मिलेगा । समझीं ?

—क्या समझा ? यह भी कोई काम है ?

* * *

मुझे अपनी पत्नी की वुद्धिमत्ता पर वड़ा आश्चर्य हुआ । वह घर पर रह कर ही दुनिया भर की खवर रखती है । विश्लेपण-अनुशीलन की ऐसी अद्भुत शक्ति इसकों कैसे आई ? नारी की यह कैसी सहज-सर्वग्राही मेधा है ।

—आगे तेज़ी से ही सव चलेगा।—गौरी के इस संवेदन की गहराई अव मेरी समझ में आई । मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि उस वेचारी धरमु का जीवन इतनी तेज़ी से चल कर समाप्त हो जाएगा ।

भोजन करने के वाद मैंने गौरी से पूछा—कैसी बीमारी थी उसको ?

—वड़ी दिलजलाने वाली वात है । वह पेट से थी, तीसरा महीना था ।

तुरन्त परसों मन्दिर में देखी धरमु की सूरत मेरे सामने आई । आधे पेट के खाने में और मुरझाई हुई दशा में उसके शरीर की वैसी अजीव चमक मातृत्व की ही निशानी हो सकती हैं । उसके पेट में पला जीव ही जननी को ऐसी आभा दे सकता है । वह चमक अव अनल-ज्वाला की तरह मुझे जलाने लगी ।

गौरी वोली—उसकी मां डाक्टर के पास गई, तो उस वदमाश ने पचास रुपये मांगे थे । आखिर घर के दरवाज़े वन्द करके मां ने वेटी का इलाज करना शुरू कर दिया। असह्य पीड़ा से वह लड़की ज़ोर से रोने-विलखने लगी । मां ज़वर्दस्ती उसका मुंह वन्द करके इलाज करती गई । कुछ ही क्षणों में छटपटा कर वेचारी मर गई । हमारी कुंजड़िन ने कहा कि मां ने कांच को पीस कर और उसे पानी में घोल कर वेटी को पिला दिया। वेचारी लड़की घंटों तक चिल्ला-चिल्ला कर रो रही थी—पेट का दर्द सहा नहीं जाता, मां।—उस राक्षसी ने वेटी के मुंह में कपड़ा खोंस कर उसका चिल्लाना वन्द कर दिया । वस, वेचारी की श्वास-गति ही वन्द हो गई, वह छटपटा कर मर गई ।

यह सुनते ही मेरा सिर चकराने लगा । गौरी वच्चों की तरह कलप-कलप कर रोने लगी । आंसू पोंछती हुई वह वोली—वह लड़की रोज़ देवी को तेल लगाया करती थी । कम से कम उस सेवा पर दया ही दिखाने से क्या क्षति हो जाती इस देवी को, जो इतने वड़े मन्दिर के अन्दर विराज रही है ? जव अपनी वेदना की हद हो चुकी, तव जाकर वह वेचारी माता दुर्गा के

सामने रो उठी है। एक अनाथ लड़की के गिराए आंसू से भी उस देवी का हृदय नहीं पिघला तो क्या उस पत्थर की मूर्ति की खैर होगी। वह जैसी भी रही हो, उसकी वेदना कितनी दयनीय थी।—गौरी आगे वोल नहीं सकी। सिसकती हुई वह अन्दर चली गई।

मन्दिर की वगल में ही देवस्थान-अधिकारी का घर था। मैंने वहां जाकर उनका दरवाज़ा खटखटाया।

—कौन?—यह उनकी आवाज़ थी।

—जी, मैं हूं।

उन्होंने दरवाज़ा खोला। मुझे देख कर बोले—ओह, आप हैं। आइए, आइए! कैसे इधर भूल पड़े?

—मैंने सुना कि मन्दिर में आज पूजा नहीं है।

—जी हां! दक्षिण वीथी पर एक मौत हुई है।

—मुझे अभी मालूम हुआ। उसी के वारे में आपसे मिलने आया था।

—क्या वात है?

आपने गोपुर का दीप जलाया नहीं। सारी वीथी अंधेरे में डूबी है। आजकल गांव में चोरों का डर वहुत है। इसलिए·····

—आज एक दिन ऐसे ही रहने दीजिए।

यह क्या वेमतलव का जवाव है। मुझे आश्चर्य हुआ। मैं चुप वैठा रहा। एक···दो···तीन···पांच मिनट वीत गए। दोनों मौन ही रहे। वे वोले—क्या आप सोचते हैं कि मैं आदमी ऐसा क्यों कह रहा हूं? मैं तो इस मौत के लिए शोक मनाना चाहता हूं। आपको मालूम है न, मौत कैसे हुई है?

—मालूम है। वड़ी दयनीय है।

—आपने अक्सर देखा भी होगा, वह लड़की रोज़ मन्दिर आया करती थी। मानता हूं, वह वदचलन थी। भ्रष्ट परिवार है, मर जाने के वाद शव उठाने के लिए गांव का एक भी व्यक्ति नहीं आया है! क्या इस वीथी में आदमी रहते हैं? यह कैसा अन्याय है, जी? कहीं एक कौवा मर जाता है, तो कौए झुण्ड के झुण्ड आकर कांव-कांव करके हल्ला मचा देते हैं। देखिए साहव, दोपहर तीन वजे मौत हुई, और अव तक एक भी मर्द उस ओर मुड़ा नहीं। उस घर में सिर्फ औरतें हैं, वाकी सव वाल-वच्चे हैं। जाकर मदद करने से कौन-सी वड़ी हानि हो जाएगी?—अनाथ परिवार है, भुखमरी से पीड़ित कुटुम्ब है, भ्रष्ट हो गया तो क्या हुआ? यह कैसा अंधेर है, साहव! ऐसे जानवरों को मैंने कहीं नहीं देखा, मैं भी चार-पांच जगह रह कर ही इधर आया हूं।

मन्दिर के अधिकारी, उस सज्जन के ओंठ कांप रहे थे, उनकी आंखों से झर-झर आंसू वह रहे थे। थोड़ी देर तक वे बोल नहीं पाए। एक लम्बी सांस छोड़ कर उन्होंने अपनी व्यथा थोड़ी हल्की कर ली। फिर बोले—आप ही बताइए, आज यह देवी दीप मांगेगी? नहीं, नहीं मांगेगी। तब ऐसे गांव के लिए रोशनी की क्या ज़रूरत पड़ी है? कितनी ही रोशनी करें, तब भी हमारे अन्तर का अंधकार दूर हटने वाला नहीं है। बताइए, आज ऐसे ही रहने में क्या हर्ज है?

उनका आन्तरिक ताप उनके चेहरे पर भी स्पष्ट अंकित था। उन्होंने कहा—मन्दिर में पूजा चलेगी कैसे? अभी तक मुर्दा उठाने का कोई इन्तज़ाम नहीं हुआ है। उठाने को कौन आएगा? कहा जाता है कि गांव का यह कायदा है, इज़्ज़त का सवाल है। विजली गिरे ऐसे गांव पर।

मैं चुप बैठा रहा। वे कुछ शान्त होकर बोले—दस बजे तक मैं देखूंगा। तब भी इन लोगों ने कोई व्यवस्था नहीं की, तो मैं खुद जाकर अर्थी उठाने का प्रवन्ध कर दूंगा। मन्दिर के 'नायनक्कार' (बाजा बजाने वाला) ने दो आदमी लाने का वायदा किया है, फिर हम चार लोग शव को ले जाकर दाह-क्रिया कराएंगे। हम और क्या कर सकेंगे? मन्दिर का द्वार कब तक बन्द रहेगा?

—आप कहेंगे, तो मैं भी साथ आऊंगा।—मैंने मुंह खोला।

—आप आएंगे? नहीं, नहीं, भले आदमी की तरह घर पर ही रहिए। बड़े संकट का काम है। यह कोई अकेले व्यक्ति से जूझने का मामला नहीं है।

—नरक में जाए यह गांव और कायदा। पेट पालने के लिए तो और भी कई जगहें हैं। मैं आपके साथ चलूंगा।—मैंने कह तो दिया, पर मेरा दिल अन्दर ही धड़क रहा था।

उन्होंने कहा—नहीं साहब! आप मेरे कारण यह झंझट न उठावें। मैं बुरा न मानूंगा, हां, अगर सचमुच हिम्मत है, तो आइए। नहीं है, तो···

—दूसरों की परवाह मैं क्यों करूं?

—तब तो ठीक है, आपकी इच्छा। मगर आज गोपुर का दीप नहीं जलेगा। यदि मैं जलाऊं, तो मेरी आंखें फूट जाएं। इस देवी-दुर्गा और उस वेचारी लड़की का राशिफल ऐसा है। आज यह लोकमाता दीप नहीं चाहेगी। मैं अभी कहे देता हूं, आज गोपुर का दीप नहीं जलेगा।

—ठीक है।—मैंने उनका समर्थन किया।

देवस्थान-अधिकारी, घरवाली से दरवाजा बन्द करने को कह कर, वाहर आए। हम दोनों उस अंधेरी वीथी से धीरे-धीरे पैर बढ़ा कर पूरब की रोशनीदार गली पर आ पहुंचे।

मूक मानव

मा० गोखले

चारों तरफ अंधेरा फैल गया। हट्टाकट्टा यानादि मुसलाय ब्राह्मणों की गली के हर घर का दरवाज़ा खटखटा कर निराश हो, आखिरकार रामय्या के घर के सामने खड़ा हो गया।

—रामय्या जी ! रामय्या जी! !—मुसलाय ने बाहर से आवाज़ दी। अन्दर से कोई जवाब नहीं आया।

—कोई भी दिखाई नहीं पड़ रहा है, कहां गए सब लोग ?—कहते हुए मुसलाय अन्दर दाखिल हुआ।

रामय्या जी घर के अच्छे आदमी हैं। तीन बच्चे भी हैं। हमेशा घर में रिश्तेदारों का तांता-सा लगा रहता है। मकान भी बहुत बढ़िया है। घर के आगे खाली मैदान पड़ा है।

किवाड़ अधखुला था और अन्दर से रोशनी कुछ अस्पष्ट-सी बरामदे में पड़ रही थी। वहां कोई नहीं था। मुसलाय इधर-उधर देखते हुए बरामदे में गया। अचानक उसकी नज़र एक ऐसी चीज़ पर पड़ी, जो बरामदे के एक खम्भे की बगल में चमक रही थी।

मुसलाय ने इसके पहले कभी ऐसी चमकती हुई चीज़ न मालकिन के पास देखी थी, न उसके बाल-बच्चों के हाथ म ही। खड़े-खड़े वह सोच रहा था कि इस तरह आंखें चौंधिया देने वाली वह चीज़ क्या हो सकती है ? बहुत सोचा, पर कुछ समझ में नहीं आया। आखिर वह अपना सन्देह दूर करने के लिए आगे बढ़ा। उसे लगा कि अगर वह देरी करेगा तो चमकने वाली वह चीज कहीं गायब हो जाएगी। सो वह अपनी नज़र उस पर गढ़ा कर आहिस्ता-आहिस्ता उसके पास गया और बड़े इतमीनान से उसे देखा—गागर, और उसकी बगल में एक छोटा-सा लोटा। मुसलाय उन पर टकटकी लगा कर देखता वहीं खड़ा रह गया। वह सब कुछ भूल गया। उसे इसका भी खयाल न रहा कि वह रामय्या के घर के बरामदे में है और वह उनसे मिलने आया है। सब कुछ भूल कर उन दोनों बर्तनों की तरफ वह देखता जा रहा था। उस बरामदे में अकेला मुसलाय था और वे चमकने

वाली दो चीज़ें । आजकल ये चीज़ें बाज़ार में नहीं मिलतीं, अगर मिलतीं भी हैं तो बहुत ही महंगी । मामूली आदमी के लिए ऐसी चीज़ खरीदना तो ख्वाब की बात है ।

मुसलाय का एक पैर आगे को बढ़ा । इतने में घर के अन्दर से किसी के आने की आहट हुई । मुसलाय के होश एकदम उड़ गए । उसे ऐसा महसूस हुआ कि अभी उस पर घूंसों और लातों की बौछार पड़ेगी । वह कुछ संभल गया और दरवाज़े की तरफ मुंह करके उसने आवाज़ दी--माईजी !—उसके बाद ही उसे कुछ तसल्ली हुई ।

—कौन है ?—कहती हुई रामय्या की पत्नी सीतम्मा अधखुले किवाड़ को पूरा खोलती हुई बरामदे में आ गई । जैसे ही सीतम्मा बरामदे में आई, उसके साथ-साथ रसोईघर की खुशबू भी आई और मुसलाय की नाक ने उसे अपने में समेट लिया ।

—माईजी ! मैं हूं यानादि मुसलाय !—वह कुछ सम्भल तो गया, पर मुंह से ठीक तरह शब्द नहीं निकल पा रहे थे ।

—कौन ? मुसलाय ? तुझे हो क्या गया रे कम्बख्त ! इतने ज़ोर से तूने आवाज़ दी कि सुन कर मेरे होश उड़ गए । इस समय यहां कैसे आया ?···अरे, यहां तो कोई भी नहीं है ! कितनी देर से है तू यहां ? ···मुझे तो इसका खयाल भी नहीं रहा कि बरामदे का दरवाज़ा खुला हुआ है और बच्चे यहां नहीं हैं।··ये बच्चे तो एक मिनट के लिए भी घर में नहीं रहते । इन्हें अड़ोस-पड़ोस के घर अच्छे लगते हैं । इतने लापरवाह हैं कि दरवाज़ा खुला ही छोड़ गए । क्या किया जाए ? मेरा तो नाक में दम है !···शास्त्री जी के लिए क्या कहूं ? इतनी रात बीत गई पर घर आने का नाम नहीं, कहीं बैठ कर शास्त्र-मीमांसा में दिमाग लड़ा रहे होंगे ।···हां, यह तो तूने बताया नहीं—बात क्या है ? किस काम से आया है—? पर अच्छा हुआ आ गया, गागर···सीतम्मा इस तरह बहुत जल्दी-जल्दी बातें पूछ रही थी, मानो पानी में डूबने से उसके मुंह और नाक में बहुत-सा पानी भर गया हो और वह उसे निकालने की बड़ी कोशिश कर रही हो ।

—रामय्या जी से मुलाकात करने आया था ।—मुसलाय ने किसी प्रकार कहा ।

—वे तो घर में नहीं हैं । मालूम नहीं कहां अपनी बैठक जमाए हुए हों । घर में कोई मर भी जाए, उसकी उनको परवाह नहीं ।·····तूने बताया नहीं, उनसे क्या काम है ?

—कुछ नहीं माईजी ! बाऽऽऽऽऽत !! बाऽऽबऽऽबऽऽब···!!!

—क्या वा वा वा, तुम्हारा सिर ! अपनी हकलाहट से मुझे परेशान कर रहे हो । कुछ ठीक बोलते भी नहीं । रसोई का सारा काम वैसे ही पड़ा हुआ है ।······कच्चा ईंधन लाकर मेरे सिर पटक दिया ।······खैर उनसे कल मिल लेना ! अभी उनके आने में और भी देरी हो जाएगी । हां, चले जाओ, किवाड़ बन्द करके जाऊंगी । हां, हां, मुसलाय ! ज़रा ठहर तो जाओ । दो घड़े पानी दे जाओ, तुम्हारा बड़ा भला हो ! इतना काम कर देना, इतने में शायद वे आ भी जाएं । अभी अन्दर से घड़ा लाए देती हूं । अरे, मैं तो भूल ही गई—गागर और लोटा तो वहीं पड़ा है । आजकल ये चीज़ें बहुत महंगी हैं । ऐन वक्त पर तुम आ गए हो । अभी ठहर जाओ मुसलाय !

सीतम्मा यह कह कर अन्दर चली गई और एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में घड़ा लिए वापस आ गई। छत से लटकने वाले एक लाहे के तार में लालटेन लटका दी और मुसलाय के हाथ में घड़ा देते हुए कहा—तेरा बड़ा एहसान मानूंगी । ज़रा उन दोनों टबों में पानी तो भर दे !

सीतम्मा यह कहकर वहीं खड़ी हो गई ।

—हां, हां, माईजी ! तुरन्त भर देता हूं। आप अपना काम देख लीजिएगा।

—कोई बात नहीं, लालटेन लिए मैं कुएं के पास आ जाऊंगी ।··· क्यों मुसलाय ? तुमने अपनी बीवी को घर बुला लिया या नहीं ?

—क्या कहूं, माईजी ?

—क्यों अपनी बीवी के बारे में कुछ कहते शरम आती है ? अरे तू तो पागल है ! ···सूरत-शक्ल कैसी है उसकी ?

—हमारी बस्ती में तो लोग उसे खूबसूरत कहते हैं ।

—उसका नाम क्या है ?

—उहूं ।

—क्यों रे उसकी याद करके खुश हो रहा है या शरमा रहा है ? हमारे परिवारों में तो ऐसा नहीं होता । पत्नी का नाम बतला देते हैं ।

—यह बात नहीं माईजी ! नाम तो उसका शशिरेखा है ;

—शशिरेखा, नाम तो बहुत अच्छा है । तुम्हें तो अच्छी बीवी मिल गई है । बड़ा शौकीन नाम है । शहर की लौंडी तो नहीं ।

—नहीं माईजी ! उसकी ताई का नाम शशिरेखा है । उसने अपना ही नाम इसे भी दे दिया ।

—अच्छा ! ···वहघड़ा वहीं रख दे । देख मुसलाय ! ज़रा तकलीफ़ दे रही हूं । गोशाला के उस कोने में उपले पड़े हैं, एक टोकरी भर लाकर इस बरामदे में डाल दे ।

—जी······?

—बस !···अभी लड़के आ जाएंगे । उनको खिलाते-पिलाते सवेरा हो जाएगा । हां सुन, बच्चों की ये खाटें ज़रा आंगन में रख दे ।

—और कोई काम तो नहीं है न···

—नहीं बाबा, नहीं ! तेरा भला हो ।

—रामय्या जी ने शाम को आने के लिए कहा था !

—कहा होगा, पर अभी तक तो आए नहीं । पता नहीं, कब आएंगे ।

—सवेरे उनसे मुलाकात हुई भी और······

—हां, हुई होगी !······

—मैंने चार आने मांगे थे ।

—अच्छा······हां, अरे, मैं तो भूल ही गई । रसोईघर का सारा काम वैसे ही पड़ा है । उनके···खाने-पीने में कोई कसर नहीं रहनी चाहिए । ···अभी तो वे आए नहीं । तुम कल सवेरे मिल लेना ।

—माई !···पाव भर···चावल···!

—अभी तो मैं कोई चीज़ छू नहीं सकती ! रसोई के कपड़े पहने हूं । फिर आना ।···जा रहे हो ? एक बात सुनो तो । दर्भा वालों के घर में हमारे बच्चे होंगे । ज़रा उनसे घर आने को कहना, अंधेरा बहुत हो गया है ।

* * *

—सीतम्मा जी के बच्चे अन्दर होंगे ! कह दीजिएगा, उनकी मां बुला रही है ।—मुसलाय दर्भा वालों के आलीशान मकान के आंगन के अन्दर कदम रखते हुए बोला !

—कौन है रे ?—घर के बाहर के खाली मैदान में खाट पर बैठे दर्भा सुब्बय्या जी ने प्रश्न किया ।

—मैं हूं बाबूजी ! मुसलाय ! सीतम्मा जी के बच्चों को बुलाने आया हूं ।

—ओह, तुम हो मुसलाय ! इधर आओ तो !···उनके बच्चे अभी अभी गए हैं, राघवय्या जी के बच्चों के साथ ! बस अब पहुंचते ही होंगे । बैठो । मेरे बाएं पैर की हड्डी में बड़ी चोट लगी है । इतना दर्द हो रहा है कि क्या करूं ? बाप रे बाप ! भगवान मुझे ज़िन्दा नहीं रखना चाहता । ···हूं ! हूं !!

—पैर बहुत सूज गया है बाबूजी ! चोट कैसे लगी ?

—सीढ़ियों से उतरते हुए पैर फिसल गया । हे भगवान ! कौन-सा

पाप मैंने किया ? ज़रा देखो तो मुसलाय ! ···सुनती हो ? क्या कर रही हो ? तेल का डिब्बा तो इधर लाना !

—हां, हां, सुन रही हूं ! चिल्लाते क्यों हो ! ···ये मर्द हैं कि बस, हर छोटी-सी बात के लिए आसमान सिर पर उठा लेते हैं । अड़ोस-पड़ोस के लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे, ज़रा इसका भी तो ख्याल रखना चाहिए ! ··मैं रसोई के काम में लगी थी । खाली हाथ तो बैठी नहीं ! ···यह कौन ?

—कोई भी हो ! मैं तो यहां दर्द से मरा जा रहा हूं, पर तुम्हें इसकी परवाह ही नहीं। तिस पर चुप रहने का सबक सिखाने चली हो । तेल का डिब्बा वहां रख दो और जाओ अपना काम करो ! रसोई करके मुझ पर कोई एहसान तो नहीं कर रही हो ।

—एहसान तो आप कर रहे हैं, दिन-भर घर में बैठे-बैठे ।

—बकवास बन्द कर अपना काम करो ।···देखो मुसलाय ! तेल से ज़रा पैर की मालिश आहिस्ता-आहिस्ता करना ! ···ओह ! भगवान रामचन्द्र जी ! तुम कहां हो ?

—आजकल तो हर किसी को अपनी-अपनी तकलीफ का ही ख्याल रहता है । ज़माना बेढंगा है, सरकार !

—हां ! तुम ठीक कहते हो । आजकल कोई मोटा-तगड़ा आदमी ही नहीं दीखता । हर कोई हड्डी के ढांचे-सा दीखता है । लोगों में सुस्ती बहुत छा गई है । हर घर में बीमारी पलती है । इसीलिए तो डाक्टरों का बोल-बाला हो गया है । हमारे दादा जी के ज़माने में लोग इतना चावल खाते थे, इतना दूध-दही पीते थे कि उसका एक-चौथाई भी आज का इन्सान खा-पी नहीं सकता ! टोकरी भर गारेलु[1] एक मिनट में उड़ा जाते थे । हमारे गांव के विष्णु मन्दिर के पास जो पत्थर का रथ पड़ा हुआ है, उसे वे लोग अपनी एक भुजा के सहारे हिला देते थे, और उसे मोटरगाड़ी की तरह दौड़ाते थे ।···ओह, ज़रा धीरे-धीरे मालिश करना ! ···अभी कलियुग का अन्त होने को है । अन्यथा ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती !

—जब से धान की कटाई हुई, तब से आज तक कोई मज़दूरी मिली ही नहीं । हमारे तो मरने की नौबत आ गई है, सरकार ।

—मैं भी वही कह रहा था ! भगवान का जन्म वसन्त देव के रूप में होने वाला है । राक्षसी प्रवृत्ति के आदमियों का अन्त हो जाएगा । कृतयुग का प्रारम्भ होगा ।

---

[1]आन्ध्र का उड़द का बनाया पकवान ।

—हमारी वस्ती में ऐसा कोई घर नहीं, जहां चूल्हा जलता दीखे। लोग दाने-दाने को मुहताज हो गए हैं वावूजी।

—एक तूफान आएगा। लोगों का सर्वनाश हो जाएगा। राक्षसों का संहार। शंकर जी के दर्शन, धर्म परायणता का साक्षात्कार होने का समय आ गया।

—रात वीतती जा रही है, सरकार। कल सवेरे से हम दोनों ने कुछ खाया-पिया नहीं, भूख वहुत लग रही है।

—हां, हां! रात वहुत बीत गई है। अव छोड़ दे न, मालिश। हां, देखना, तुम्हारे हाथों में जो तेल लगा हुआ है, उससे तलवे को ज़रा रगड़ देना। हां, बस। सुनती हो। गर्म पानी तैयार है कि नहीं?

—रामय्या जी से सवेरे चार आना पैसा मांगा था। उन्होंने शाम को आने के लिए कहा, पर अभी तक वे घर ही नहीं आए। शायद देर से घर पहुंचेंगे। दया कीजिए, वावू जी, कल से हमने कुछ खाया-पिया नहीं। कुछ खाने को दिला दीजिए।

—अरे रे। यह वात है। पर, सच मानो, घर में कुछ नहीं है। अव मैं तुम्हारी मदद कैसे करूं? मैं आज सवेरे शेषय्या से एक रुपया उधार मांग कर लाया था, पर घीवाली ज़मीन-आसमान एक कर उसे ले गई। मैं अन्दर पूछ कर देखता हूं। कोई चटनी-वटनी हो, तो ले जाना।··· सुनती हो?

—जव खाने को कुछ नहीं है, तो चटनी क्या चाटें वावूजी। अगर आप थोड़ा-सा चावल दिला देते, तो मेरा काम चल जाता।

—चावल तो वहुत महंगा हो गया है, और मिलना भी मुश्किल हो गया है। हमारे अनाज का भंडार अभी खुला नहीं। क्योंकि मैं इधर लंगड़ा बन कर वैठ गया हूं। लोगों से सप्ताह भर से कह रहा हूं, पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। कोई आदमी ही नहीं मिला। हमारे घर में भी चावल की वड़ी तकलीफ हो रही है। अड़ोस-पड़ोस से उधार ले-लेकर काम चला रहे हैं। यह भी बड़ी मुसीवत है। भगवान श्री रामचन्द्र जी की जय हो।···हां शायद रामय्या जी अव घर पहुंच गए होंगे। उन्हीं से जाकर मिल लो। हां, सुनो—कभी-कभी इधर आ जाया करो। भूलना नहीं।···भगवान रामचन्द्र जी की ···।

* * *

रामय्या जी रात को वड़ी देर से घर लौटे।

—गर्म पानी रख देना। तौलिया दे देना। खाना भी जल्दी परोस देना। —घर पहुंचते ही वे बड़ी झुंझलाहट से बोले। मानो अभी तक गांव-

भर के मामले सुलझाने में मशगूल रहे हों। उसी वक्त मुसलाय ने दबे पांव वहां आकर दरवाज़ा खटखटाया।

—आपने सांझ को आने के लिए कहा था—दरवाज़ा खुलने पर रामय्या जी को सामने देख मुसलाय ने कुछ डरते हुए धीमें से कहा।

—राम !. राम !! तू तो नाक में दम कर रहा है। इस वक्त तो चला जा। कल मिल लेना, देखा जाएगा। इस वक्त मुझे क्यों परेशान कर रहा है ?—रामय्या जी ने बड़ी नाराज़गी से कहा।

मुसलाय रामय्या जी के घर से सीधे साहूकार चेंचय्या की दुकान के पास गया और वहां एक कोने में दब कर खड़ा हो गया। खाली मुंह से यों ही कुछ चबाता-सा।

—क्यों रे मुसलाय, तू तो बड़ा चंट आदमी निकला। तूने कहा था कि सवेरे आकर लकड़ी फाड़ दूंगा। पर दिखाई अब दे रहा है।—दुकान की चीज़ें इधर-उधर संभालते और कनखियों से मुसलाय की तरफ देखते हुए साहूकार चेंचय्या ने कहा।

—इस यानादि जाति के लोग ही ऐसे हैं कि फाका करना मंजूर हैं, पर काम करना पसन्द नहीं करेंगे।—गांव के एक बड़े किसान के लड़के ने जो तम्बाकू की रीढ़ बड़ी सावधानी से निकाल कर चुरुट बना रहा था, मुसलाय की तरफ बड़ी लापरवाही से देखते हुए अपनी राय साहूकार को बता दी।

—आप भी कैसी बात कर रहे हैं साहूकार जी ? मैं गांव से भाग थोड़े ही जाऊंगा। कल मैं ज़रूर आपका काम कर दूंगा। मुट्ठी भर दाने के लिए मैं कोई भी काम करने के लिए हमेशा तैयार रहता हूं। आपका काम करने में तो मुझे बेहद खुशी होगी। कल मैं ज़रूर यहां आकर लकड़ी फाड़ दूंगा साहूकार जी।

—मैं ज़माने से जानता हूं, तुम लोगों पर यकीन करना निहायत बेवकूफी है। अगर तुम लोगों की उम्मीद में बैठे रहें, तो हमारा कारोबार ही ठप्प हो जाए।···खैर, ज़रा बाहर के धान के बोरे अन्दर कोठी में रख देना।

—अभी रखता हूं सरकार। पर आपकी बड़ी मेहरबानी हो, अगर आप पाव-सेर चावल उधार दे दें। कल से हम दोनों ने कुछ छुआ तक नहीं है। पैसा मैं कल शाम तक चुका दूंगा।

—मुसलाय, बातें तो बहुत मीठी-मीठी कर रहा है। उधार चुका दे न, चुका दे, भाड़ में जाए···किसान के लड़के ने चुरुट मुंह में रखते हुए कहा।

—हां, हां, तुम ठीक कह रहे हो। देखो मुसलाय, मुझे तो तुम पर

तरस आता है, पर बात यह है कि मैंने आज का सारा हिसाब-किताब खत्म कर दिया और अभी-अभी भगवान को कपूर जला कर भेंट भी चढ़ा दी। अब तो उधार दे नहीं सकता। और फिर दूसरी बात यह भी है कि मुझे गांव में बहुत से लोगों से उधार का रुपया-पैसा मिलना बाकी रहता है। साहूकार पैसे के बिना रोज़गार भला क्या कर सकता है ? यह तुम्हें मालूम नहीं। इस लेन-देन में मुनाफा तो दूर रहा, उलटे लोगों के सामने नाक रगड़नी पड़ती है। खैर, रहने दो यह साहूकारी का पलड़ा। कल किसी वक्त चले आना। हम तुम गांव छोड़ कर तो भाग नहीं जाएंगे। क्यों ?

—मुझ पर रहम कीजिए चेंचय्या जी। जान निकली जा रही है।

—तुम तो अपनी ही बात पर अड़े हो। मैं अधिक क्या कहूं ? आधी रात कोई उधार मांगने का वक्त होता है ?···आखिर तुम धान के बोरे अन्दर पहुंचाओगे कि नहीं ? टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो ?

—साहूकार जी, मुझे तो रोना आ रहा है। आप नहीं जानते, भूख की कितनी बड़ी लपटें पेट में भभक रही हैं। कम से कम कुछ तो खाने को दे दीजिए।

—यह लो तम्बाकू।···चेंचय्या जी उसके सामने गुड़ की थोड़ी सी बुकनी फेंक दीजिए न। बहुत रो रहा है—किसान के लड़के ने कहा।

* * *

—मैं पूछ रही हूं, अभी तक तुम गए कहां थे ? क्या खाक छान रहे थे ? तुम्हें तो मालूम है, कल सवेरे से घर में चूल्हा नहीं जला। घूम-घाम कर अब खाली हाथ लौट आए हो। इस तरह मुझे भूखी रख कर क्यों मारना चाहते हो ? मायके ही भेज दो। मैं बेमौत यहां मरना नहीं चाहती।—मुसलाय को देखते ही शशिरेखा आग-बबूला हो गई।

—क्या बकवास कर रही है तू ? अन्दर आ जा।—खाली हाथ लटकाए कुटिया के अन्दर जाते हुए मुसलाय ने जवाब दिया।

—नहीं, मैं नहीं आऊंगी। मैं तो अपने मायके चली जाऊंगी।

—मायके कैसे जाएगी। मर्द के जीते जी बीबी कहीं मायके जा सकती है ? नखरे छोड़ कर अन्दर चली आ।

—अरे रे! मेरी बांह क्यों खींच रहे हो ?

—अन्दर तो आ। मैं सब कुछ बता दूंगा।

—क्या बता दोगे ? घर में एक दाना भी नहीं है!···अरे रे!! यह क्या कर रहे हो ?···रहने दो अपनी मुहब्बत।

—रहने कैसे दूं ?···इधर बैठ जा, मेरे सामने।

—मैं नहीं बैठूंगी।

—नहीं बैठेगी ? ··हड्डी-पसली एक कर दूंगा तेरी ।

—ज़रूर कर दो । अभी तो आधा मर ही चुकी हूं भूख से, अगर मेरी मौत से तुम्हें खुशी हो तो अपनी वह इच्छा भी पूरी कर लेना ।

—छीः छीः । कैसी गंदी बात कर रही है । तू तो मेरे दिल की धड़कन है । खैर, ·· हमारे दिन अच्छे नहीं । मैं लोगों का हर एक काम कर देता हूं, लहू-पसीना एक करके भी । पर कोई एक दमड़ी तक नहीं देता । मैं करूं तो क्या ? ··एक-दो दिन भूखे ही रहें, तो क्या हुआ ? सब दिन एक-से नहीं गुज़रते । ज़िन्दगी धूप-छांह है ।

—इस गांव के लोग बड़े कंजूस हैं, किसी की मदद ही नहीं करते ।

—मदद की बात रहने दो । जो काम करता हूं, उसके बदले में भी तो वे कुछ नहीं देते ।···मैंने तुझसे कितनी बार कहा था कि ब्राह्मणों के यहां जाकर उनके घर का कुछ काम-काज अगर कर देती, तो कुछ न कुछ मिल ही जाता ।

—मैं उनके घर नहीं जाऊंगी । एक-एक लफ्ज़ को खींचते हुए-से वे बात कहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता कि क्या कहते हैं ।···अगर नारियल के पेड़ के पत्ते तुमने ला दिए होते, तो मैं चटाई वगैरह बना देती । पर तुमने मेरी बात पर गौर ही नहीं किया ।

—जब मैं लोगों के बताए हर काम को कर देता हूं, तो भी कुछ फायदा नहीं होता । ऐसी हालत में चटाई के कारोबार से क्या होगा ? पर याद रखना, हमारे भी दिन लौटेंगे । ऊपर तो भगवान है ही । यह सब वह देखता ही होगा ।

—कल मुझे भी अपने साथ ले चलो । मैं भी काम की खोज करूंगी

—हां, हां, ज़रूर । दोनों साथ-साथ चलेंगे । देख ।···घर में कच्ची मछली है न ? वही सही । ले आ । दोनों खा लेंगे ।

—अरे रे, यह क्या कर रहे हो ? मेरे बाल तो छोड़ो ।···कोई देख लेगा—रहने दो अपना लाड़-प्यार ।

सखि से अब कुछ कहना क्या है,
सखि मुझमें अब अपना क्या है ?

अनुवादक : दण्डमूडि महिधर

सगा सम्बन्ध

को० कुटुम्ब राव

शिवं बहुत कुछ जानता था—स्कूल से भाग आना, ज़बर्दस्ती भेजे जाने पर मास्टर की आंखों में धूल झोंक कर चम्पत हो जाना, मास्टर अगर सबको छोड़ कर उसी को ध्यान से पढ़ाता तब भी उसके पल्ले कुछ न पड़ना, अगर कोई साथ का लड़का मिलता तो उससे पहले दोस्ती करना, फिर झगड़ना, फिर उसे पीटना, अगर पीट न सका तो खुद खूब पिटना और किसी से कुछ न कहना, हर हफ्ते कोई न कोई आफत मोल ले लेना, सिनेमा और सर्कस बिना टिकट के जाना, दीवारों पर कोयले से गालियां लिखना, सस्ती सिगरेट फूंकना, आदि कितनी ही बातें वह जानता था। पर लड़कियों के साथ कैसे व्यवहार किया जाए यह वह न जानता था। सच कहा जाए तो वह लड़कियों से कतराता था। अगर कभी संकोच न भी होता तो ऐसा दिखता, जैसे वह पचीस वर्ष का नौजवान हो और लड़कियां गृहस्थी चलाने वाली स्त्रियां हों। और अगर कभी जोश आ जाता तो इस तरह दिखाता जैसे वह गोद का बच्चा हो। उसका यह व्यवहार लड़कियों को बहुत बुरा लगता।

आज वह जोश में था। पहली बात तो यह कि वह स्कूल से भाग आया था। और दूसरी यह कि वह घर से एक इकन्नी भी चुरा लाया था,जिसे उसकी मां ने एक ताक में रख रखा था। यही नहीं, उसने एक अपरिचित दुकान वाले के पास जाकर रौब से कहा—एक बीड़ी देना ज़रा।—बीड़ी पीकर जब वह घर पहुंचा, तो लक्ष्मी और पड़ोस वाली बालाम्बा गुड़ियों को चीथड़ों की पोशाक पहना रही थीं।

शिवं कुछ देर तक तो टांगें लम्बी करके चुपचाप उनको देखता रहा, फिर एक चीथड़ा घसीट लिया और उसे लक्ष्मी के सिर पर डाल कर गाने लगा—एक लड़की के सिर पर गौरैया।—बालाम्बा ने उसकी ओर एक बार घूरा, फिर अपने काम में ऐसे लग गई जैसे वह वहां हो ही न।

लक्ष्मी ने उसकी ओर नज़र गाड़ कर गुस्से में देखा—लड़कियों से तुझे क्या वास्ता? तू स्कूल क्यों नहीं गया, यहां क्यों है? मां से कहूं? क्यों?—उसकी आवाज़ हर सवाल के साथ ऊंची होती जाती थी। उसका इरादा था कि रसोई में मां के कानों में भी ये बातें पड़ें। वह वहां काम कर रही थी।

शिव इस तरह ठहाका मार कर हँसा जैसे उसको किसी का डर ही न हो। फिर उसने लक्ष्मी के हाथ से गुड़िया छीन ली।

इस बार लक्ष्मी जोर से चिल्लाई—अरे, वह गुड़िया दे दे, तुझे हो क्या गया है? मां, इस शिवं को तो देखो, हमें तंग कर रहा है। दुष्ट कहीं का, वेधवा (जिसका अर्थ विधवा भी होता है।)

—तू ही विधवा है—शिवं ने लक्ष्मी के सिर पर वह गुड़िया मारी, फिर एक बार और मारी, और उस गुड़िया को पत्थरों में फेंक कर वह नौ दो ग्यारह हो गया।

थोड़े दिनों में लक्ष्मी की शादी होने वाली थी, फिर सहेली के सामने वह बेचारी रो भी न सकी। उस गुस्से से जो उगल दिया जाता है, निगला हुआ गुस्सा दुगुना होता है। लक्ष्मी ओंठ हिलाती अन्दर ही शिवं को कोसती रही "वेधवा, वेधवा, वेधवा", जाने कितनी बार उसे दुत्कारा।

यह बात जितनी लक्ष्मी और वालाम्वा को गंदी लग रही थी, उतनी ही शिवं को भी लग रही थी। पर क्या करता? चाहे कितना ही अच्छा सोच कर कुछ क्यों न करे, पर उसका नतीजा कुछ ऐसा ही होता था। दुनिया में क्योंकि सब लक्ष्मी की तरह ही हैं, इसलिए सब बातें ऐसी ही होती हैं। शिवं तो कभी अपनी गलती जानता ही न था। सच कहा जाए तो लक्ष्मी पर उसको बहुत प्रेम था, अभिमान था—लक्ष्मी पर हाथ उठाने के बाद तो यह बात उसे और भी साफ हो जाती, पर क्या फायदा? प्रेम दिखाने के लिए उसे मौका ही न मिलता था? किस्मत ही खराब थी।

हर कोई एक ही तरह से पश्चाताप नहीं करता। यह शिवं का अपना पेटेंट तरीका है। अपनी ही नज़र में अपने को नीचा करने की बनिस्वत वह उन लोगों को अपनी नज़र में ऊंचा कर देता था, जिनका उसके द्वारा अपकार हुआ होता था। इस प्रकार की घटना—लक्ष्मी पर हाथ उठाने की आवश्यकता, कम-से-कम रोज एक न एक बार होती थी, इसलिए लक्ष्मी शिवं की दृष्टि में एक देवी-सी हो गई थी। परन्तु यह दिखाने के लिए शिवं को अभी मौका न मिला था। यह गूढ़ रहस्य अभी शिवं के हृदय में ही जकड़ा हुआ था।

लक्ष्मी अपने भाई से ठीक एक साल बड़ी थी। शिवं भले ही ए बी सी डी भी न जान पाया हो, वह दस साल का हो गया था। लक्ष्मी ग्यारह की थी। दोनों ही अपने पिता को न जानते थे। जब से वे कुछ बड़े हुए, मां ही उनकी पूरी तरह देख-भाल कर रही थी।

मां को बच्चों का पालना-पोसना न आता था। यह न वह जानती थी, न उसके प्रशंसक ही। वह दोनों को आपस में एक-दूसरे की निगरानी रखने के लिए कहती। उसका विश्वास था कि उन दोनों में वैर होगा—उस विश्वास का क्या आधार था,

मैं नहीं जानता। पर कोई भी उनका व्यवहार देख कर यह अनुमान कर सकता था कि उसका विश्वास ठीक था। सच कहा जाए तो उनके उस तरह के व्यवहार का कारण उसका यह विश्वास ही था। वह दोनों को एक-दूसरे की रखवाली करने के लिए ही न कहती, बल्कि उनकी सुरक्षा के लिए और भी बहुत कुछ करती। अगर कोई एक-दूसरे की कोई शिकायत करता तो बिना आगे-पीछे देखे उसको सज़ा देती। जितना उसका यह विश्वास था कि कोई भी अपने बारे में सच न कहेगा, उतना ही उसका यह विश्वास था कि कोई दूसरे के बारे में झूठ न बोलेगा।

पर उसको यह कभी न सूझा कि वे दोनों एक होंगे या हो सकते हैं। लक्ष्मी को ही पहले लगा कि उसको भाई की मदद करनी चाहिए। जब उसको मालूम हुआ कि भाई का व्यवहार बिगड़ता जा रहा था, उसने अपनी मां से उसकी शिकायत करना कम कर दिया, और उसको डराना अधिक कर दिया कि वह उसकी शिकायत करेगी। लक्ष्मी को इस बात की भी फ़िक्र न थी कि शिवं का उसके बारे में यह ख्याल न था।

लक्ष्मी में यह परिवर्तन क्यों हुआ, यह निश्चय करना आसान न था। हो सकता है कि इसका कारण स्त्रियों की स्वाभाविक सहिष्णुता ही हो, हो सकता है यह लक्ष्मी का विकसित मातृत्व ही हो, या शायद बहिन का स्वाभाविक प्रेम हो। हो सकता है भाई को जिस न्याय के आधार पर दण्ड दिया जाता था, उस पर उसको अविश्वास हो—अगर ये सब न भी हों, तो हो सकता है कि रौब ही उसका कारण हो, जो वह अपने भाई पर दिन प्रति दिन जमाती आ रही थी।

पर हुआ यह कि लक्ष्मी का प्रेम भाई पर बढ़ता जाता था, यद्यपि उसके लिए वह अयोग्य भी होता जाता था। हम जिनको क्षमा कर सकते हैं, उनको कभी न कभी प्रेम भी कर सकते हैं, जो सज़ा ही देते रहें, उनको प्रेम तो कर ही नहीं सकते। जितना उचित दण्ड होता है उतना ही कठिन प्रेम हो जाता है। बिना यह जाने उन बच्चों की मां उनको उचित दण्ड ही देती, अगर कभी अनुचित दण्ड भी देती, तो पश्चाताप करके वह प्रेम भी कर सकती थी—मानो शिवं को अपनी बहिन पर प्रेम ही हो।

लक्ष्मी के विवाह के बारे में बातें चल रही थीं। उसके बन्धु-बान्धवों में मौके बेमौके यह पूछना फ़ैशन सा हो गया था कि वह कब सयानी होगी। पर सच कहा जाए तो लक्ष्मी में अभी सयानेपन के कोई लक्षण न थे। उसके जानने-पहचानने वालों के लिए यह विश्वास करना मुश्किल था कि वह केवल ग्यारह वर्ष की ही थी। शिवं अपनी बहिन से कम से कम दो वर्ष बड़ा लगता था। इसलिए बहुतों का यह खयाल न था कि वह सचमुच सयानी हो जाएगी, पर कई यह भी जानने को उत्सुक थे कि देखें क्या होता है, अगर वह सयानी हो जाए।

शिवं अकसर हर रोज़ कहता—तेरा पति रावण राक्षस हो, तब तेरी अक्ल

ठिकाने आएगी।—वह यह कह तो देता था, पर उसको मन ही मन आश्चर्य होता कि उसके मुंह में यह वात क्यों आई, उसके हृदय में यह वात क्यों उठी। वह यह न जानता था कि वह अपने मुंह से अपने मन की रक्षा कर रहा था। उसे अभी उतना आत्मज्ञान न था।

उनका चाचा ही लक्ष्मी के विवाह के वारे में वातें कर रहा था। उसको देखने से ही शिवं को ऊपर-ऊपर से भय होता और अन्दर ही अन्दर गुस्सा आता।—क्योंकि ये ही महानुभाव थे, जो शुरू से कहते आए थे कि उसको पढ़ाना-लिखाना चाहिए, उसको पीट-पाट कर ठीक रास्ते पर रखना चाहिए।

छुपाते तो वे क्या, वल्कि वे हमेशा वढ़ा-चढ़ा कर यों कहा करते, जैसे लक्ष्मी के विवाह का सारा भार उनके सिर पर ही हो—वाप रे वाप, अपनी लड़की के लिए सम्वन्धी ठीक करना वड़ा कठिन है, किसी और की लड़की के लिए दौड़-धूप करना पड़ जाए तो उससे वदतर काम नहीं है।—यों वकवास भी किया करते।

जव कभी वे यों कहते, शिवं का पारा चढ़ता। हो सकता है कि वह सोच रहा हो कि उसके चाचा को मेरी वहिन के विवाह का भार खुशी-खुशी स्वीकार करना चाहिए था। उसे इस पर भी आश्चर्य हो रहा था कि उसकी मां वह सहायता क्यों स्वीकार कर रही थी, जो इस प्रकार नाक-भौं चढ़ा कर दी जा रही थी। फिर यह सोच कर उसको और भी रंज हुआ कि उसका चाचा अपनी लड़की के लिए वर ढूंढ़ने में जितनी दिलचस्पी दिखाता, उससे आधी दिलचस्पी लक्ष्मी के विवाह में दिखा रहा था। उसके मन में यह खयाल तो था ही, और जव वह उनको देखता, जो लक्ष्मी को देखने के लिए आते रहते थे, उसको और चिढ़ लगती। भय भी होता कि उसकी वहिन की शादी ठीक तरह न होगी।

अगर उस हालत में कामदेव स्वयं भी आता, तो शिवं उसकी भी नुक्ताचीनी करता, फिर उनकी क्या औकात है, जिनको उसके चाचा, विना दहेज का वायदा किए फुसला-फुसला कर ला रहे थे।

आखिर लक्ष्मी का विवाह निश्चित हुआ। वर स्वयं तो नहीं आया, उसने अपने पिता को, माता और वहिन के साथ भेजा। उन लोगों का नाक-नक्शा देख कर, शिवं का खयाल वर के वारे में अच्छा न वना।—यह अफसोस की वात थी कि विवाह के इस पहलू के वारे में सोचने वाला वहां कोई न था। उन्होंने लड़की देखी, उसकी तारीफ भी की—किसको ज़रूरत है तुम्हारी तारीफ की, तुम्हारे लिए तो हमारी वहिन अप्सरा ही है—शिवं ने मन ही मन सोचा।

जव शिवं को मालूम हुआ कि वर ने स्कूल फाइनल से पढ़ना छोड़ दिया था, तो उसने भी अपने ओंठ टेढ़े-मेढ़े किए, यद्यपि वह निकर का नाड़ा भी ठीक तरह न वांध पाता था, और न उसे यह आशा ही थी कि वह कभी स्कूल फाइनल तक पढ़ भी पाएगा।

जब शिवं को पता लगा कि वर के पास बहुत-सा धन-दौलत है, तो उसकी चिढ़ और भी बढ़ी। उसे ऐसा लगा कि बन्धु-बान्धव साज़िश करके लक्ष्मी को उसके धन-दौलत के लिए बेच रहे थे।

जब रिश्तेदार इस शादी को आपस में सराहने लगे, तो शिवं के लिए अकेला बैठना ही मुश्किल हो गया। उसकी ओर से बात करने वाला वहां कोई भी न था। —ये सब आपस में सांठ-गांठ करके मुझे और लक्ष्मी को डुबोने चले हैं। अगर मैं चार वर्ष और बड़ा होता, कम-से-कम दो वर्ष ही बड़ा होता, तो क्या ये अपनी धौंस यों चला पाते ?

शिवं यह न जानता था कि उसकी इस हालत का कारण ईर्ष्या थी। कौन उसे यह बताता ? किसे यह मालूम था कि वह यों सोच रहा था, सिवा उसके यार हनुमन्ता के।

तालाब के किनारे, हनुमन्ता और शिवं ने लक्ष्मी के विवाह के बारे में बहुत देर बातचीत की थी—बीड़ी पीते-पीते। कम-से-कम हनुमन्ता ने उसकी बात दिल देकर सुनी तो थी।

—अरे वह तो एकदम निरा गंवार है—शिवं ने कहा, बीड़ी का धुआं उगलते हुए—उस गधे के पास पैसा है, पर पढ़ा-लिखा नहीं है। बन्दर की तरह है—क्या हुआ अगर उसने हनुमन्ता से यह न कहा हो कि उसने वर को न देखा था ? क्या हुआ अगर कल यह पता लग जाए कि यह बात कितनी सच है और कितनी झूठ।

हनुमन्ता ने जलती बीड़ी से नई बीड़ी जला कर गम्भीरतापूर्वक कहा—ये विवाह...।

शिवं का जीजा, कनकय्या शुरू से ही अपने साले के प्रति विशेष प्रेम दिखाता आया था। वह न जानता था कि उसका प्रेम शिवं के हृदय में किस तरह की आग पैदा कर रहा था।

कुछ भी हो, शिवं कनकय्या को माफ न कर सका।—वह होता कौन है ? मुझे "अबे" कह कर पुकारने वाला, मुझसे काम करवाने का उसे अधिकार क्या है ?—पाठक अनुमान कर लें कि उसको अपना जीजा मानने के लिए उसको कितना साहस करना होगा। वह उतना बदसूरत क्यों न था जितना कि उसने सोचा था। जब जीजा होकर मुझ पर ही इतना रोब गांठ रहा है, तो कल पत्नी, लक्ष्मी पर कितनी धौंस चलाएगा ?

कहीं ऐसा न हो कि वह भी विवाह के उत्साह में, वैभव में रम जाए; उसने वह किया जो उसकी उम्र के बच्चे नहीं करते हैं। विवाह के पांचों दिन वह आवारागर्दी करता रहा, ऐसी जगह गया जहां रोशनी भी न जाती थी। किसी को न दिखाई दिया, खाना भी ठीक तरह न खाया, नए कपड़े भी नहीं पहने। परन्तु शिवं की खास देख-भाल करने वाला भी वहां न था।

सभी को दुलहन सजी-सजाई सुन्दर मालूम हो रही थी, पर शिवं की नज़र में न जाने वह क्या वनी हुई थी। उसकी ओर देख कर उसे अचरज हुआ—क्या यह मेरी वहिन ही है? उसकी तरफ देख भी न सका। विवाह के बाद एक महीने तक लक्ष्मी उसकी दृष्टि में साधारण स्त्री भी न थी?

विवाह के दिन से भाई-वहिन में कुछ नया सम्वन्ध-सा वन गया। दोनों आपस में अपना प्रेम वखूबी दिखाने लगे। इस विषय में शिवं में तो पूरा परिवर्तन आ गया। उसने लक्ष्मी से साफ-साफ भी कह दिया कि वह उसके विवाह की वावत सोच रहा था। लक्ष्मी उसको समझ तो न सकी, पर उसको बदलने की भी उसने कोशिश न की। जव-जव शिवं ने उससे उसके वारे में पूछा, तव-तव उसने कहा कि उसके लिए कोई भी वर हो, सव समान थे। इससे शिवं का गुस्सा और फिक्र तो कुछ जाता रहा, पर उसका असन्तोष अभी वना रहा। उसके मन में डर भी वना रहा कि किसी न किसी दिन लक्ष्मी जानेगी कि उसको अच्छा पति न मिला था।

शिवं को अपने जीजा का व्यवहार कतई पसन्द न था। उसके वारे में उसको कई गलतफहमियां थीं, और जव वह अपने विचार वदलने की, सुधारने की कोशिश कर रहा था, तव वह अपने जीजा को और भी अच्छा लगा। फिर न जाने क्यों उस खयाल के वदलने में, उसने वहुत द्वेष भी दिखाया। शिवं के खयाल, अपने जीजा के वारे में, हिंडोला-सा ले रहे थे।

—मैं अपने साले के साथ चाहे किधर भी जाऊं, मुसीवत है, कौन जाने कव वह किस तरह वदले। वड़े चंचल चित्त का है।—कनकय्या ने सोचा।

आवारे को जव एक चोट लगती है, तो उसका नशा कुछ उतरता है, जव मार पर मार पड़ती है, तो वह मामूली आदमी हो उठता है, अपनी जिम्मेदारियां समझने लगता है। लक्ष्मी का विवाह, उसको ऐसा लगा जैसे उसको चोट लगी हो। उसका घमंड आधा हो गया। पढ़ाई-लिखाई में भी वह ध्यान देने लगा। ईंट का जवाव पत्थर से देना भी उसने कम कर दिया।

लक्ष्मी की शादी पर ढाई हज़ार रुपये का कर्ज़ हुआ। जिन्होंने कहा कि खर्च अधिक हो गया था, उनसे शिवं के चाचा ने ज्यादा वकझक न की? पर उन्होंने कहा—अगर मेरी लड़की की ही शादी होती, तो पन्द्रह सौ रुपये से एक पाई अधिक खर्च न होता—जो समझ सकते हैं, वे जान सकते हैं कि परोपकार में क्या-क्या सुख हैं, और क्या-क्या कष्ट हैं?

पर यह अफवाह उड़ी कि चाचा महोदय ने उस शादी में कम-से-कम चार पांच सौ रुपये हथिया लिए थे। यद्यपि किसी ने उनसे यह न कहा। अगर कोई कहता भी तो वे वहुत सारगर्भित उत्तर देते।

जो हुआ सो हुआ। इस कर्ज़ को कैसे उतारा जाए, सिवाय अपनी पांच-दस

एकड़ ज़मीन बेचने के। पुराने ज़माने से, यानी पन्द्रह वर्ष से, जो ज़मीन चली आ रही थी, उसका सातवां या आठवां हिस्सा बेचना किसी को पसन्द न था। पर सब जानते थे कि बेचने के सिवा कोई रास्ता न था। पर इस विषय में भी शिवं के चाचा का दुनिया का तजुर्बा बहुत काम आया।

—वह कर्ज़ तो खुद चुक जाएगा, जब शिवं पढ़-लिख जाएगा, नौकरी करने लगेगा, अपने पैरों पर खड़ा हो जाएगा, तब ज़मीन की उपज छूने की ज़रूरत नहीं है, उसकी आय से कर्ज़ चुकाया जा सकेगा। इस बीच जो कुछ आएगा उसे बेच-बाच कर कर्ज़ चुकाया गया, तो हर मास क्या कर्ज़ लेकर खाओगे ? सोने की-सी ज़मीन क्यों खराब करते हो ? क्या यह शिवं फिर कभी इसे कमा पाएगा ?

—अगर मैं कमाऊं-धमाऊं नहीं, तो वह कर्ज़ चुकेगा ही नहीं ? अगर मैं कमाने लगूं, तो यह ज़मीन तब भी कमाई जा सकती है।—शिवं ने कहा।

उसका चाचा, शिवं की बात सुन कर, जिसकी उम्र उसकी उम्र से एक-तिहाई भी न थी, हैरान रह गया। वकील भी उससे इस तरह बात न कर पाता। वह बोल उठा—मेरा यह सन्देह ही है कि शिवं शायद बहुत कमा न पाए, पर मैं यह नहीं चाहता कि वह न कमाए, अगर दो एकड़ खो बैठे, तो वे कभी फिर न मिलेंगे ?

बच्चे भी उस अक्लमंदी की दाद दे सकते हैं, जिसमें कुछ मतलब-मायने हों। पर इस तरह की ऊलजलूल बातों का क्या जवाब देवे ? शिवं ने फिर मुंह न खोला।

शिवं के कुटुम्ब की सालाना आय करीब पांच सौ रुपये थी। लक्ष्मी की शादी पर जो कर्ज़ लिया गया था, उसका सूद ही तीन सौ रुपया था। अगर सारी आय भी कर्ज़ चुकाने के लिए दे दी जाती तो भी मूल में दो रुपये ही चुकते। और रोज़मर्रा के गुज़ारे के लिए कम-से-कम तीस रुपये तो हर महीने चाहिएं ही थे। यदि निश्चित दिन में रुपया न आता, तो आटे-दाल के लिए भी तरसना पड़ता। आखिर ऐसी नौबत आ गई कि जो कुछ ज़मीन से मिलता वह कर्ज़ चुकाने के लिए ही काफी रहता। वह परिवार जो मज़े में जी रहा था, अब इधर-उधर के उधार पर जीने लगा। शिवं के चाचा की बुद्धिमत्ता का यही परिणाम था।

बचत से जीने का मतलब, पैसे के लिए मुसीबतें झेलना ही है, यह सोच कर शिवं की मां इस व्यवस्था के लिए राज़ी हो गई थी। पर शिवं को यह बिलकुल पसन्द न था। वह जब कभी एक पैसे का भी कुछ खरीदना चाहता, या सिनेमा देखना चाहता, तो उसकी मां गुर्राती—देखो तुम घर का दिवाला निकाल रहे हो। चाचा कहता अब पहले की तरह काम नहीं चलेगा, ज़रा सम्भल कर रहो। —जैसे लक्ष्मी के विवाह से कोई सम्वत् शुरू हो गया हो।

अगर कभी शिवं कहता—ऐसा लगता है जो एक-दो पैसे मैं खर्चता हूं, उसी

से ये सारा कर्ज़ चुका देंगे—तो उसका चाचा कहता, उसे याद दिलाता—चार पैसे का एक आना, और सोलह आनों का एक रुपया—हां, वे वैसे खास बातूनी न थे।

सन् 1930 में, जब संसार की आर्थिक परिस्थिति उलटी-सी हो गई थी, तब शिवं को इण्टरमीडियेट से अपनी पढ़ाई खत्म करनी पड़ी। तब तक उनका कर्ज़ पांच हज़ार का हो गया था। हर चीज़ का दाम गिर गया था। भूमि का भी गिरा। जिन्होंने कर्ज़ दिया था, वे सब तकाज़ा कर रहे थे।

इस समय कनकय्या शिवं के लिए भगवान की तरह आया। कम-से-कम दुनिया ने तो यही कहा।

—तुम्हारा कर्ज़ मैं चुका देता हूं। कुछ व्यापार करने-धरने के लिए मैं पांच सौ रुपये दूंगा। तुम अपनी सारी ज़मीन मेरे नाम लिख दो।—कनकय्या ने अपने साले से कहा।

—किस दाम पर ?—शिवं ने पूछा।

—उसी दाम पर, जिस पर और लेंगे।—कनकय्या ने कहा।

—तो जीजा होकर मेरी मदद तुमने क्या की ?

—तुम ही क्यों नहीं तसल्ली कर लेते कि जो और खाएंगे मैं खाऊंगा। औरों से मुझे कम दाम पर ही दिया जा सकता है। मैं ही ऐसा कौन सा खराब हूं कि कुछ न खा पाऊंगा।

—मैं कब कहता हूं कि तुम खाने वाले नहीं हो, पर मैं खिला न पाऊंगा। हम दोनों के बन्धुत्व में मुझे ही लाभ पाने का कुछ अधिकार है, चाहो तो किसी से पूछ कर देख लो।—शिवं ने कहा। मामला बहस में उतर आया।

—ये दाम हमेशा तो यों रहेंगे नहीं। फिर कभी उठेंगे। अगर तुम मेरा उपकार करना चाहो तो एक काम करो, ये कर्ज़ वाले तो ठहरेंगे नहीं। तुम वह कर्ज़ चुका दो, मैं तुम्हें प्रोनोट लिख कर दूंगा। चाहो तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति गिरवीं रख दूंगा। जब दाम बढ़ेंगे, तब उसे तुम ले लेना, अगर मेरा कर्ज़ उसकी कीमत के बराबर रह गया हो।—शिवं ने कहा।

कनकय्या को यह पसन्द न था। वह तो साले की जायदाद हथियाना चाहता था। पर वह बात स्पष्ट कैसे कहता ? शिवं का सुझाव वह मान गया।

ठीक समय पर एक कर्ज़दार ने कहा—अरे भाई ज़मीन गिरवी न रखो। एक पैसा न मिलेगा। तुम्हारा जीजा दुनियादार है। तेरा सिर उसके हाथ में होगा। अगर पैसे की भी ज़रूरत हुई तो उसके पास जाना होगा, पा गए तो पा गए, नहीं तो नहीं। सम्भल कर काम करो।—उसने उसके कान में धीमे से यह सलाह दी।

कनकय्या ने शिवं का सारा कर्ज़ चुका दिया। उससे प्रोनोट लिखवा लिया। जब गिरवी लिखवाने के लिए स्टाम्प वाला दस्तावेज़ लाया, तो शिवं ने कहा—प्रोनोट काफी है, इन स्टाम्प वाले दस्तावेजों की क्या ज़रूरत है, फ़िज़ूल का खर्च।

आश्चर्य और गुस्से के कारण कनकय्या के मुख से वात न निकली। शिवं ने ज़िद पकड़ी कि वह ज़िमीन गिरवी नहीं रखेगा। कनकय्या ने कई तरह से ज़हर उगला। कहा कि इसीलिए कहा जाता है कि रिश्तेदारों में लेन-देन नहीं होना चाहिए। अगर आदमी का यक़ीन ही न किया जाए तो क्या फायदा ?—उसने कहा।

—गिरवी के लिए ही जव तुम इतना सव कुछ कर रहे हो, तो यह सावित करता है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है। क्यों तुम यह दिखा रहे हो कि मेरे गिरवी न लिखने के कारण तुम कुछ ताड़ गए हो ?—शिवं ने कहा।

कनकय्या ने कहा कि गिरवी लिखवानी ही होगी। उसने यह भी धमकी दी कि आगे-आगे शिवं को वहुत मुसीवतें झेलनी पड़ेंगी। पछताना पड़ेगा।

शिवं बौखला उठा। वह जानता था कि उसके पश्चाताप का लक्ष्मी से सम्वन्ध होगा। परन्तु इस बीच शिवं अपने मन की वातें वगैरह छुपाना जान गया था। उसने हँसते हुए कहा—खैर, और छः महीनें ठहर जाओ, और इन छः महीनों में दाम भी चढ़ेंगे। अव गिरवी वगैरह की ज़रूरत ही क्या है ? ज़मीन ही सारी रजिस्ट्री करके दे दूंगा।—उसने कनकय्या को समझाया।

—जैसा तुम चाहो करो, कहा तो उससे जाए, जो सुनता हो।—अपनी सम्मति यों देकर, कनकय्या चला गया। पिता की वरसी आ रही थी, इसलिए लक्ष्मी ही वहां रह गई।

उस दिन भाई-वहिन ने मन की वातें कहीं। मध्यवर्गीय परिवारों को आन्ध्र में मन की वातें कहने-सुनने के लिए भी मौका नहीं मिलता। शिवं जब लक्ष्मी से वात कर रहा था, तभी जानता था कि इस तरह का मौका फिर न आएगा। कल से फिर लक्ष्मी और शिवं मामूली भाई-वहिन हो जाते। पर आज की रात विशेष महत्व की थी। यह मौका फिर न मिलेगा। जव मौका मिला है तो उसका पूरा उपयोग करना ही अच्छा है।

उसने साफ-साफ कहा कि उसे वहिन से कितना प्रेम था। उसे दिखाने के लिए कैसे उसके पास पर्याप्त साहस व योग्यता न थी, मां के पालने-पोसने ने उसे कैसे खराव कर दिया था, उसने लक्ष्मी के लिए कैसे पति की आशा की थी, लक्ष्मी के विवाह ने उसको कैसा दुख दिया था, आज भी उसे याद कर वह कैसा हताश-सा हो जाता था।—उसने सब विस्तार से बताया।

—कुछ कहने-सुनने के लिए, अपना प्रेम दिखाने के लिए, यह सोचने के लिए कि मेरा भी कोई एक है, तुम्हारे सिवा मेरा है ही कौन ?—शिवं ने कहा।

लक्ष्मी ने अधिक कुछ न कहा। जहां तक उसका सम्वन्ध था, जितना भाग्य से उसे मिलेगा, उससे ही वह तसल्ली करने के लिए तैयार थी। उसने भाई को यह भी दिखाया कि अगर उसमें असन्तोष, दुख थां, तो शिवं के लिए ही।

—मेरा क्या है, मैं तो कहीं का भी नहीं। मैं शुरू से ही अभागा हूं। अगर गुजरा ज़माना याद करूं, तो कोई भी तो ऐसी घटना नहीं है, जिसे याद करके खुश होऊं। मैंने अगर सोना भी छुआ, तो वह मिट्टी हो गया। जब कभी कुछ करना चाहा, तो भाग्य ने लताड़ा। अगर कहीं खेलने भी गया, तो वहां झगड़ा पैदा करके आया। मेरी ज़िन्दगी ही कुछ ऐसी है।

—मगर तुम क्यों ऐसी हो? दुनिया में कितने ही काबिल, लायक, पढ़े-लिखे लोग हैं, तुम उनमें से किसी की भी पत्नी हो सकती थीं। उस गांव में तुम्हें क्यों जाना पड़ा? क्या तुम्हारी ज़िन्दगी बस यही है, सवेरे उठो, रसोई करो, यह चाकरी करो, वह चाकरी करो। एक पुस्तक नहीं, संगीत नहीं, सर्कस नहीं, नाटक नहीं, कुछ भी तो नहीं है। पन्द्रह रुपये पाने वाला, प्लीडर का गुमाश्ता तुमसे अच्छा है। कम-से-कम वह शहर का आनन्द, सुविधाओं का तो मज़ा ले सकता है।—शिवं ने कहा।

लक्ष्मी ने कुछ न कहा।

—कभी तेरे पति को भी मज़ा चखाऊंगा।—शिवं ने कुछ देर सोच कर कहा।

—क्या है वह?—लक्ष्मी ने कहा।

शिवं ने इसका सीधा सा जवाब न दिया।—कुछ नहीं, मुझे डर है कि मुझ पर जो उसका गुस्सा है, वह तुम पर न उतारे।

लक्ष्मी लाल-पीली हुई।—वह मुझ पर क्या गुस्सा दिखाएंगे।—शिवं यकायक पुलकित हो उठा। उसे उस समय ऐसा लगा, जैसे लक्ष्मी का खून उसकी धमनियों में संचरित हो रहा हो।

बिना जीजा को बताए, शिवं ने चुपचाप सारी ज़मीन बेच दी। बिक्री के छः महीने बाद खरीदार ने ज़मीन अपने अधीन कर ली। शिवं ने रुपये का क्या किया, किसी को न मालूम था। पर अफवाह उड़ी कि इस गोलमाल में उसको चाचा की पूरी मदद मिली थी। इतना ज़रूर हुआ कि उन दोनों में कुछ ऐसी मैत्री हुई, जो पहले कभी न देखी गई थी।

यह सुनते ही लक्ष्मी, कनकय्या भागे-भागे आए।

—अरे धूर्त ने क्या किया? अभी उसके पास घर है न? उसे अदालत में खींचिए और उसे नीलाम कराइए। रुपये में क्या चवन्नी भी न मिलेगी?—लक्ष्मी ने कहा। अनायास वह उसी आवाज़ में बोल रही थी, जिसमें वह बचपन में बोला करती थी।

कनकय्या उसकी यह बात सुन कर गदगद हो उठा। उसकी आवाज़ उसके बाद कई दिनों तक उसके कानों में गूंजती रही।

—यह काम तुमने क्यों किया, क्या तुमने सोचा था कि मैं मर गई थी?

क्या फिर मैं तेरा मुंह देखूं ? इतना सब करके क्या फिर कभी मेरे घर आ सकोगे ? उस महानुभाव के पैरों जो पड़ते कि तुम दे न सकोगे ? वे कभी के उन्हें तेरे सिर पर फेंक देते ? पांच हज़ार रुपयों के लिए तूने यों धोखा दिया, वैसे पांच हज़ार रुपयों की उनके लिए क्या कीमत है ?

ये खयाल पूरी तरह कनकय्या के ही हों, ऐसी बात तो न थी—बड़ी बातें थीं, पर वह पत्नी को धुआंधार यों बोलता देख, चुप खड़ा रहा। उसे पांच हज़ार रुपये की भला फिक्र क्यों न थी, पर लक्ष्मी की बात सुन उसे बड़ी खुशी हुई।

चुपचाप बहिन की बातें शिवं सुन रहा था। उसे भी वे बातें भाई थीं। यह विचार कनकय्या न जानता था।

सप्ताह बाद वे देखते हैं कि शिवं ने जो प्रोनोट लिखा था, वह गायब था। बहुत खोजा पर वह दिखाई न दिया। अदृश्य हो गया था।

दस साल तक लक्ष्मी और शिवं ने एक-दूसरे को न देखा। जब वह मृत्यु शय्या पर थी, तो उसने, पति को बुला कर कहा—एक बार मेरे भाई को तो बुलवाइए।

—उसे ?—कनकय्या ने आश्चर्य से पूछा।

—बुलवाइए भी, अब मैं न जिऊंगी।—उसने उसे मनाया।

कनकय्या मान गया कि वह बुलाएगा। जिस पत्नी ने उसे दस साल तक धोखा दिया था, अगर उसने एक बार धोखा दिया, तो भगवान की नज़र में वह खास न गिरता था।

अभी जान जाने में पांच मिनट थे, तो लक्ष्मी ने उठ कर पूछा—क्या शिवं आ गया है ?—उसे बताया गया कि वह नहीं आया था।

—नहीं आएगा, वह नहीं आएगा, मैंने ही उससे कहा था कि वह न आए।—कहकर लक्ष्मी ने आंखें सदा के लिए बन्द कर लीं। एक प्रकार की बेहोशी में उसने अपना शरीर छोड़ दिया।

रोशना

कुलवन्त सिंह विर्क

सामने कुछ ऊंचाई पर लारी का पुल है, पुल के आगे खुमानियों और आलूचों के मिले-जुले पेड़ हैं। उससे आगे ढलान है। ढलान से आगे कीकर के पेड़ों का सिलसिला शुरू है, जो कि बहुत दूर तक चला गया है। उससे आगे एक छोटा-सा रास्ता है। कुछ आगे बढ़ने पर यह रास्ता और भी छोटा हो गया है। उसके बाद एक छोटी-सी पहाड़ी है। पहाड़ी से निकल कर यह रास्ता फिर चौड़ा हो गया है। कुछ और आगे बढ़ आइए। यहां सफेद धरती पर पानी से भीगे पांव के छोटे-छोटे निशान हैं, जो कि शुरू में गहरे हैं, आगे चल कर मद्धिम हो गए हैं, फिर मिट गए हैं।

उसके बाद एक छोटी नदी है, जो गर्मी के मौसम में सूख गई है। नदी के किनारों पर सफेद और काले पत्थर बिखरे पड़े हैं। किनारों से होकर दूर-दूर तक रेत फैल गई है। यहां का पानी बहुत ठंडा होता है, लेकिन गहरा नहीं। एक से डेढ़ फुट तक इसकी गहराई का अनुमान है। कुछ दूर हट कर गांव की अल्हड़ लड़कियां किनारे पर पानी भर रही हैं। एक अनजान हँसी उनके ओंठों से फूट जाती है, और यह हँसी लहरों के फैलाव की तरह वातावरण में फैल जाती है और लहरों के बहाव की तरह आगे बढ़ जाती है।

नदी को पार कर आगे आते ही ज़मीन ऊपर की ओर उभर आई है और टीले की तरह वह ऊंची होती गई है। उस पर चढ़ने के लिए कुछ देर लगती है। इसको पार कर आगे आते ही एक विस्तृत मैदान फैल गया है और आगे बेर की छोटी-छोटी झाड़ियां हैं और फिर शीशम के पेड़ों का एक झुंड मिलता है।

इन पेड़ों के दरम्यान चारों ओर छाया है। वातावरण शान्त है—हवा ठंडी है, कोई अनजान जंगली खुशबू उसमें भरी पड़ी है।

अब तक के इस लम्बे रास्ते को पार कर, रास्ते में कई जगह पड़ाव डालते हुए एक काफिला, इन राहों से गुज़रता हुआ, सामने शीशम की छाया में उतर आया है ?

जिस रास्ते से यह काफिला आया है, वहां अब भी हवा में हल्की-सी धूल छाई हुई है। अभी वह पूरी तरह से मिटी नहीं। जहां-तहां नर्म मिट्टी पर छोटे

बच्चों के पांवों के निशान हैं, ईरान की प्रेमिकाओं के पांवों के निशान, आदमियों के पांवों के लम्बे-टेढ़े निशान और इन निशानों में मिले हुए घोड़ों के पांव के निशान।

यह एक ईरानी काफिला है।

आते ही ये लोग तम्बू लगाने में मशगूल हो गए हैं। लड़कियां बर्तन लेकर नज़दीक की नदी पर पानी लेने चली गईं। घोड़ों को एक किनारे हरी घास के नज़दीक बांध दिया गया। बच्चे खेल में लग गए, और औरतें सामान सजाने में।

झोंपड़े खड़े हो गए। लड़कियां पानी लेकर लौट आईं। बूढ़ी औरतें आटा गूंधने में लग गईं, बुजुर्ग हरी-हरी घास पर लेट कर सर को हाथ का सहारा दिए बातें करने लग गए। बच्चे खेल छोड़ कर अपनी-अपनी मां के नज़दीक बैठ कर रोटी के लिए रोने लगे।

शाम हुई। चारों ओर अंधेरा छा गया। एक अजीब निस्तब्धता सी छा गई। कुछ देर के बाद चाँद निकल आया। अब तक रोटी तैयार थी। हरेक आदमी अपनी-अपनी झोंपड़ी में आ गया। रोटी परोसी गई—फिर खाई गई। परोसने वाली लड़कियों ने भी खाया। चाँद अब और ऊपर उठ आया था। सफर तय करने वालों की आंखें मुंदने लगीं और वे चांद की छाया तले आराम के लिए लेट गए।

लड़कियां भी सो गईं। जब वे पूरी तरह नींद में मदहोश हो गईं, तो उनके दूध की तरह सफेद और उस दूध में धुले सेब की-सी लाली से सुर्ख चेहरों के साथ-साथ उनकी उभरी हुई छातियों को चाँद देखता रहा।

अबके चांद बड़ी तेज़ी से आ रहा था। धीरे-धीरे वह दूर हट रहा था। फिर कुछ देर गए, जाने क्या सोच कर वह नीचे झुक आया—और पेड़ों की ओट में होते-होते नीचे उतरता गया। शायद इसलिए कि आज पहली बार उसने धरती पर पलने वाली इस अजीबोगरीब खूबसूरती को देखा था और उसे अपने आप पर अफ-सोस था कि इतने दिन गए वह इस लोक से अपने आपको क्योंकर दूर रखता रहा। और आज वह इस धरती पर उतर रहा था, लेकिन चुपके-चुपके।

य ईरानी हैं।

ईरान के रहनेवाले! ये चीज़ें नीलाम करते हैं। बोली बोलते हैं। यही इनकी रोज़ी का ज़रिया है। यह काम मर्द नहीं करते। अमूमन वे लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल रहे हैं। उनकी ज़बान में वह लज़्ज़त नहीं कि वे अपने इर्द-गिर्द अच्छी खासी भीड़ लगा सकें। इसलिए उन्हें चश्मे बेचने का काम मिला है। वे चश्मे बेचते हैं, चश्मे ठीक करते हैं। धूप के चश्मे।

और औरतें बोली बोलती हैं। बोली में वे बैटरी, कैंची, चाकू या पेन पेश करती हैं। यह बैटरी हल्के दाम की होती है, यह कैंची मामूली लोहे की होती है, ये चाकू कामचलाऊ होते हैं, यं पेन प्लास्टिक के होते हैं।

देखने वाले आते हैं। इन बैटरियों और अन्य छोटी-छोटी चीज़ों से नज़र हटा कर खड़े रहते हैं।

वे खड़े रहते हैं। किस लिए? क्यों?

ईरान की सुन्दरता को वे अपनी आंखों से भांपते हैं, तोलते हैं। उन्हें मेहर की सुन्दरता, मेहर की कोमलता के सारे चिह्न ईरान की इन प्रेमिकाओं में मिलने लगते हैं। तब बैटरी, बैटरी नहीं रह जाती; चाकू, चाकू नहीं रह जाता; पेन केवल पेन नज़र नहीं आता। बैटरी में एक साथ पूनम के कई चाँद आकर चमकने लगते हैं, चाकू की कमानी में प्यार की लचक उमड़ आती है—और पेन के मुंह से निकलती हुई कविता और प्यार के तराने स्पष्ट नज़र आने लगते हैं।

रोशनलाल मेरा एक दोस्त है।

वह पहले पढ़ता था। बाद में उसने पढ़ना छोड़ दिया। अब इस इलाके में उसने खुमानियां और आलूचों का ठका ले रखा था। शाम को नौकरों से खुमानियां और आलूचे तुड़वा कर वह सुबह ही शहर की ओर चला जाता है। यह ईरानी काफिला उसके रास्ते में पड़ता है। यहां से होकर वह गुज़रता है और शाम को हल्की-हल्की गर्द उड़ाता, जूते घसीटता, वह लौट आता है।

कुछ देर तक इस ईरानी बस्ती के नज़दीक ठहरता है, फिर अपने बगीचे की ओर वापस आता है।

पिछले सात दिनों से मैं भी उसके साथ हूं।

इन ईरानियों के झोंपड़ों के नज़दीक से गुज़रने का मुझे कई बार मौका मिला है।

करीब छः-छः हाथ की दूरी पर हरेक परिवार का अलग-अलग टैण्ट लगा हुआ है। एक टैण्ट सबसे अलग है, सबसे दूर, सबसे परे। इस टैण्ट में एक लम्बा पतला आदमी है, एक जवान लड़की है, दो छोटे बच्चे हैं, और कुछ सामान है।

सुबह होते ही दूसरे लोग घोड़ों पर शहर की ओर चले जाते हैं। बच्चे लकड़ियों के लिए किसी घाटी की ओर बढ़ जाते हैं और इस टैण्ट का वह आदमी लेटा रहता है।

उसकी जवान लड़की उसके खाने-पीने का प्रबन्ध कर जाती है और तब वह छोटे-छोटे दो बच्चों के साथ या कभी अकेली ही शहर की ओर चली जाती है। और यह आदमी लेटा रहता है, जहां-तहां थूकता रहता है। कभी उठ कर थोड़ा बहुत घूमने लगता है या किसी पेड़ की छाया तले आ बैठता है। लेकिन यहां भी वह थूकता रहता है। न जाने कैसी आदत है यह।

सूर्य ढलते-ढलते लड़की घर आ जाती है। किसी पेड़ के नीचे बैठ कर वह बेटी का इन्तज़ार किया करता है।

दूर से ही जब वह बेटी को छोटे-छोटे कदम भरते देखता है, तो उसके मुर्झाए मुंह पर हल्की-सी मुस्कान छा जाती है। बेटी की चाल में तेज़ी आ जाती है और

वह लपक कर बाप के सीने से लग जाती है। फिर रुपयों का रूमाल बाप की ओर बढ़ा देती है। बाप इन चांदी के टुकड़ों को देख कर बेटी के गोरे-गोरे हाथों को चूम लेता है, बेटी की ओर प्यार भरी नज़रों से देखने लगता है, मुस्कराने लगता है। फिर वह बेटी की ओर देख कर कहता है—रोशना, सामने मिट्टी की तश्तरी में खुमानियों का नाश्ता कर ले।—और रोशना शायद इस बात पर ध्यान नहीं देती, क्योंकि ये खुमानियां तो बूढ़े बाप के लिए खरीदी जाती हैं।

रोशना एक खूबसूरत लड़की है। दूसरी ईरानी लड़कियों की तरह वह भी पतली छींट की चोली पहनती है। कमर में उसकी घांघरा होता है, जो चारों ओर गोल चक्कर बनाता हुआ बैलून की तरह फैला रहता है। सर पर वह तह किया हुआ रंगीन रेशमी रूमाल बांधती है—यह रूमाल उसकी मासूमियत को और भी बढ़ा देता है। उभरी हुई छातियों को ढंकने के लिए वह किसी भी तरह के आंचल का सहारा नहीं लेती। छाती के आखिरी बिन्दुओं पर उस ईरानी लड़की की खूबसूरती आकर सिमट गई है।

नज़दीक की नदी से वह रात के खाने के लिए पानी लेने जाती है। रोशनलाल कहीं अलग-अलग घूम रहा होता है, क्योंकि सामने ही उसका बगीचा पड़ता है, वह नदी के किनारे आ जाता है। पानी में हाथ डालकर पानी के ठंडेपन को अनुभव करने लगता है। फिर रोशना के निकट आकर बहते हुए अनजान पानी को उछालने लगता हैं। पानी उछलता है और हल्की-हल्की बूंदें रोशना के चेहरे पर पड़ जाती है। रोशनलाल को लगता है जैसे हवा में केवड़े के फूल महक रहे हैं, पानी में केवड़े का इत्र घुलाया है इसी तरह।

शर्म और प्यार की मिली-जुली हँसी में रोशना ने उसे कई बार धमकियां दी हैं कि वह अपने बाप से कह देगी। रोशनलाल जैसे रोमाण्टिक आदमी के मुंह पर हल्की-सी सुर्खी छा जाती है; रोशना पानी का घड़ा भर कर नीची नज़रें किए हुए एक बार मुस्करा कर आगे बढ़ जाती है; रोशनलाल को एक बार फिर केवड़े के फूलों की महक आने लगती है और पानी में दूर-दूर तक केवड़े का इत्र फैल जाता है।

रोशना अक्सर रोशन के बगीचे में खुमानियों के लिए आती है। पहले-पहल जब वह इस बगीचे में आई थी, तो उसने उससे झिझकते हुए कहा था :

—खुमानियां बेचोगे ?

—बेचूंगा।

—तो फिर तुड़वा दो।

—क्या करोगी ?—रोशन ने जैसे बचकाना ढंग से पूछा।

—बाप के लिए चाहिएं।

फिर वह अभी-अभी तोड़ी गई खुमानियों की टोकरी ले आया। रोशना ने अपने सर से रूमाल खोल लिया, उसे धरती पर बिछा दिया और फिर वह दोनों हाथों से उस

रूमाल में खुमानियां डालने लगा। वह डालता रहा—रोशना ने कुछ सोच कर कहा—इतनी खुमानियां नहीं चाहिएं। सिर्फ दो आने की दे दो।—जैसे दो आने से अधिक की खुमानियां वह खरीदना न चाहती हो।

वह उसकी बात अनसुनी कर खुमानियां निकाल कर उन्हें रूमाल में गिराता रहा। रूमाल भर गया। रोशना रूमाल को समेट कर उठ खड़ी हुई। शर्माते हुए उसने इतनी खुमानियों के लिए अपना नंगा और सफेद हाथ आगे की ओर बढ़ा दिया, जिसमें दो आने थे। उसके चेहरे पर शिकायत के चिह्न थे। यानी उसने तो दो आने की खुमानियां मांगी थीं, फिर उसने क्यों इतनी खुमानियों से रूमाल भर दिया। वह तो सिर्फ दो आने ही दे सकेगी, इससे अधिक नहीं।

रोशना के बढ़े हुए हाथ की ओर देखकर रोशन जैसे कहना चाहता हो—पगली प्यार में ऐसा नहीं करते।—लेकिन उसके लबों पर ये शब्द आते-आते रुक गए? वह केवल मुस्करा भर सका। और रोशना वापस लौट आई।

वह अब भी रोज़ शहर जाती है।

मालूम नहीं धीरे-धीरे ऐसा क्यों महसूस होने लगा है, जैसे उसके मुंह की रौनक क्षीण पड़ती जा रही है। पहले का सा अल्हड़पन भी गायब होता जा रहा है।

बूढ़ा अब भी घर पर ही रहता है। अकेला बिल्कुल, अकेला। पहले के मुकाबले में आंखें कुछ और बुझ गई हैं। और वह थूकता रहता है, जहां कहीं भी टैण्ट के बगल में, टैण्ट के बाहर। मालूम नहीं कैसी आदत है यह।

कल रोशना आई थी, बगीचे में। हमेशा की तरह उसने अपना रूमाल आज धरती पर नहीं बिछाया। यह भी जाहिर नहीं किया कि उसे खुमानियां चाहिए। वह खड़ी रही, उदास, मौन। फिर आगे बढ़ कर धीरे से उसने रोशन से कहा—

—कुछ पैसे चाहिएं।

—किस लिए।

—बाप के लिए।

यह सब सुनने के बाद रोशनलाल जैसे यह कहना चाहता था कि तुम तो खुद कमाती हो। लेकिन ऐसा उसने नहीं कहा; उसके इस भाव को समझ कर रोशना ने खुद ही कहा—कल जो पैसे कमाए थे, वे कल ही खत्म हो गए।

रोशनलाल जैसे रोमांटिक आदमी इन छोटी-मोटी बातों की चिन्ता नहीं करते।

उसने पांच रुपये का नोट निकाल कर रोशना की मुट्ठी में दे दिया। उसकी नज़र उसके सर पर बंधे रूमाल पर जा कर रुक गई, जो रोज़ की तरह आज खोल कर धरती पर नहीं बिछाया गया था।

रुपये लेकर उसने यही कहा—मैं जल्दी ही तुम्हारे ये रुपये चुका दूंगी।

रोशन ने कुछ इस ढंग से मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा, जैसे आज फिर वह यह कहना चाहता हो—पगली, प्यार में ऐसा नहीं करते।

रोशना के ओंठों पर मुस्कुराहट की सिर्फ एक हल्की-सी लहर खिच गई और तब वह लौट आई। ऊबड़-खाबड़ रास्ते को पार कर अपने टैण्ट में आ गई।

उसका बाप टैण्ट में लेटा हुआ था। दो ईरानी बुज़ुर्ग उसके नज़दीक बैठे हुए थे। चुपके से उनके हाथ में रोशना ने पांच रुपये का नोट थमा दिया और फिर वह बाप के विस्तर के नज़दीक जा बैठी। सभी चुप थे।

कुछ देर बाद एक घोड़ा शहर जाने के लिए तैयार किया गया। फिर दो आदमी उस बूढ़े को सहारा दिए घोड़े के नज़दीक आ गए। घोड़े पर चढ़ने से पहले उस बूढ़े ने एक बार थूका, चढ़ जाने के बाद फिर उसने थूका। न जाने कैसी आदत है यह।

जाने से पहले उसने एक बार अपने टैण्ट की ओर देखा। बेटी रोशना की ओर दृष्टि दौड़ाई। टैण्ट के एक किनारे की रस्सी पकड़े रोशना खड़ी थी। डबडबाई आंखों के साथ, चुप, शान्त। सूखे ओंठ हिल रहे थे, ज़िन्दगी खिसक रही थी। आगे बढ़ने से पहले बेटी की ओर देख कर एक बार वह मुस्कुराया—फीकी मुस्कुराहट। वह मुस्कुराहट जिसमें जीवन नहीं होता। बाप के कुछ दूर बढ़ते ही रोशना की आंखों से आंसू की दो बूंदें गिरीं। पलकों से उतर कर दो लम्बी लकीरें बनाती वे कपोलों पर फैल गईं और तब घोड़ा टीले पर आकर धीरे-धीरे नीचे उतर गया। सब कुछ आंखों से ओझल हो गया।

रोशना का चेहरा अब बुझता जा रहा है। पहले की तरह अब भी वह शहर जाती है। बोली बोलती है, पैसों के लिए। लेकिन उससे कोई भी काम अच्छी तरह से निभ नहीं पाता। इसीलिए कि अब किसी काम में उसका मन ही नहीं लगता।

अब भी वह बोली बोलती है। लोग आते हैं, रुकते हैं और चले जाते हैं। उसमें अब वह कोई भी खूबी नहीं रही, जिससे पहले वह लोगों को मुस्कराते हुए अपनी ओर आकर्षित करती थी। यही वजह है कि वह अपना झोला लेकर किसी पेड़ की छाया में आकर बैठ जाती है। फिर जब उसे बाप का खयाल आता है, तो उसे रुपयों की ज़रूरत महसूस होने लगती है, रुपयों की याद आने लगती है। फिर वह अजीब परेशानी के साथ वहां से उठती है, बोली बोलने के लिए अपने को तैयार करती है। लेकिन वह ऐसा करने में अपने आपको असमर्थ पाती है और शाम को इन वादियों की रौनक से नज़र बचाती हुई वापस लौट आती है। टैण्ट में अब उसके इन्तज़ार में कोई भी नहीं होता। इन्तज़ार करने वाले की यादें टैण्ट के चारों ओर बिखरी पड़ी हैं—लेकिन वह खुद नहीं होता। ज़िन्दगी अकेली है। आशाहीन। बेसहारा। और इसी खयाल से दब कर रोशना एक बार सिसक उठती है।

खुमानियों के लिए वह बगीचे की ओर नहीं जाती। रोशन उससे नहीं मिलता। एक दिन वह इस इलाके से होकर गुज़रा था। सब कुछ ठीक था, सब कुछ अपनी जगह पर था। पर सामने के अलग टैण्ट में वह बूढ़ा नहीं था, जो जहां-तहां थूकता चलता था।

रोशना अकेली थी, बिल्कुल अकेली। टैण्ट में जलती हुई मोमबत्ती के नज़दीक वह बैठी हुई थी। मोमबत्ती जल रही थी और वह बैठी हुई थी। मोमबत्ती बुझ रही थी और वह बैठी हुई थी। बुझे हुए चेहरे पर बुझी हुई आशा सी।

एक दिन रोशनलाल ने एक छोटे लड़के के हाथ, रूमाल में रोशना के लिए खुमानियां भेजीं। उसने इन पीली-पीली खुमानियों का बड़े प्यार से स्पर्श किया। उन्हें बड़े प्यार से देखती रही। फिर उसने रूमाल की इन खुमानियों को उस लड़के की निकर की जेबों में, उसकी कमीज़ की जेबों में और उसके हाथों में थमा दिया। और उसने इतना ही कहा—जाओ यह तुम्हारी खुमानियां हो गईं। इन्हें खा लो।—फिर उसने उस लड़के के हाथ के रूमाल को लेकर उसे ज़मीन पर बिछाया। कुछ सोच कर बड़ी मासूमियत से उसने अपने सर का रूमाल खोला और उसे बिछे हुए रूमाल में रख दिया। रूमाल को बांध करके उसने जाते हुए लड़के से कहा—खुमानियां वाले को कह देना इससे अधिक मेरे पास कुछ नहीं। सब कुछ खर्च हो गया।

कुछ दिन और गुज़र गए। रोशना अकेली दिन काट रही है। अकेली रह रही है? उसे रिश्तेदारों ने काफी सान्त्वना दी है। यही वजह है कि अब उसे काले-काले बादलों से निकलती हुई हल्की-सी आशा की लहर नज़र आने लगी है, वातावरण में फिर से मद्धिम-सी सुगंध उठनी शुरू हो गई है, केवड़े के फूल की एक बार फिर सुगन्ध आने लगी है, पर बड़ी मद्धिम।

अब वह बाज़ार जाती है। दुगुने साहस से बोली बोलती है। शाम तक बहुत से पैसे हो जाते हैं। और इन पैसों को वह अपने एक रिश्तेदार बूढ़े को दे आती है, जो इन्हें उसके बाप के लिए खर्च करता है। वह कभी-कभी खुद भूखी भी रह जाती है, कुछ भी नहीं खाती, लेकिन बाप के लिए हर रोज़ वह अपने रिश्तेदार को सब कुछ दे आती है। और वह इन रुपयों को बूढ़े की बीमारी में खर्च करता है।

कुछ दिन और गुज़र गए।

रिश्तेदारों के उदास चेहरों से आज एक बार फिर वह उदास हो गई है। फिर वह निराश-सी हो गई है। उसे कुछ भी नहीं बताया जाता। वह कुछ भी नहीं जानती। वह इतना ज़रूर जानती है कि उसके दो रिश्तेदार पिछले दो दिनों से उसके बाप की देख-रेख में शहर के अस्पताल में हैं। वह क्यों नहीं लौट रहे, क्या बात है? फिर काफिले का हरेक आदमी क्योंकर दुखी है—उसके प्रति हरेक आदमी क्यों सहानुभूति दिखा रहा है?

रोशन घूमते-घूमते आज फिर इन ईरानी टैण्टों की ओर आ गया है। चांद की चांदनी चारों ओर छाई हुई है। टैण्टों पर, वृक्षों पर, धरती पर, हरेक जगह चांदनी है। लेकिन इन झोंपड़ों के नज़दीक चारों ओर निस्तब्धता है। चांद की चांदनी में भी यहां अंधेरा है। हरेक आदमी चुप है। सबसे हट कर एक किनारे

की झोंपड़ी में मोमवत्ती जल रही है। सामान जहां-तहां विखरा पड़ा है। चूल्हे में अव तक आग नहीं जली। हरेक चीज़ उदास है।

रोशना मोमवत्ती के नज़दीक वैठी हुई है। ज़रूरत से ज़्यादा वह झुक आई है। हाथ जुड़े हुए हैं। ओंठ हिल रहे हैं। आंखें मुंदी हुई हैं और मोमवत्ती जल रही है। सामने एक किनारे लुंगी टंगी हुई है, एक टोपी पड़ी हुई है, एक कमीज़ लटक रही है, एक विस्तर तह किया हुआ पड़ा है। ये सव वूढ़े की याद हैं। रोशना के वाप की यादें, जो वहुत दिनों से नज़र नहीं आ रहा। जो जहां-तहां थूक देता था, झोंपड़े के नज़दीक, झोंपड़े से हट कर या सड़क पर। उसे थूकने की आदत थी—और उसके थूक में हमेशा लाल रंग की हल्की-सी लकीर होती थी।

रोशन वहां से हट गया। ज़मीन से एक सफेद पत्थर उठा कर ज़ोर से उसने उसे सामने के वृक्षों की ओर फेंका और फिर वह वापस लौट आया।

कुछ दिन और गुज़र गए।

दो ईरानी वुज़ुर्ग इस इलाके के ऊवड़-खावड़ रास्ते को पार कर आ रहे हैं। उनकी चाल में ढीलापन है। चला नहीं जाता। फिर भी वे चल रहे हैं, किसी तरह इन झोंपड़ों के नज़दीक पहुंचने के लिए। रोशना नदी से पानी भर कर ला रही है। उसकी कमर पर घड़ा है, पानी से भरा घड़ा। पानी की छलकन से कमर भीग गई है। इसकी उसे कोई परवाह नहीं। दाएं हाथ से वह एक वार विखरी हुई ज़ुल्फों को पीछे हटाती है। रिश्तेदारों को दूर से आते देख कर वह जल्दी से झोंपड़े में घड़ा रख कर उस ओर लपकती है, जिधर से रिश्तेदार आ रहे हैं। उसके पांवों में तेज़ी आ जाती है। दिल में धड़कन शुरू हो गई है। शरीर में कम्पन पैदा होने लगा है। और वह दिल पर पत्थर रख कर उस ओर वढ़ जाती है।

ईरानी वुज़ुर्गों के मुंह झुलस गए हैं। उनकी नजरें झुकी हुई हैं। रोशना एक वार आगे वढ़ कर पूछ लेती है—क्यों चाचा?

ईरानी चेहरे और झुक जाते हैं।

—क्यों चाचा?—रोशना की आवाज़ एक वार फिर गूंजती है, फिर पूछती है और यह पहली आवाज़ से वहुत तेज़ हो गई है।

ईरानी वुज़ुर्ग रोशना के कंधों पर हाथ रख देते हैं।

—क्यों चाचा?—एक वार फिर यह आवाज़ गूंजती है और दूर वादियों तक इसकी गूंज फैल जाती है।

ईरानी वुज़ुर्गों के ओंठ हिलने लगते हैं और इस वार आंखों से आंसू की दो मोटी वूंदें गिर कर मिट्टी में मिल जाती हैं। अव के वे रोशना को और भी मज़वूत हाथों से पकड़ लेते हैं।

वह चुप हो जाती है। उसका मुंह पीला पड़ जाता है। उसकी उमंगें शान्त हो जाती हैं, और वह चुप हो जाती है।

कुछ देर वाद उसका मौन टूट जाता है और वह फूट-फूट कर रोने लगती है। ज्यादा देर तक वह अपने आप को सम्भाल नहीं पाती।—चाचा?—कह कर वह बूढ़े के पांव पर गिर जाती है। और रोने लगती है।

ईरान की प्रमिका आज धूल में मिल चली है। धूल पर उसके आंसू गिर रहे हैं, और धूल में मिल रहे हैं।

न जाने दुनिया में कितने मेले आएंगे, कितनी वहारे आएंगी, लेकिन अव से रोशना हरेक मेले में, हरेक वहार में, अकेली होगी। निराश—वेसहारा।

ईरानी काफिले में अव वह हिम्मत नहीं रही कि वह आगे वढ़ सके। सामने का रास्ता धुंधला-सा हो गया है। काफिला अव काफी थक गया है और उसकी कमर टूट गई है। काफिला अव लौट रहा है।

इन वीरान वादियों से होकर ईरानी काफिला लौट रहा है। इस काफिले में सव कुछ वही है, सव कुछ पुराना है। लेकिन जिस तरह खुशी से यह काफिला आया था, उसी उमंग में वह लौट नहीं रहा। इस इलाके में हमेशा के लिए अपना एक आदमी खोकर वह ऊवड़-खावड़ रास्ते के विखरे पत्थरों से उलझ कर चल रहा है। ठोकरें लगती हैं, चोटें लगती हैं, लेकिन कुछ भी महसूस नहीं होता। रोशना जा रही है।

कदम उठ रहे हैं और वह आगे वढ़ रही है। उसकी चाल में वेचैनी है, चेहरा झुलस चुका है, जवानी ज़िन्दगी की उलझनों के भार तले दव चली है।

रोशना वहुत दूर चली गई है। सव कुछ पीछे छूट गया है। वाल हवा की तेज़ी से उलझ गए हैं। आज उन पर कोई भी रूमाल नहीं।

जुल्फें विखर गई हैं। और वह एक दूसरी लड़की के कन्धों के सहारे आगे वढ़ रही है।

वादी का आखिरी मोड़ मुड़ते वह एक वार रुकती है। वड़े गौर से इन अन-जान राहों की ओर मुड़ कर देखती है। रोशनलाल दूर-परे खुमानियों के पेड़ के नीचे खड़ा है। वह रोशना की ओर देख रहा है। वह भी चुप है, शान्त। उसे रोशना के चले जाने का हद से ज्यादा अफसोस है।

उसके हाथ में रूमाल है, ईरान की प्रेमिका का रूमाल। हवा की तेज़ी से यह रूमाल लहरा रहा है। उसका मन करता है जैसे वह रोशना को एक वार बुला ले। आखिरी वक्त उससे दो-चार वातें कर ले। लेकिन ऐसा वह नहीं कर पाता, मजवूर है।

खुमानियों के पेड़ के नीचे खड़ा जैसे आज वह रूमाल हिला-हिला कर रोशना को वड़ी वेचैनी से विदा कर रहा है। और रोशना जैसे उसके लहराते हुए रूमाल को एक वार देख कर उससे विदाई लेकर आगे वढ़ जाती है।

महाजन

विमल मित्र

सिविल सर्जन साहब ने कहा—मैं तो एक बंगाली की ही कहानी कहूंगा।

रायबहादुर बोले—पहले यह तो बताइए वह रहने वाला किस जिले का था।

सिविल सर्जन बोले—जिले का नाम तो नहीं मालूम; हां, नाम था उसका निवारण भट्टाचार्य। शायद पहले किसी कोर्ट में मुहर्रिर था। जब की बात मैं कह रहा हूं, तब उसकी उम्र सत्तर के करीब रही होगी। सारा शरीर झुर्रियों से भर चुका था। एक ही ट्रेन में हम लोग हावड़ा से बिलासपुर जा रहे थे। मेरी पोस्टिंग उन दिनों बिलासपुर में हुई थी।

रायबहादुर ने पूछा—फिर ?

डिप्टी साहब ने भी हांक लगाई—फिर ?

बात उस वक्त हो रही थी एक छप्पर के नीचे। भोर अभी नहीं हुआ था। उस ओर के बैंच पर बैठे तीनों शरीफ आदमी गपशप कर रहे थे और मैं करीब ही बैठा सुन रहा था। उन दिनों हर रोज़ सुबह उठ कर सैर करने का अभ्यास हो गया था। चलते-चलते बहुत दूर निकल जाता। फिर बीच ही में एक पार्क में बैठ कर थोड़ी देर सुस्ता लेता। खपरैलों से छाया हुआ छप्पर इसी पार्क में था। कुछ बैंच भी पड़े हुए थे। एक ही बैंच पर रोज़ जाकर थोड़ी देर बैठा रहा करता। जब पसीना सूख जाता, तो धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ घर लौट आता।

बैंच पर अकेला मैं ही नहीं बैठता था; कुछ रिटायर्ड वृद्ध भी गप्पें हांका करते।

रायबहादुर एक दिन कहते—नेहरू का व्याख्यान पढ़ा, समझे आप ? उनके पिता का नाम था मोतीलाल नेहरू।

सिविल सर्जन कहते—जब मैं पटना में नियुक्त था, तो एक दफा जवाहरलाल जी आए थे लेक्चर देने।

डिप्टी साहब कहते—अजी हमारे मालदा के कोर्ट में तो एक दिन नेहरू गवाही देने आए थे।

इसी तरह की नित्य नई गप्पें रोज़ हांकी जातीं और मैं बठा-बैठा सुना करता। फिर जब सारे बड़े-बूढ़े विदा हो जाते, तो मैं भी उठ जाता। उस दिन मुझे ज़रा देर हो गई थी। वृद्ध मंडली की गप्पें शुरू हो चुकी थीं।

रायबहादुर कह रहे थे—क्यों महाशय, शरतचन्द्र चटर्जी का नाम सुना आपने ? कहते हैं उन्होंने कई अच्छे उपन्यास लिखे।

डिप्टी साहब बोले—खाक अच्छे लिखे हैं। मैंने एक पढ़ा था। अरे राम-राम ! बंकिमचन्द्र चटर्जी के बाद कोई भी अच्छा उपन्यासकार पैदा ही नहीं हुआ हमारे देश में। दुर्गेशनन्दिनी पढ़ी आपने ?

सिविल सर्जन बोले—सुना है शरत चटर्जी आदमी कुछ शराबी-कबाबी टाइप था।

रायबहादुर बोले—हो सकता है, किन्तु केवल आजकल के छोकरों के लिए। किसी में रुचि-बोध तो रह नहीं गया है।

डिप्टी साहब बोले—यदि जीवन भर नौकरी न करनी पड़ती, तो मैं भी अच्छा उपन्यासकार हो सकता था। कितनी तरह के लोग देख चुका हूं अपने जीवन में। अगर उन सबके बारे में कुछ नोट रखता, तो आज घर में रुपयों का ढेर लग जाता।

रायबहादुर बोले—आप लोगों ने देखा ही क्या है महाशय ! मैंने सेटलमेंट के काम में गांव-गांव की खाक छानी है, किसानों के साथ घुलमिल कर उनकी ज़िन्दगी की एक-एक बात नोट की है। लिखने बैठ जाऊं तो दफ्तर के दफ्तर लिख डालूं। पर अंग्रेज़ी लिखते-लिखते बंगला लिखना ही भूल गया हूं, वरना···

सिविल सर्जन साहब ने रुकावट डाली। कहने लगे—आप लोग लिख सकते हैं, तो हम भी लिख सकते हैं। डाक्टरी प्राफेशन में कितने ही लोगों से हमें वास्ता पड़ता है ? एक-एक केस ऐसा आ जाता है कि दिमाग चकरा जाता है। जब मैं बिलासपुर में था, तो ऐसा ही एक केस देखने में आया था। आप लोग तो सुनते ही चौंक उठेंगे। इस दुनिया में कितने अजीब लोग होते हैं।

रायबहादुर बोले—यानी ?

सिविल सर्जन साहब ने फिर कहना शुरू किया, बोले—पहले मेरी तो वाकफ़ियत ही नहीं थी। एक ही गाड़ी में एक ही कम्पार्टमेंट में सफर कर रहे थे। मैंने हावड़ा स्टेशन पर ही भांप लिया था कि भले आदमी मेरे ही डिब्बे में चले आ रहे हैं। चेहरा देख कर ही मुझे तो सन्देह होने लगा था। मैला-सा लांगक्लाथ का कुर्ता, मोटी-सी धोती। इस शक्ल-सूरत के लोग फर्स्ट क्लास में नहीं बैठा करते, लेकिन मुंह से कुछ बोल न सका। बोलने में पहले वही पूछ बैठे—आप कहां तक जा रहे हैं ?

मैंने कहा—विलासपुर।

वे बोले—विलासपुर ! अच्छा हुआ । मैं भी विलासपुर जा रहा हूं। आप वहां करते क्या हैं ?

बोला—मैं विलासपुर का चीफ मैडीकल आफिसर हूं।

ऐसा लगा जैसे भले आदमी सुनते ही चौंक उठे हों । मैंने मुंह दूसरी तरफ घुमा लिया । उन्हें देखते ही मानो वितृष्णा-सी होने लगी। मैं ठीक जानता था, यह विना टिकट है । अच्छा होता अगर उसी वक्त कोई चैकर आ जाता । कम-से-कम उनकी वह सूरत तो फिर न देखनी पड़ती । लेकिन भले आदमी जल्दी पीछा छोड़ने वाले न थे ।

थोड़ी देर वाद फिर उन्होंने पूछा—क्या तनख्वाह है आपकी ?

मैंने उनकी ओर देख कर दांत जरूर पीसे, पर चुप ही रहा । इस वात का भला क्या जवाव देता ! कोई भी अनजाना-अनपहचाना आदमी ऐसा प्रश्न कर सकता है, यह मेरी कल्पना ही से वाहर था। लेकिन वह भला क्यों मानते ? बोले—जानते हैं, रुपया ही असली चीज़ है, रुपये नहीं तो कुछ भी नहीं । रुपये फेंकने की देर है, फिर देखिएगा लोग, आपके सामने नाक से लकीर खींचने लगेंगे। रुपये नहीं हैं तो लड़का कहिए, दामाद कहिए, कोई आपका नहीं है।

मैं चुपचाप सुनता गया । कूपे था, केवल दो सीटें; एक ऊपर, एक नीचे । मैंने टाल-मटोल करने की जितनी कोशिश की, भला आदमी उतना ही मुझ पर सवार-सा हो गया । वातें तो जैसे खत्म ही न होती थीं उनकी। वातें क्यों, वातों की फुलझड़ी कहिए ! कहने लगे—दूसरों की नहीं कहता, मेरी कल्पना ही सुन लीजिए न ! नौकरी की, वाल-वच्चों को पाला-पोसा । पुराने ज़माने की कचहरियों में मुहर्रिर था । ढेरों रुपया कमाया । टीन के टीन घी खाए। वेमौसम के आम खाए; जितने खुद खाए, उतने ही लड़के-वच्चों को खिलाए । सच पूछिए तो खिला-खिला कर ही आदत विगाड़ दी सवकी । उस समय सोचा था लड़का वड़ा होगा, तो मुझे भर पेट खिलाएगा, पर····

मैंने समय काटने के लिए पूछा—करता क्या है आपका वेटा ?

भले आदमी वोले—उसी के पास जा रहा हूं महाशय ! कान खोल कर सुनाने के लिए। भला सोचिए तो सही जव वह कुछ न भेजे, तो मेरा खर्च कैसे चल सकता है । आंखों से अच्छी तरह दिखाई भी नहीं देता । मोतिया-विन्द है । आखिर डाक्टर को दिखाने के लिए भी तो रुपये चाहिएं । चाहिएं या नहीं ? आप ही वताइए।

—ज़रूर चाहिएं ।—मैंने वहते हुए कहा।

—देखिए तो! आप ठहरे विवेकशील व्यक्ति, आप न कहेंगे तो और कौन कहेगा। आंखें जंचवाने के लिए भी पहले ही आठ रुपये देने पड़ते हैं डाक्टर साहब को। पर ये आठ रुपये कहां से आएं? आप ही बताइए, मेरी क्या पहले की-सी अवस्था है?

मैंने कहा—सो तो देख रहा हूं।

कहने लगे—उस समय मुवक्किलों से जैसे-तैसे रुपये वसूल कर लेता था। वह ज़माना ही लद गया है। और तब मुवक्किल भी और किस्म के होते थे। ज़रा-सी धमकी दी कि काम बन गया। हाकिम का नाम सुनते ही थर-थर कांपने लगते थे। अब तो दुनिया ही बदल गई है साहब! तिस पर आंखों से सूझता नहीं। और तो और रुपए-पैसे का नाम भी सुनने को नहीं मिलता! अब तो यह अंधी आंखें लेकर घर की सीढ़ियों पर बैठा रहता हूं, और हुक्का गुड़गड़ाया करता हूं।

पूछा—आप विलासपुर में कहां जा रहे हैं?

कहने लगे—बड़े लड़के के पास। और कहां?

—लड़का क्या करता है? रेल में नौकरी?

—जी हां, महाशय! अपने ही एक धनी मुवक्किल ने कह-सुन कर रेल में नौकर करवा दिया था। सोचा था बुढ़ापे में पालन-पोषण करेगा। बस सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया।

कहा—क्यों? क्या लड़का आपको रुपये नहीं भेजता?

कहने लगे—भेजता क्यों नहीं? भेजता है—साठ रुपये महीना। अब आप ही बताइए साठ रुपये महीने से इन दिनों क्या होता है। रुपये का एक सेर दूध, तीन-चार रुपये सेर मछली, कच्चे केले के एक जोड़े के दाम दो आने—आखिर चले भी तो कैसे?

मैंने पूछा—आपका और कोई लड़का नहीं है?

—है क्यों नहीं? लेकिन सब अपनी-अपनी गृहस्थी में मस्त हैं। बाप के पास फूटी कौड़ी तक नहीं; उस पर क्या गुज़रती है, इन बातों की फिक्र ही किसको है? आज दस साल से मोतियाबिन्द है। आठ रुपये फीस देकर डाक्टर को दिखाने का उपाय नहीं है। लड़के कहते हैं अस्पताल जाकर अपनी आंखें दिखा आओ। मैं कहता हूं इस बुढ़ापे में अस्पताल जाऊंगा तो क्या तुम सबकी इज्ज़त को चार चांद लग जाएंगे?

मैंने कहा—मगर अस्पताल जाने में हर्ज ही क्या है?

—लीजिए! विवेकशील व्यक्ति होकर आप भी विवेकहीन-सी बातें कहने लगे। भला अपने बेटों के रहते, केवल आठ रुपयों के लिए, मैं अस्पताल क्यों जाऊं?

—तो फिर इन रुपयों के लिए ही जा रहे हैं विलासपुर ?

—बेटे को लिखा था कि डाक्टर से आंखों की परीक्षा करानी है, आठ रुपय भेज दो, जानते हैं उसने क्या जवाब दिया ?

—क्या ?

—वह सब सुनने की ज़रूरत नहीं आपको । सुनने से पाप होगा । अब समझाने-बुझाने जा रहा हूं उसे । अपने मुंह से ही अपनी दास्तान कहना ठीक होगा । कहूंगा—तुम लोग क्या यही चाहते हो कि मैं अंधा हो जाऊं ? बचपन से तुम सबको पाला-पोसा है, खिलाया-पिलाया है, उसकी क्या कुछ भी कीमत नहीं है ?

मैंने कहा—उन आठ रुपयों के लिए तो रेल के किराए में ही आपको बहुत कुछ खर्च करना पड़ा होगा, मेरा मतलब है आने-जाने के किराए में।

वे कहने लगे—आने-जाने का किराया। क्या आप समझ रहे हैं कि मैंने टिकट लिया है ? मैं टिकट लूं ? तब तो हो चुका । ज़िन्दगी भर पैसे देकर कभी रेल की सवारी नहीं की । सरकारी ट्रेन है, आती है, जाती है। एक मेरे सवार होने से इंजन को कोयले की ज़्यादा भूख तो नहीं लग जाती ! वाह ! कितनी बड़ी हँसी की बात कह दी आपने ! मैं और टिकट कटाऊं ? टिकट न लेना पड़े, इसीलिए तो फर्स्ट क्लास में सफर कर रहा हूं महाशय !

इतना कह कर वे खूब जी खोल कर हँसे। उनकी वह हँसी देख कर मेरे तन-बदन में आग-सी लगने लगी। जी में आया फौरन चैकर को बुला कर चैक करवा दूं । फिर तरस भी आया । अहा बेचारा ! जिन बच्चों को पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है, आज वही इसे टका सेर नहीं पूछ रहे हैं, हालांकि बात सिर्फ आठ रुपयों की है। आठ रुपये हों तो बेचारा डाक्टर को आंखें तो दिखा सकता है। वे कहने लगे—आठ रुपयों की कीमत इस समय मेरे नज़दीक आठ सौ रुपये है महाशय ! एक वक्त था जब दोनों हाथों से रुपये लुटाए हैं, यह सोच कर कि हमेशा ऐसी ही बनी रहेगी और अब यह हालत है कि अपने ही लड़के से आठ रुपये की भीख मांगनी पड़ रही है। कुछ दया-सी आने लगी उस बेचारे पर ! बोला—अगर कोई चैकर-वैकर आ गया, तो मुश्किल में पड़ जाइएगा । मुमकिन है ट्रेन से भी उतार दिए जाएं ।

कहने लगे—उतार दिया गया तो उपाय भी क्या है। फिर कोई दूसरी ट्रेन पकड़ूंगा ।

—जेब के पैसे तक ले लिए गए तो ?

—रुपये पैसे पास रखता ही नहीं महाशय । नंगा भी करके छोड़ देंगे, तो फटी कौड़ी तक ढूंढ़े न मिलेगी । रुपये हैं कहां जो पास रखूंगा ।

साठ रुपये जो हर महीने आते हैं, उनसे कलकत्ता जैसे शहर में गुज़र होनी ही मुश्किल है।

—ट्रेन में भी तो खाने-पीने पर कुछ खर्च होता है।

—अपना खाना-पीना साथ रखते हैं अपने। यह देखिए? —कह कर उन्होंने एक मैले-से कपड़े में बंधी पोटली-सी दिखा दी।

—क्या है इसमें? —मैंने पूछा।

कहने लगे—मूड़ी (भुने हुए चावल); चार पैसे की मूड़ी खरीद ली है बड़ा बाज़ार से। हरी मिर्च पास है ही। चल जाएगा इसी से। मुड़ी पेट के लिए बड़े फायदे की चीज़ है, और फिर बूढ़ा हो गया हूं, अब चाय-चाकलेट हज़म करने की शक्ति नहीं है। हां, जब मुहर्रिरी करता था, तो मन की साध मिटा कर खूब खा-पी लिया!

इसके बाद मैं डाइनिंग कार में खाने चला गया और भले आदमी से ताकीद करता गया कि मेरा सामान वगैरा देखते रहें। मेरे पास ज्यादा माल-असबाब तो था नहीं, फिर भी रिस्टवाच, कलम, पर्स और ट्रेन का टिकट तो साथ लेता गया। खा-पीकर जब लौटा तो क्या देखता हूं ••• भले आदमी मूड़ी और हरी मिर्च बड़े मज़े से मुट्ठियां भर-भर कर मुंह में डाल रहे हैं। मैंने दरवाज़े पर हल्का-सा धक्का दिया, तो उन्होंने फौरन दरवाज़ा खोल दिया।

बोले—हो गया खाना-पीना आपका?

कहा—जी हां।

पूछ बैठे—क्या चार्ज किया?

जवाब दिया—तीन रुपये बारह आने।

सुन कर चौंक पड़े।

कहने लगे—उफ, गला काट लिया एक दम, तीन रुपये बारह आने! लेकिन साहब, मैं उनके झांसे में आने से रहा। लूट लें जितना जी चाहे। मैं उनके पाले पड़ने वाला नहीं हूं।

इतना कहा और मुट्ठी भर मूड़ी और मुंह में डाल ली।

रात हो गई थी। सोने की तैयारी ज़रूरी थी।

पूछा—बत्ती बुझा दूं? आपका खाना-पीना सब हो गया है न?

कहने लगे—जी हां, आप सो जाइए, मैं ऊपर चला जाता हूं।

बस इतना कह कर वे ऊपर की बर्थ पर पड़ गए। साथ में न बिस्तर था, न सूटकेस। कुछ भी नहीं। कपड़े-जूते पहने हुए ही सो गए। हां, उस मैले कपड़े की पोटली को उन्होंने तकिए की तरह सिर के नीचे दबा लिया।

मैंने कहा—जूते पहने ही रहेंगे क्या?

बोले—नहीं जी, जूते अब नहीं खोलूंगा। नए बनवाए ह। कौन जाने किसी सुराख से नीचे भी तो गिर सकते हैं।

आंख उठा कर उनके जूतों की तरफ ताका। कपड़े-लत्ते ज़रूर मैले-कुचैले पहने थे, पर जूते सचमुच नए थे।

कहने लगे—हाल ही में आर्डर देकर बनवाए हैं। कस कर दाम देने पड़े हैं।

पूछा—क्या देना पड़ा?

बोले—अठारह रुपये।

जो आदमी रुपये-पैसे के अभाव में रेल का टिकट नहीं कटवा सकता, आठ रुपयों के लिए लड़के के पास भीख मांगने जा रहा है, उसने अठारह रुपये खर्च करके जूते बनवाए हैं, यह सुन कर अवाक् ही रह जाना पड़ा।

पूछा—जूतों का आपको बहुत शौक है?

कहने लगे—मेरे जूते कम-से-कम पांच बरस तो चल ही जाते हैं। जूते ही तो असली चीज़ हैं। फिर खाऊं चाहे न खाऊं, पैरों में अच्छे जूते ज़रूर होने चाहिएं।

कितना अजीब शौक! जूतों पर उनकी ममता देख सचमुच दंग रह जाना पड़ा उस दिन। उसके बाद बत्ती बुझा कर हम दोनों सो गए। शरीफ आदमी ऊपर की बर्थ पर और मैं नीचे। कब चक्रधरपुर, झाड़सूगड़ा निकल गए, खबर ही नहीं पड़ी। रायगढ़ के करीब जाकर नींद टूटी। खिड़की खोलकर बाहर की ओर झांका। सवेरा हो रहा था। भले आदमी चुपचाप ऊपर की सीट पर बैठे हुए थे।

कहा—क्यों, जग गए आप?

मेरी बात का जवाब दिए बिना ही कहने लगे—अब तो बिलासपुर आ रहा होगा, क्यों?

कहा—जी हां।

वे नीचे उतर आए। मैं भी बिस्तर बांध कर तैयार हो गया। ऐसा जान पड़ा जैसे अत्यन्त चिन्तित-से हो रहे हों। कहने लगे—बिलासपुर में चैकर तो बहुत होते होंगे।

मैंने कहा—जी हां, वहां आपको खूब सावधान होकर, चारों तरफ देख-दाख कर उतरना पड़ेगा।

कहने लगे—मैं ट्रेन रुकने से पहले ही उतर जाऊंगा।

हुआ भी वही। बिलासपुर ट्रेन रुकने से पहले ही दरवाज़ा खोल कर उतरने को तैयार हो गए। फिर ट्रेन के रुकते न रुकते प्लेटफार्म पर उतर

पड़े और उसके साथ ही साथ प्लेटफार्म पर से शोर उठा—गया ! गया !! गया !!!

मैंने नीचे उतरते ही देखा, बेचारे प्लेटफार्म और पटरी के दरमियान पड़े चिल्ला रहे हैं। एक मजमा-सा जमा हो गया चारों तरफ से। पूरा प्लेटफार्म ही जैसे उत्तेजना और कोलाहल में डूब गया। गार्ड साहब तशरीफ लाए, स्टेशन मास्टर पधारे। मैं तो था ही।

बड़ी मुश्किलों से उन्हें नीचे से निकाल कर ऊपर लाया गया। देखा घुटनों से नीचे की दोनों टांगें ही कट गई हैं। अस्पताल में टेलीफोन कर दिया गया था। स्ट्रेचर फौरन आ गया। नर्स भी आई, असिस्टेंट सर्जन भी आए।

बेचारे उस समय भी दर्द से कराह रहे थे। आस-पास की सारी जगह खून से लथपथ हो गई थी। टांगें दोनों पड़ी रह गईं वहीं। उसी अवस्था में उन्हें स्ट्रेचर पर उठा कर अस्पताल पहुंचाया गया। बेचारे जी-जान से चिल्ला रहे थे—मेरे पैर! मेरी टांगें। अस्पताल में अधिक समय न लगा। दवा, इंजेक्शन, बैंडेज सबकी व्यवस्था हो गई। जब तक होश में रहे, गला फाड़-फाड़ कर अपनी टांगों को खो बैठने के दुख में चिल्लाते रहे। बस एक ही रट थी। हाय मेरी टांगें! हाय मेरे पैर!

इसके बाद ही इंजेक्शन देकर उन्हें बेहोश कर दिया गया। खबर पाकर उनका लड़का भी दौड़ा आया। मैंने सब बता दिया उसको। डांट-डपट भी खूब बताई। आंखों के इलाज के लिए आने की वजह से ही यह घटना घटी है, यह भी कहा उसे। और भी कहा—सन्तान होकर पिता की इस तरह अवहेलना करना अन्याय है। बुढ़ापे में, रुपये के अभाव के कारण ही तो उन्हें मुसीबतों का सामना करना पड़ा। क्या अच्छी बात है यह! बाप ही तो बच्चों का पालन-पोषण करता है, कम-से-कम आखिरी उम्र में कृतज्ञता के तौर पर ही सही, उसकी देखभाल करना बेटों का कर्तव्य भी तो है।

उसने मेरी बातें सुनीं, किसी बात का प्रतिवाद न किया। दूसरे दिन होश आते ही मुझे देख कर वे भले आदमी चिल्ला उठे—मेरी टांगें, मेरे पैर कहां हैं, डाक्टर साहब?

मैंने कहा—उनके लिए चिन्ता अब व्यर्थ है। आपकी जान बच गई, यह भी तो कम आश्चर्य की बात नहीं।

पर वे कब मानने वाले थे। कहने लगे—मेरी दोनों टांगें ला दीजिए डाक्टर साहब! मेरी टांगें ला दीजिए।

मैंने कहा—आपकी टांगें रख दी गई हैं। आप अच्छे हो जाएं, फिर दे दी जाएंगी।

—दे दी जाएंगी !

इससे कुछ इतमीनान-सा हुआ उनको।

उनके बेटे से कहा—आपके पिता टांगों के लिए इतने उतावले क्यों हो रहे हैं ? वे तो फेंक दी गई हैं।

वह बेचारा अपराधी की तरह चुप्पी ही साधे रहा, मुंह से एक बोल भी न फूटा बेचारे के।

इसके बाद धीरे-धीरे भले आदमी स्वस्थ होने लगे, लेकिन सब समय मुंह पर वही टांगों की रट रहती थी। डाक्टर, नर्स, वार्ड-ब्वाय, जो भी सामने आता उससे केवल टांगों के विषय में पूछते रहते।

मैं सामने पड़ जाता तो मुझी से पूछने लगते—डाक्टर साहब, मेरी टांगें मुझे वापस न दीजिएगा ? कब दीजिएगा ?

उन्हें तसल्ली देने के लिए मैंने कहा—आज ही आपकी टांगों की व्यवस्था कर दूंगा। पता लगाऊंगा कि हैं कहां ? इस विषय में झूठमूठ चिन्ता न कीजिएगा।

फिर अपने आप समझ में आया कि उनकी असल चिन्ता टांगों को लेकर नहीं, नए जूतों के बारे में है। अट्ठारह रुपये खर्च किए थे उन्होंने। आर्डर देकर तैयार करवाए थे। टांगें कटीं तो कटीं, पैर गए तो गए, जूतों के लिए एक कंजूस-मक्खीचूस की ममता होना कुछ हद तक स्वाभाविक ही है।

उसी दिन पूछताछ की। मालूम हुआ दोनों कटी हुई टांगें जूतों समेत जला दी गई हैं। यही नियम है।

उस दिन अस्पताल पहुंचा ही था कि भले आदमी ने छूटते ही कहा—डाक्टर साहब, आपने कहा था न कि मेरी दोनों टांगों के विषय में पूछताछ करेंगे, सो आज···

मैंने कहा—वे कटी हुई टांगें लेकर क्या कीजिएगा ? बल्कि अच्छा तो यह होगा कि अब लकड़ी की टांगें बनवा लीजिए।

ऐसा जान पड़ा जैसे भद्र पुरुष चिन्तित मन से मेरी ओर ताक रहे हों।

कहने लगे—लेकिन वह जूतों का जोड़ा ?

मैंने कहा—जूतों समेत ही वे दोनों टांगें मेहतर ने जला दी हैं। अब तो कोई उपाय नहीं है।

यह सुन कर वे कुछ हांपने-से लगे, जैसे दम निकला जा रहा हो; सारे शरीर की हालत ही कुछ और हो गई।

कहने लगे—लेकिन डाक्टर बाबू, उनमें मेरे जो रुपये थे, वे ?

—किनमें—मैंने पूछा।

—उन जूतों में—उन्होंने कहा—मैंने तो रुपये रखने के लिए ही उन्हें आर्डर देकर बनवाया था।

—कितने रुपये थे ?

—तिरेपन हज़ार।

यह कहते-कहते ही उनकी हालत और से और हो गई। मैंने फौरन इंजेक्शन देने की व्यवस्था की, पर उन्हें किसी तरह बचाया न जा सका। टांग कट जाने का उन्हें उतना अफसोस न था जितना कि रुपये चले जाने का था।

उसी दिन उनकी मृत्यु हो गई।

अनुवादक : रेवतीनन्दन भूषण

तरंग

· प्रबोधकुमार सान्याल

इतनी रात को ट्रेन बदलना भी एक मुसीबत है। एक बड़ा बक्स, दो सूटकेस, पहाड़ जैसा बिस्तर, दो लालटेन, टिफिन-कैरियर, सुराही, दूध की बोतल—क्या नहीं है ? उनींदी आंखों वाले तीन बच्चों को उतारना, उस पर कार्तिक की ठंडक, घर से दूर पश्चिम में हवा बदलने के लिए आने में सचमुच बड़ी दिक्कतें हैं।

—ठहरो, बहादुरी रहने दो। पहले गाड़ी तो रुके। अरी मैया, बाहर तो कुछ भी नज़र नहीं आता। पहले तो रात, उस पर इतना कुहरा। रोशनी भी तो नहीं दिखाई देती। बांध डालो बिस्तर किसी तरह। क्यों जी, कुली तो मिल जाएंगे?—कपड़ों को सम्भालते हुए शैलवाला ने पति की ओर देखा।

भूपति ने कहा—जलवायु के प्रभाव से तुम्हारा शरीर तो बहुत पुष्ट हो गया है। बचा दो न कुली का खर्च।

शैलवाला हँसते हुए बोली—तुम्हारा पांच मन लगेज क्या मुझी से उठेगा ?

—क्या हर्ज है? —भूपति ने कहा—बंगाल की लड़की पश्चिम में जाकर मर्द बन जाती है। तुमसे इतना भी न होगा ? अच्छा, मैं मदद कर दूंगा कुछ।

—तुम ?—शैलवाला बोली—तुम्हें तो बुखार है न? तुम रैपर अच्छी तरह ओढ़ कर उतरो। मिंटू का हाथ पकड़ो, वेणु खुद उतर जाएगी, अंजू को मुझे दो। ओह, पहले गाड़ी तो रुक जाए। वक्त क्या है ?

—बारह बज रहे हैं।

—हम लोगों को अगली गाड़ी कब मिलेगी ?

—करीब ढाई बजे।

शैलवाला—बाबा बड़ा डर लगता है। बुखार में अगर ठंड लग गई तो क्या होगा ? वहां वेटिंग रूम तो होगा ?

भूपति ने कहा—देवी, तुम हो गई हो पति-भक्ति में अंधी। कोई स्टेशन देखा है बिना वेटिंग रूम के ?

झटके के साथ गाड़ी स्टेशन पर रुकी। इतनी रात होने पर भी यात्री, कुली या फेरीवाले किसी की कमी नहीं। गाड़ी रुकते ही तीन-चार कुली दरवाज़े पर आ गए। शैलबाला ने भूपति के गले और दोनों कानों को कम्फर्टर से बांधा, तब उसे नीचे उतरने की आज्ञा दी।

बड़ी ज़बर्दस्त औरत है। एक बच्चे को गोद में लिया, दूसरे का हाथ पकड़ा, एक आंख पति पर रखी, दूसरी लगेज की संख्या पर। फिर उपस्थित जनता की परवाह न करके शोर-गुल मचाती हुई वह ट्रेन से नीचे उतरी। बड़ी लड़की वेणु का हाथ पकड़ कर भूपति भी उतरा। दो कुलियों ने सामान उठाया।

करीब ढाई घंटे समय काटना होगा। इस लम्बे समय को बिताने के लिए ठीक-सी जगह चाहिए।

शैलबाला बोली—मैं औरतों के वेटिंग रूम में नहीं जाऊंगी। तब तुम्हारी देखभाल कौन करेगा? चलो, मर्दाने वेटिंग रूम में।—पहले तीनों बच्चों के सुलाने का इन्तज़ाम कर दूं। कड़ी ठंड है, चलो. चलो। ए कुली, इधर आओ। कहो जी, कहां हो तुम?

भूपति बोला—यहीं तो हूं। बड़ी जल्दबाज़ी करती हो। थोड़ा भी सब्र नहीं कर सकतीं।

—सब्र कैसे करूं? क्या तुम बीमार नहीं हो? अच्छे-भले घर पहुंच जाएं, तो जान बचे। ए कुली, इधर लाओ सामान।

फिर धीरे से शैलबाला बोली—अरे देखो तो कौन है यह आदमी? तब से घूम रहा है मेरे आस-पास।

भूपति ने देख कर कहा—कुछ नहीं, इतना गहना और इतना रूप।—उसका क्या दोष, अगर घूमता भी हो तुम्हारे आस-पास?

शैलबाला बोली—क्या ढंग है तुम्हारा बात करने का? रात में डर लगता है, तभी कहा तुमसे।

—तुम्हें देख कर तो डाकू भी डर से भाग जाएं।

—क्यों?

—सोने की चोट ही बेचारे न सह पाएंगे।

वेटिंग रूम में कुलियों ने सामान उतारा। भूपति ने कुलियों से ढाई बजे की कलकत्ता जाने वाली एक्सप्रेस पर चढ़ा कर पैसा लेने को कहा। वे राज़ी हो कर चले गए। फिर शैलबाला ने बिस्तर बिछा कर, सन्तान और पति के बीच उसी फर्श पर एक छोटी सी जगह अपने लिए भी बना ली।

भूपति ने कहा—मैं सो लूं थोड़ा-सा।

शैलबाला ने कहा—पहले दूध तो पी लो। अभी गर्म किए देती हूं।

—और तुम ?

—मैं जागती रहूंगी । दो दिन का हिसाब लिखना बाकी है। समय कितना है।

—हे परमेश्वर !

शैलबाला ने स्टोव निकाला । उसी समय शैलबाला की निगाह दरवाज़े की ओर गई। अधिक रात होने पर भी स्टेशन बिल्कुल सुनसान नहीं था। बीच-बीच में लोग आ-जा रहे थे। कभी फेरीवालों की आवाज़ सुनाई देती थी, कभी शंटिंग करते हुए इंजनों की फुफकार। जालीदार दरवाज़े में से बाहर देख कर ही वह बहुत डर गई। दबी और डरी हुई आवाज़ में उसने कहा—सुनते हो जी, थोड़ा उठो तो।

भूपति ने सीधे बैठते हुए कहा—क्यों ? क्या है ?

—वही आदमी । एक बार जाओ तो बाहर, वही आदमी है। वही जो घूम रहा था बहुत देर से।—यह कह कर शैलबाला ने गहनों को कपड़ों के नीचे छिपा लिया और स्टोव छोड़ कर एक कोने में खड़ी हो गई। अखबार में पढ़ी ट्रेन में होने वाली डकैती की याद उसे अभी भी थी। भूपति उठ कर दरवाजा खोल कर खड़ा हो गया । शैल की बात सही थी। प्रकाश और अंधकार के बीच टोपी पहने एक युवक खड़ा था। वह भूपति की ओर बढ़ा।

भूपति ने कहा—क्या चाहते हैं ?

सिर पर टोपी होने पर भी बाकी पोशाक बंगाली थी। युवक ने हँस कर कहा—कुछ नहीं चाहिए। लेकिन देख रहा हूं, आप लोगों को बड़ी देर से।

—आखिर क्यों ? आप कौन हैं ?

—क्या पहचान पाएंगे मुझे ? मेरा नाम निरंजन चटर्जी है। नहीं पहचान पाए न आप ?

भूपति ने स्वीकार किया कि युवक उसका अपरिचित है। फिर बोला—क्या आप मुझे जानते हैं ?

निरंजन बोला—माफ कीजिए, आपको तो थोड़ा जानता हूं, पर आपकी पत्नी को अधिक जानता हूं।

—मेरी स्त्री को ? अर्थात्, जो मेरे साथ हैं यहां ?

—जी हां !

—अजीब बात है । आप हैं कौन ?

निरंजन हँसा । बोला—उनका नाम शैलबाला देवी है न? एक बार बुलाइए न उन्हें ?

भूपति ने एक बार उसे सिर से पैर तक देखा। बोला—मसला पेचीदा होता जा रहा है। क्या आप उनके रिश्तेदार हैं ?

—बहुत कुछ।

—माने ?

—अर्थात् शास्त्र सम्मत नहीं, गांव के सम्वन्ध से।

भूपति ने कहा—वह तो गांव की लड़की नहीं हैं।

निरंजन वड़े विनय के साथ वोला—पहले कलकत्ता शहर के एक अंश का नाम था गोविन्दपुर गांव। डरने की क्या वात है? बुलाइए न उन्हें एक वार, मैं चोर-डाकू नहीं हूं, गांधीजी का चेला हूं।

भूपति हंस कर वोला—इससे मेरा डर तो कम नहीं हुआ।

यह कह कर दो कदम अन्दर जाकर उसने पुकारा—थोड़ा इधर आओ।

शैलवाला ने कुछ न समझ कर इशारे से कहा—मुझे क्यों वुलाते हो? मैं नहीं आती।

—अरे, आओ आओ। यह एक अहिंसक व्यक्ति मालूम पड़ते हैं। गांव का रिश्ता क्या है, अभी तक नहीं समझ पाया। परन्तु, आशा करता हूं, वह खतरे का नहीं है।

निरंजन ने कहा—संकोच की ज़रूरत नहीं। मैं ही भीतर आता हूं।—भीतर आकर निरंजन ने टोपी उतार दी। कमरे के प्रकाश में उसे देख कर हंसते हुए शैलवाला ने कहा—अरे, तुम ?

निरंजन ने पूछा—वताओ तो मैं कौन हूं ?

—तुम तो हम लोगों के वही श्रीकान्त हो!

भूपति ने विस्मय से कहा—श्रीकान्त ?

—हां, पर असल नाम है निरंजन। वचपन में वड़ा सीधा-साधा था। हम इसलिए कहते थे श्रीकान्त। तुम इधर कहां आए थे?—यह कह कर शैलवाला उसके पास आकर खड़ी हो गई।

—अव तो तुम पहचाने भी नहीं जाते। पहले कितने दुवले-पतले थे और अव इतने लम्वे-चौड़े हो गए हो। रंग भी साफ हो गया है। यह सव कैसे हुआ ?

निरंजन ने कहा—श्रीकान्त कह पुकारोगी तो कुछ नहीं वताऊंगा। इस पर वे तीनों एक-दूसरे की ओर देखते हुए वड़े ज़ोर से हंसे।

शैलवाला ने ही फिर वातचीत शुरू की। वोली—अरे तुम शायद नहीं पहचान पाओगे। हमारी शादी की रात को तुमने इसे देखा था। आज ग्यारह साल हो गए इस वात को। हम लोगों की मणि मौसी का लड़का है यह। हमारे किराएदार थे ये लोग। मणि मौसी आजकल कहां है ?

निरंजन ने कहा—चचा के यहां लखनऊ में।

—तुम्हारी वहन कहां है? अनिमा की शादी हो गई?

—हां, वे सब ससुराल हैं।

—शादी की तुमने निरंजन ?

—की है।

—कहां है वहू ? वाल-बच्चे हुए।

—हां, एक लड़का है । वे पास के कमरे में हैं।

शैलवाला खुश होकर बोली—पास के कमरे में? रुको, मैं देखने जाऊंगी । भई, हम लोग आए थे पश्चिम में घूमने । अब लौट रहे हैं। यहां गाड़ी वदलनी है। इनका शरीर ठीक रहता तो कुछ और ठहरते।

भूपति अब आराम कुर्सी पर निश्चिन्त होकर लेट गया।

निरंजन ने कहा—अब आपका नाम याद आ गया—भूपति मुखोपाध्याय । शुभ दृष्टि के समय मैं वहीं था। वारातियों को खाना भी मैंने परोसा था।

भूपति ने हंसते हुए कहा—गांव के रिश्ते में जो मेरी स्त्री के भाई होते हैं, उनको असंख्य धन्यवाद ।

शैलवाला बोली—आखिरी बात वतलाते हुए शायद शर्म लग रही है, निरंजन मेरी विदाई के वक्त कितना रो रहा था। कोई भी चुप न करा पाता था। मेरा आंचल ही न छोड़ता था। कहता था, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। तब मैंने इसे एक अंगूठी दी थी। कहो, याद आता है वह पागलपन ?

निरंजन ने कहा—ससुराल जाकर तुमने भी चिट्ठी नहीं लिखी। बात खत्म हो गई। हम लोग भी मकान छोड़ कर चले गए।

भूपति ने हंस कर कहा—मेरा भी खतरा दूर हुआ ।

शैलवाला हंस कर बोली—भई ठहरो, इनको थोड़ा दूध गर्म कर दूं। फिर चलती हूं तुम्हारी वहू को देखने।—यह कह कर वह स्टोव जलाने बैठी। बोतल का दूध कटोरे में डाल कर उसे स्टोव पर रख कर पूछा—तुम्हारा लड़का कितना बड़ा है ?

—साल भर का ।

—वहू सुन्दर है ?

निरंजन ने कहा—सब दुलहनें सुन्दर होती हैं।

—अरे बाबा । सच ?

बीच ही में भूपति बोला—अपना देख के नहीं समझतीं ?

शैलबाला ने कहा—रुको । तुम बड़े बेहया हो। अच्छा निरंजन, तुम्हारी स्त्री तुम्हें प्यार करती है ?

भूपति ने फिर कहा—बाल-बच्चा होने के बाद, यह प्रश्न निरर्थक है ।

शैलवाला ने हंसते हुए कहा—तुम्हारी स्त्री से ही पूछूंगी यह बात।

भूपति ने पूछा—कहां तक जाएंगे निरंजन बाबू?

—उसे 'बाबू' कहने की ज़रूरत नहीं। नाम लेकर ही पुकारो। आंखों के सामने आ जाता है वह दृश्य, वह दुष्ट लड़का, सारा दिन पतंग उड़ाने वाला। हमारे घर में घुस कर खिलौनों को तोड़ देता था। कितना मारता था हम लोगों को। इसके मारे इसकी बहनें अपने डिब्बों में पैसा नहीं रख सकती थीं। ··· याद आती हैं वे सब बातें?

हँसते हुए निरंजन ने कहा—नहीं।

—अच्छा, चलो अपनी बहू के पास। सब याद करा दूंगी। क्यों जी, कितना बजा है?

निरंजन ने घड़ी देख कर कहा—करीब एक बजा है। तुम्हारी गाड़ी शायद ढ़ाई बजे छूटती है। मेरी लखनऊ जाने वाली गाड़ी तीन बजे जाती है।

स्टोव से दूध उतार कर शैलबाला ने पति को एक प्याला भर दिया। फिर स्टोव बुझा कर खड़ी हुई और बोली—बहू पास के कमरे में है न? देखो जी, तुम दूध पीकर सो जाओ। मैं ठीक समय पर आकर जगाऊंगी।

भूपति ने कहा—यहां कमरे में बड़ा आराम मिल रहा है। सारी रात भी अगर न बुलाओ, तो भी मुझे कोई दुख न होगा।

निरंजन ने कहा—अपनी स्त्री से परिचय करा दूं। चलिए न आप भी।

भूपति ने हँस कर उत्तर दिया—अपनी स्त्री को मेरा नमस्कार देते हुए आप उन्हें घर पर आने का निमन्त्रण दें। आज रहने दीजिए। बच्चे सो रहे हैं। अकेले रह जाएंगे। कलकत्ता जाकर ही परिचय होगा।

शैलबाला ने पति को कमर तक एक शाल से ढक दिया, फिर धीरे से कहा—मैं जल्दी ही लौटूंगी। —यह कह कर निरंजन के साथ वह वेटिंग रूम से निकल गई।

* * *

कमरे के भीतर के प्रकाश, बातचीत और आराम के कारण बाहर की हालत का किसी को खयाल नहीं था। हेमन्त की रात्रि के अंधकार और कुहरे से प्लेटफार्म दूर तक ढका हुआ था। निर्जन स्टेशन सांय-सांय कर रहा था। प्रकाश और छाया में यह अनजानी जगह अस्पष्ट रहस्य से भरी हुई मालूम पड़ती थी। लोग आते-जाते ज़रूर थे, पर उनको पहचाना नहीं जा सकता था। कहां से कौन आता था, किधर जाता था—सब मिल कर एक अवास्तविक स्वप्न राज्य जैसा लगता था। ठंडी हवा का एक झोंका आया। हवा के इस स्पर्श से शैलबाला का हृदय पुलकित हो

गया और मन में गुदगुदी उठने लगी। वह जैसे अपने वाह्य आवरण को छोड़ कर वाहर निकल आई।

कुछ दूर जाकर शैलवाला ने कहा—कहो श्रीकान्त, तुमने पास के कमरे में कहा था न ? हम लोग इतनी दूर क्यों निकल आए ? कहां है तुम्हारी स्त्री ?

उसके हँसते हुए चेहरे को देख कर निरंजन का मन भी खुशी से भर गया। रुक कर बोला—बुरा न मानना शैल, एक वात कहूं। यही सोचो हम लोग पहले की तरह हैं।

शैलवाला ने पूछा—क्या वात है ?

—मैंने शादी नहीं की।—निरंजन ने कहा।

विस्मय से शैलवाला ने उसकी ओर देखा। बोली—यह कैसे ? अपनी स्त्री दिखाने को कहा था न तुमने ? कहो तो ये क्या सोचेंगे ? शादी नहीं की तुमने ?

—नहीं। तुम थोड़ी देर वाद चली जाना, क्यों ?

शैलवाला ने कहा—यह तो ठीक है, पर तुम झूठ क्यों बोले ? इतने दिन वाद मुलाकात होने पर भी···

निरंजन ने बीच में ही रोक कर कहा—शादी नहीं की कहते हुए शर्म आती है।

—क्या कर रहे हो आजकल ?

—अभी कुछ दिन से कलकत्ते के एक कालेज में पढ़ रहा हूं। इतने दिन वाद तुम्हें देख कर वड़ा अच्छा लग रहा है।

—तभी पहले मुझे धोखा दिया ?—हँसते हुए शैलवाला ने पीछे की ओर देखा, फिर वोली—अगर ये वाहर निकल आएं ? और थोड़ा आगे चलो। कितने शरारती हो तुम।

निरंजन ने कहा—शरारती क्यों ? अव मैं तुम्हारे खिलौने नहीं तोड़ूंगा।

चलते-चलते शैलवाला ने कहा—डाल दिया न मुसीवत में मुझे ? अगर इन्हें पता चल जाए कि तुम्हारी स्त्री नहीं है, और हम दोनों यहां घूमने आए हैं तो क्या सोचेंगे ?

—अकस्मात्, यहां तुमसे भेंट होगी यह किसने सोचा था ? निरंजन कहने लगा—ग्यारह वर्ष हो गए, पर मानो कल की वात हो। मनुष्य स्वप्न देखता है, परन्तु रहती है उसमें युगान्त काल की कहानी।

—तुम वड़े विचित्र हो ! कैसे पहचाना तुमने मुझे इस भीड़ में ? मैं सोच रही थी कि कौन है यह आदमी, जो वार-वार मुझे ताक रहा है।

वह आदमी तुम होगे, कौन जानता था? —शैलबाला ने कहा—सच, स्वप्न ही मालूम पड़ता है। बाबा, कितना रोए थे तुम। मैं भी कम न रोई थी। बचपन की मुहब्बत अधिक रुलाती है। अब हम कौन कहां आ गए हैं, समझ में नहीं आता। तुम्हारे चेहरे को देख कर पहले तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था। बताओ तो, क्या देख रहे हो?

निरंजन ने हँसकर कहा—देख रहा हूं तुम्हें।

—क्या देख रहे हो?

—तुम्हारी कंजी आंखों को। बिल्कुल नहीं बदली हैं।

शैलबाला ने हँस कर कहा—तुम तो कहते थे कि ये गंदले पानी के पोखरे हैं।

—हां, तुम्हारा चेहरा भी पहले जैसा ही है।

—हुत पागल, तीन-तीन बच्चों की मां हो गई हूं, जानते हो। चलो न थोड़ा उधर चलें।

निरंजन ने कहा—ठोकर तो न लगेगी?. अंधेरा है।

शैलबाला बोली—होने दो, बड़ा अच्छा लग रहा है इस ठंडक में चलने से!

अच्छे ही हो शादी न करके, निरंजन। विवाह एक बड़ा बन्धन है। यह गोरखधन्धा घुमाता ही रहता है। अपने पैरों नहीं चल पाते, दूसरों के इशारे पर नाचना पड़ता है। अच्छे हो तुम।

प्लेटफार्म की सीमा पार करके वे ढलुआं स्थान से उतरने लगे। न उनके सामने कोई बाधा थी और न पीछे कोई बन्धन; देश और काल उन्हें अपने मन का विभ्रम जैसा लगा। उस आवरण को हटा कर उन्होंने देखा अपना अतीत जीवन जो वर्तमान में आ गया। वे अपनी अवस्था को भूल गए। शैलबाला के आचरण में किसी प्रकार का संकोच या भ्रम नहीं रहा। क्योंकि इस पुरुष से, जिसे वह पुराने समय से जानती है, खतरे की सम्भावना नहीं थी। इस अंधकारमय पथ में समय के व्यवधान को पार कर वह अपने सहज स्वभाव में आ पहुंची, संस्कार और नैतिकता के स्पर्श से दूर।

निरंजन ने कहा—तुम्हारे पतिदेव बड़े अच्छे लगे। बड़े हँसमुख हैं। दोस्तों का-सा व्यवहार करते हैं।

शैलबाला बोली—बड़े दुर्बल हैं, ठेल-ठाल कर चलाना पड़ता है। रहने दो पति की बात। बताओ तो, यह मीठी गंध किसकी है श्रीकान्त।

—देखती नहीं हो, वहीं गेंदे और गुलाब के फूलों की—सावधानी से आओ, रेल की लाइन पड़ी है।

शैलबाला ने उसके बायां हाथ को पकड़ा। बोली—बड़ा अच्छा लग

रहा है। कितनी शान्ति है यहां। इतने दिन मैं इधर बहुत स्थानों में घूमी, लेकिन सच कहती हूं श्रीकान्त, आज मेरे मन की रास ढीली मालूम पड़ रही है। तबीयत करती है बैठ जाएं, यहीं नरम घास पर। कुहरा कितना अच्छा लग रहा है। कितना रोमांच है हवा में।

शान्त आवाज़ में निरंजन ने कहा—यहां कोई नहीं है। केवल आकाश, तारे और हम। कैसी आश्चर्यमयी रात्रि है!

शैलबाला ने कहा—उससे भी अधिक आश्चर्यमय है हमारा तुम्हारा मिलना। ग्रह के फेर से अकस्मात् आ गए तुम। कल सूर्य के प्रकाश में शायद इस बात पर मैं विश्वास भी न कर सकूं। चलो, थोड़ी दूर और!

—और आगे जाओगी? उस गांव की तरफ?

—हां, ले चलो। चलो जिधर खुशी हो।

—अगर लौटने में देर हो जाए? अगर वे हमें ढूंढें?

शैलबाला ने कहा—इस समय लौटना अच्छा नहीं लग रहा है। इस रात में बड़ा नशा है। मुझे मोह लिया है इसने। चलो और!

निरंजन ने कहा—आज की रात अवास्तविक है। कल की सुबह भी अजीब होगी। उस दिन मेरी उम्र तुम्हें पहचानने की नहीं थी, आज भी पहचानने के पहले ही तुम चली जाओगी। ग्यारह साल तुम्हें नहीं देखा था। जीवन भर नहीं देखता, तो भी कोई हर्ज नहीं था। परन्तु आज तुम्हें पाकर छोड़ने की इच्छा नहीं होती। आज हम अतीत और भविष्य के सन्धिस्थल पर खड़े हैं।

रेलवे लाइन की सीमा को छोड़ कर वे एक अपरिचित पथ पर उतरे। पथ पर जाना हुआ नहीं। उसकी ज़रूरत भी नहीं। दोनों ओर नागफनी के झाड़। बीच-बीच में मैदान और मैदान में खड़ी प्रहरी की तरह वृक्षों की पंक्ति। दोनों धीरे-धीरे चुपचाप आगे बढ़ने लगे।

कुछ दूर जाकर निरंजन ने पुकारा—शैल?

शैलबाला ने उसकी कमर में बायां हाथ डाल कर कहा—वापस जाने को मत कहो। मुझे नींद आ रही है।

निरंजन ने उसके कंधे पर दाहिना हाथ रख कर कहा—आज तुम दूसरे की हो, तो भी मुझे संकोच नहीं, यदि कहूं—

—क्या? कहो न?

—जो मैं उन दिनों कहना नहीं जानता था, वह अब मुंह पर आ रहा है। कहने में लाज तो आती है, पर और कोई बाधा नहीं है।

शैलबाला ने निश्वास भर कर कहा—देर हो गई है, बहुत। फिर भी यदि तुम कहना चाहोगे तो मैं भी ध्यान से सुनूंगी निरंजन।

निरंजन ने कहा—खुशी के मारे रोना आ रहा है। तुम्हारे केशों की गंध में ग्यारह साल का विरह-संकेत भरा है। मुहब्बत की बात करने की अब उम्र नहीं रही। वह ज्वाला अब शान्त हो गई है। तुम्हारा जीवन भी मातृत्व के प्रवाह से ओत-प्रोत है। हम अब विदेह हो गए हैं, केवल शेष है अतीत की कल्पनाएं।

शैलबाला मृदु स्वर में बोली—बहुत देर हो गई है। किसी दिन न कह सकी, कहा भी नहीं जा सकता कभी। आज उन्हीं बीते दिनों की याद आ रही है। निरंजन जब मैंने अपनी ओर देखना नहीं सीखा था, और दूसरों की ओर देखने की निगाह नहीं खुली थी। उन्हीं दिनों के अचेतन मन के साथी हो तुम। तुमने जानने की इच्छा भी नहीं की थी, मैं भी नहीं जान पाई थी। उसके बाद तो मेरे जीवन का सब कुछ जल कर खाक हो गया। आज तुमको देख कर मुझे मेरी निर्मल प्राचीन आत्मा फिर मिल गई है। उसका शोर कभी नष्ट नहीं होता। निरंजन, आज तुम रूपवान हो—पर उन दिनों का वह दुर्बल बालक ही मेरा प्रिय है, बड़े आनन्द का है। यकीन करोगे इस बात पर?

निरंजन ने कहा—अवश्य। इसीलिए अब नए सिरे से नहीं बताया जा सकता कि तुम मेरी कौन हो। मैं न तुम्हारा भाई हूं, न सम्बन्धी, न पति, फिर भी सब मिला कर तुम्हारे साथ कैसा न जाने गूढ़, अव्यक्त रिश्ता बन गया है।

मुंह उठा कर कांपती हुई आवाज़ में शैलबाला ने कहा—रुकने नहीं दूंगी तुम्हें। कहो, बोलते रहो इस अंधकार में। कहते रहो केवल आज की रात। इन ग्यारह सालों में एक दिन भी तुम्हारी बात नहीं सोची थी। पर आज इस समय तुम्हारे सिवा और कोई बात मन में नहीं आती। तुम्हें देने को कुछ भी नहीं है निरंजन! कुछ ले जाने के लिए भी पात्र नहीं है मेरे पास। फिर भी मेरे हृदय की रक्त-तरंग में जैसे एक बाढ़ आना चाहती है।

दोनों धीरे-धीरे जा रहे हैं। निस्तब्ध रात्रि में, अपरिचित गांव में होकर उनका रास्ता है। खो जाने की चिन्ता नहीं। लौटने की जल्दी भी नहीं है। यह जैसे उनका उत्तरदायित्वहीन, सर्वनाश की ओर ले जानेवाला अभिसार है। मधुर अवसाद और तन्द्रा से दोनों के पैर अवसन्न हो गए हैं। अवचेतन के जाग्रत—स्वप्न और मोह से वे दोनों आतुर हैं। वात्सल्य, पातिव्रत्य, उत्तरदायित्व, कर्तव्य, भय और संस्कार एक ओर, दूसरी ओर हृदय के अब तक छिपे रहे घाव। एक विचित्र नशे के आवेश में थे वे दोनों।

—निरंजन! —उसके बाल खुल गए थे। शैलबाला का शरीर इतना अवसन्न हो गया था, वह पथ पर गिर पड़ना चाहती थी।

मुंह फेर कर अस्पष्ट स्वर से निरंजन ने कहा—क्या ?

—शब्द नहीं निकल रहे हैं। बताओ तो क्यों गला रुंध रहा है।

—समझ में नहीं आता। अच्छा, चलो अब लौट चलें। वह देखो स्टेशन की रोशनी दीख रही है।'

शैलबाला ने जैसे जाग कर एक निर्वाध और आतुर दृष्टि से उस ओर देखा। फिर सिर को एक तरफ झुका कर रुंधे हुए गले से उसने कहा—यदि कोई तुम्हारी निन्दा करे, तो मेरा दोष बतलाना। कहना, मैं ही तुम्हें फुसला कर लाई थी।

निरंजन बोला—चलने में तकलीफ हो रही है? चलो, अभी पहुंच जाते हैं। यह शायद कोई दूसरा गांव है।

शैलबाला ने कहा—निरंजन, कुछ देर और रहने दो अपना साथ!

निरंजन ने पुकारा—शैल!

—क्या?

—क्या हमने बुरा किया?

—नहीं जानती!

—क्या यह पाप है?

शैलबाला ने कहा—आज मैंने तुम्हें अपने बहुत पास पाया। यदि मैं तुम्हें भुलावा देकर लाई हूं, तो मुझे क्षमा करना!

निरंजन ने कहा—मैंने कभी नहीं सोचा था कि हम लोगों में ही दो बालक-बालिका अभी तक बचे हुए हैं।

रास्ते के घुमाव के कारण वे नहीं जान पाए थे कि स्टेशन के एकदम पास आ गए हैं। एकाएक रोशनी और कोलाहल के बीच आकर वे हक्का-बक्का रह गए। प्रकाश की तीव्रता से घबरा कर शैलबाला की इच्छा हुई कि फिर से वह निरंजन का हाथ पकड़ कर अंधकार में भाग जाए। परन्तु अब अधिक समय नहीं था। हाथ की घड़ी में निरंजन ने देखा कि ढाई बजने में अधिक देर नहीं है।

—आंसू पोंछ डालो, शैल! अपना पता मुझे देना। हम स्टेशन पर आ गए हैं!

शैलबाला ने अपने बाल ठीक किए। हँसते हुए, आंसुओं को भी पोंछ दिया। आंचल को ठीक किया। बोली—सोचा था पृथ्वी के दूसरे छोर पर चले गए हैं। पर, हम तो बैल की तरह घानी के चारों ओर ही घूम रहे थे।

निरंजन ने कहा—जल्दी करो, तुम्हारी गाड़ी का समय हो गया।

परन्तु इस कहानी का परिशिष्ट अभी बाकी है, निरंजन नहीं जानता था।

जैसे ही वे वेटिंग रूम के पास आए, पीछे से एक स्त्री रुआंसे गले से चिल्ला उठी—अरे, तुम कहां थे अब तक ? मैं कब से तुम्हें खोज रही हूं। यह कौन है तुम्हारे साथ ?

शैलबाला स्तम्भित होकर खड़ी हो गई। निरंजन भी हतवाक् रह गया। वह स्त्री पास आकर खड़ी हो गई और बोली—मैंने तो इन्हें नहीं पहचाना।

—इनको ? इनको नहीं पहचान पाओगी। ये मेरे मित्र की पत्नी हैं। रुको थोड़ा, मैं अभी इन्हें इनके पति के पास पहुंचा देता हूं। आप आइए, भाभी !

दो घण्टे पहले शैलबाला का निरंजन की स्त्री को देखने का जो आग्रह था, अब उसे उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं प्रतीत हुआ। बात तक न की उससे शैलबाला ने। उसका मुख एकाएक लाल हो गया। अपने मन में उसने एक अजीब तरह की उत्तेजना महसूस की और अपनी झुंझलाहट को दबाते हुए बोली—तब क्यों नहीं कहा था कि शादी कर ली है।

निरंजन ने बुझे हुए गले से कहा—बचपन, कुछ क्षणों के लिए ही सही, फिर न आ सकने के लोभ में।

—सब पुरुष एक ही तरह के हैं। रहने दो, मेरे साथ आने की ज़रूरत नहीं है—यह कह कर, एक बार फिर आंचल से अपने मुंह को पोंछ कर, शैलबाला जल्दी से वेटिंग रूम में घुस गई।

उपनयन

रामपद मुखोपाध्याय

पत्र का वृतान्त सुन सुधामयी का चेहरा हँसी से खिल उठा। बोली—तब तो कल ही चलना चाहिए।

राम बाबू बोले—कल या परसों। अभी तो कितनी चीज़ों का प्रबन्ध करना है—उपनयन की सामग्री, होम के लिए बेल का काष्ठ, धोती, साड़ी, इत्यादि; यों ही जाने से लोग क्या कहेंगे।

सुधा बोली—प्रबन्ध करना क्या है—आज ही सब कुछ मिल जाएगा। दुकानदार को बोल आएं न।

सुधामयी का मन नहीं मानता था। शहर देखने का कौतूहल यद्यपि उसको नहीं था, तो भी पत्र का मर्म जान कर दो दिन के लिए स्थान बदलने की इच्छा मन में बलवती हो उठी थी। सुधामयी ने यौवन के शुरू में ही संसार का बोझ अपने कंधे पर उठा लिया था। काम-धाम एक रफ्तार से चलता, एक तरह की बातचीत होती—यह रोज़मर्रा का ढर्रा उसे स्वाद-हीन लग रहा था। वैवाहिक जीवन के आरम्भ में दो-चार दिन पिता के घर जा, स्थान बदलने और काम-धाम से अवकाश पाने से एक प्रकार का आनन्द उसे मिलता था। उसके बाद भी कभी-कभी दूर-दराज़ देवता की मनौती लिए शोभा-सुषमा निहार अथवा मनोरम गीत-लय की गूंज मन में संजोकर उसका मन प्रफुल्ल हो उठता। अब प्रौढ़त्व के किनारे खड़े होकर इधर-उधर देखने का अवसर जाता रहा और मन में कोई नया रंग नहीं उभरता। पर वैचित्र्य का लोभी मन तो फिर भी कहीं न कहीं जाने के लिए लालायित रहता है और कुछ नया देखने के लिए आग्रह बना ही रहता है। मनुष्य का मन ही जो ठहरा!

राम बाबू बोले—बच्चों को ले चलोगी न?

—अरे! इनको कहां छोड़ जाऊंगी? बच्चे भी तो कहीं जा नहीं पाते, और न कुछ अच्छा खा ही पाते हैं।

राम बाबू बीच में रोकते हुए बोले—घर-बार कौन देखेगा? क्या मेनका?

—तो क्या दो दिन नहीं देख सकेगी वह ? यहां डर भी क्या है ? और मकान के पिछवाड़े तो तमाम लोग बसे पड़े हैं। ज़ोर से जम्हाई लेने भर से ही दौड़ पड़ेंगे।

इसी तरह विधवा मेनका को घर पर छोड़, सूची के अनुसार उपनयन की सामग्री जुटा कर, राम बाबू दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से सपरिवार शहर के लिए रवाना हो गए।

(2)

स्टेशन पर उतरते ही दृष्टि चौंधिया गई—कितनी ऊंची इमारत ? पर मकान के बीच एक भी ऐसी जगह नहीं थी, जहां सुस्थिर खड़े हो सकते। मामूली गठरी-पोटली और बच्चों को ले के खड़ा होने से ही छोटा आंगन भर गया। उपनयन के एक दिन पड़ते ही आत्मीय जनों के आगमन से मकान ठसाठस भर गया था। भोज की बहुलता से बासन-वर्तन इधर-उधर बिखरे थे, अन्न और उपनयन की सामग्री से घर पूरा भरा था।

आंगन में खड़े हो राम बाबू और सुधामयी ने ऊपर की मंज़िल को देखा, मकान देखने के कौतूहल से नहीं, बल्कि इस आशय से कि यदि कहीं कोई परिचित चेहरा हो तो नज़र आ जाए।

एक तल्ले के इस घर में सीढ़ी से जो चढ़-उतर रहे थे, उनमें कोई इनका परिचित नहीं था। उनमें से अधिकांश, अलंकारों से सुसज्जित-सुशोभित लड़कियां थीं, जो फाल्गुन के दिनों में फुदकती तितलियों की तरह थीं—और लड़के गंगा की मछलियों की तरह उछल-कूद मार कर अन्दर से बाहर आ-जा रहे थे। नौकर-नौकरानी का जो काम कर रहे थे, उनका मनोयोग भी इस नवागत दल के ऊपर नहीं बैठा—आश्चर्य ! वरन काम की असुविधा होने के कारण बासन धोने का छींटा लगने पर एक ने कहा—ज़रा हट कर खड़ा हो।

किन्तु वहां से हट कर खड़ा होने की जगह कहां थी ? एक बूढ़ी विधवा भंडार घर से निकल कर सुधामयी को सामने पाकर बोली—तुमको तो पहचान नहीं रही हूं बेटी।

—मैं नारायणगंज से आ रही हूं, मा।

—ओह, मालकिन के पीहर से तुम आ रही हो। तब यहां क्यों खड़ी हो बेटी—ऊपर जाओ, धुर तिमंज़िले पर जहां मालकिन हैं।

अभ्यर्थना भले ही न हो, तो भी यह भला हुआ कि कुछ निर्देश मिला। वाहनी समेत राम बाबू और सुधामयी ऊपर की ओर बढ़े।

(3)

इतने समय शायद सम्पर्क बना ही हुआ था, लेकिन क्रमशः सम्पर्क का बंधन शिथिल होता गया। नारायणगंज से कलकत्ता अधिक दूर नहीं।

किन्तु सम्पदा के सप्त योजन पहाड़ के अन्तराल में उस दूरत्व का परिमाप नहीं होता। याजनिक ब्राह्मण की कुटी और पदस्थ अफ़सर का प्रासाद जाति-गोत्र में स्वर्ग-रसातल की तरह सम्पर्कहीन होते हैं? तो भी बीच में रस्म-रिवाज का सम्पर्क ज़रा रहता है। इसी से निमन्त्रण पत्र के सूत्र से उनको शहर में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस मकान की गृहिणी अपने पित्रालय के सम्पर्कीय लोगों से बिल्कुल विस्मृत नहीं हुई थी। धन-सम्पदा के शिखर पर पहुंचने से पहले जीवन की कई दुरूह सीढ़ियों को भी उन्हें लांघना पड़ा था। तभी तो ऊपर उठ कर भी वे पुरानी नीचे की धमाधम आवाज़ को सुन पातीं थीं। फलस्वरूप ग्रामस्थ या दूरस्थ आत्मीय स्वजन उनके उत्सव, सुख-दुख में निमन्त्रित होते। सभी को भले ही इसका सौभाग्य न मिल पाता हो, पर कुछ को तो अवश्य ही मिलता था।

लाल सीमेंट के फर्श पर पैर पसार कर स्थूलकाय गृहिणी जाने क्या हिसाव कर रही थीं। उनके पास कैश बक्स लेकर बैठी थी एक रूपवती लड़की—और सामने हाथ में एक सूची लेकर खड़ा था एक सुन्दर युवक। राम बाबू उनको पहचानते थे, इसलिए निःसंकोच सीधे घर में प्रवेश कर उन्होंने गृहिणी के पैर छू प्रणाम किया।

—कौन राम? आ गए, बहू, बाल-बच्चों को साथ नहीं लाए?

—वे सब भी आए हैं दीदी।

दीदी ने मुड़ कर देखा—बरामदा भर गया था।

सुधामयी ने गृहिणी का चरण स्पर्श किया—मां का अनुकरण कर बच्चे भी पैर छूकर घर के बीच भीड़ कर खड़े हुए। माथे के ऊपर पंखा चल रहा था, फिर भी मालूम होता था कि बाहर की हवा के साथ जैसे घर की हवा भी असहयोग कर रही हो।

जो लड़की कैश बक्स के पास बैठी थी उठ खड़ी हुई, और युवक ने भी सूची जेब में रख ली। गृहिणी उनके मनोभाव को समझ गला फाड़ कर चिल्लाई—अरी यशोदा, यशोदा! रांड मर गई क्या?

—बुला दे रहा हूं—यह कह युवक भीड़ को चीरता हुआ कमरे के बाहर गया। यशोदा के न आने तक गृहिणी गुस्से में बकबक करती रहीं। सबके सब भीड़ कर कमरे में खड़े थे, इसीलिए वह कुछ अपमान अनुभव कर रही थी।

सुधामयी छोटी बच्ची को गोद में खींच काष्ठवत खड़ी रही। कहां जाए—घर तो अपरिचित, अविनिर्थी ।

यशोदा ने नाक से रोना आरम्भ किया—मेरे कपाल का दोष है मा, अब भी बहुत काम बाकी है।

—अच्छा, अच्छा, अपनी वकालत अपने पास रख। इनके रहने की जगह बना दे, दूसरी मंज़िल में कलधर के पास।

—अरे, वहां तो हितजन हैं, जो कल हज़ारीबाग से आए हैं। और कोई घर खाली नहीं है।

गृहिणी बोलीं—जिस कोठरी में उपला रखा है, वहां कौन है?

—अरे, वहां क्या कम उपला है। सारी कोठरी भरी है।

—नहीं, नहीं, सबको हटा दो। गर्मी के दिन हैं, अभी वर्षा नहीं होगी। यदि हो भी, तो छत के एक किनारे सज़ा कर तिरपाल से ढक देना।

बरामदे से एक पुरानी चटाई खींच लाकर यशोदा बोली—आप लोग आइए।

(4)

ऊपरी मंज़िल के एक छोटे से कमरे के पास सुधामयी बैठ गई। फरफर आती हुई हवा से शरीर का पसीना सूखते देर न लगी। पसीना सूखते ही शरीर ठंडा हुआ। सुधामयी ने राम बाबू से पूछा—क्यों जी, मालकिन के कितने लड़के हैं।

—पांच—राम बाबू ने उत्तर दिया।

—सभी कमाते हैं?

—न कमाते तो घर में इतना ऐश्वर्य होता? बड़ा वकील है, मंझला इंजीनियर, संझला डाक्टर और छोटा एम० ए० में पढ़ता है।

सुधामयी प्रसन्नचित्त हो बोली—अहा, भगवान जिसको देता है छप्पर फाड़ कर देता है। सबकी शादी हो गई है क्या?

—छोटे की अभी नहीं हुई है। किसी भी काज-प्रयोजन में महेश बाबू हमें बुलाने से नहीं चूकते थे, क्या ही भले आदमी थे।

—मालकिन भी बहुत अच्छे स्वभाव की हैं। कैसी खुशमिज़ाज हैं। हम लोगों को कष्ट होगा, इसलिए यहां से उपले निकाल फेंकने का आदेश दिया।

राम बाबू कुछ नहीं बोले—सच पूछा जाए तो इस तरह की अभ्यर्थना की आशा उन्होंने नहीं की थी। जब कभी उन्हें प्रयोजनवश यहां आना पड़ा था तो अधिक न सही, परिमित आदर-सत्कार उनको मिला था। इस परिवार के बीच उन्हें ठौर मिला था और संसार के सुख-दुख की कहानी के आदान-प्रदान में खूब सहज हो कर भाग लेने का सुयोग उन्हें मिला था।

स्वर्गीय मालिक की कोई तुलना नहीं—यह तथ्य राम बाबू एक नहीं सौ बार स्वीकार करते थे। लेकिन ऐसा भी क्या? मालिक के श्राद्ध में जब आए—उस समय भी उनके परिवार के बीच से वे इस प्रकार छत पर निर्वा-

सित नहीं हुए थे। यह ठीक है कि वाल-वच्चों और नाती-नातिनियों से आज सारा मकान लगभग भर उठा है। किन्तु यदि वह अकेले रहते, तो कोई वात नहीं थी। जहां होता पड़ रहते, जो कुछ मिलता खा-पीकर उत्सव में शामिल हो हल्ले-गुल्ले के वीच समय काट लेते। किन्तु वाल-वच्चे तो हल्ले-गुल्ले के प्रवाह में वहते तिनके की तरह भटक नहीं सकते। उनकी भूख-प्यास, समय-असमय की नींद-जाग और नाना प्रकार की कितनी ही ज़रूरतें हैं, जिनके रहते इस जगह में वास करना वड़ा ही दुष्कर है।

सुधामयी की गोद का वालक रोने लगा। वह समझ गई कि वच्चे को भूख लगी है। इसी समय वड़ा लड़का भी, जो शहर घूमघाम कर लौटा था, मा को घेर कर वैठ गया। मा ने उसकी नीरव भाषा समझी। गाड़ी का सफर भी कोई कम नहीं था। नए-नए दृश्य देखने का आनन्द कितना भी क्यों न हो—भूख और प्यास तो यथासमय लगती ही हैं। गाड़ी से आते-आते वल्कि भूख-प्यास ज्यादा ही लगती है। सुधामयी को भी ऐसा लगा कि यदि एक गिलास ठंडा जल मिलता तो कुछ शान्ति मिलती।

उपले हटाते-हटाते यशोदा इस तरफ आई, वोली—हाथ-पांव सिमटा कर क्यों वैठी हो मां—वह टैंक में जल है, मग डुवो कर हाथ-मुंह धो लो, जिससे शरीर सुस्थिर हो जाए।

वाहनी समेत सुधामयी टैंक की ओर अग्रसर हुई।

(5)

हाथ-मुंह धोने से शरीर शीतल हुआ, पर क्षुधा उग्र हो उठी। सुधामयी सोचने लगी, थोड़ा-सा गुड़ और ठंडा जल पीने को मिलता तो तनिक तृप्ति होती। इधर वच्चे भी भूख के मारे हो-हल्ला कर रहे थे। किन्तु सुधामयी की अपनी भूख ही अधिक तीव्र मालूम पड़ रही थी। लेकिन वह कहती तो भला किस से ? यशोदा की भाव-भंगिमा कोई विशेष सांत्वनादायक नहीं थी। इसलिए कोई और उपाय न देख वह राम वावू से वोली—एक वार नीचे उतर कर देखो तो, यदि एक लोटा जल मिल जाए।

राम वावू मन ही मन यथेष्ट गर्म हो रहे थे। सुनते ही विगड़ कर वोले—हूं—काम-धाम वाले घर में लोटा खोजना कोई मज़ाक है। सुधामयी के मर्मस्थल में चोट लगी। सचमुच झंझट उसने ही मोल लिया था। कभी वाहर निकलने की कुवुद्धि उसे नहीं हुई थी, फिर इस वार क्योंकर हुई। लेकिन उसका ही सारा कसूर नहीं था। उसे महसूस हुआ कि उसकी इच्छा को वलवती करने में राम वावू का भी तो हाथ था।

ठीक इसी समय नीचे से मालकिन के गले की आवाज़ सुनाई पड़ी—यशोदा, ओ यशोदा। मर गई क्या।

यशोदा ने त्रस्त हो उपला फेंक कर जवाब दिया—आती हूं मा।

कुछ क्षण पश्चात ही यशोदा नीचे से लौट कर बोली—चलो मा, मालकिन जलपान के लिए बुला रही हैं।

(6)

आंचल में ढेर से आनन्दभोग लड्डू ले सुधामयी छत के ऊपर लौटी। बच्चों को पुकारा। राम बाबू एक कलसी जल लेकर उसी समय दौड़ते-दौड़ते ऊपर आए।

सुधामयी तत्क्षण बच्चों में लड्डू बांटने लगी। आनन्दभोग को दांत से काटते ही राम बाबू चीख उठे—अरे बाबा, यह तो लोहे का गोला है, इसी का नाम आनन्दभोग है?

बड़ा लड़का बोला—रसगुल्ला क्यों नहीं लाई मां?

—रसगुल्ला कल मिलेगा। बड़ा लड़का फिर बोला—वाह, मैंने देखा है भंडारघर में कड़ाह भर रसगुल्ले पड़े हैं। बुआ ने तो उसमें से रसगुल्ले निकाल कर एक महिला और अपने बच्चे को खाने के लिए आज दिए थे।

सुधामयी लड़के पर बिगड़ उठी—दिए तो ठीक किया। तुमको क्या पड़ा है। दूसरे के घर आकर इस तरह चीज़ नहीं मांगनी चाहिए, क्या कभी तुमने रसगुल्ला नहीं खाया?

राम बाबू बोले—लड़का कोई गलत बात तो नहीं कह रहा? सूखे करकरे आनन्दभोग न देकर, यदि एक-एक रसगुल्ला दे देती तो क्या····

—चुप रहिए, यशोदा आ रही है।

यशोदा कोई बेवकूफ औरत नहीं थी। इस घर का हालचाल और हितजनों व आगतों के आदर-सत्कार का तरीका देख कर वह समझ गई थी कि कौन कैसा आया है। छत पर पहुंच कर एक मैला-फटा वस्त्र सुधामयी की ओर फेंक कर बोली—घर साफ कर लो, मुझे फिर दूसरे काम में लगना है, और वहां जो कोने में तिरपाल रखा है उससे ज़रा उपले भी ढक देना।

जब घर साफ कर और उपला ढक कर सुधामयी निश्चिन्त हुई, तब यशोदा आकर बोली—एक बार नीचे चलो मा, मालकिन बुला रही हैं। कह रही हैं—यदि सब मिल जुल कर मसाला कूट लेतीं, तो बड़ा काम हो जाता।

रात्रि को दो बजे तक मसाला कूटते सुधामयी का शरीर क्लान्त हो गया। सभी के अनुरोध पर खाने बैठी, लेकिन अहार में रुचि नहीं रही। कब का बना भोजन बेस्वाद और खट्टा हो गया था। तरकारी पहले ही खत्म हो गई थी। एक-एक मिठाई सबको देने की बात थी, लेकिन रात अधिक हो जाने के कारण मालकिन भंडारघर बन्द कर सो गई थीं।

सुधामयी ने छत पर आकर देखा, सभी कतार बना कर सो रहे थे, किसी को चटाई मिली थी, कोई यों ही धूल में लोट रहा था। काम-धाम की व्यस्तता में इसकी कोई खोज-खबर नहीं ली गई थी कि किसने खाया या किसने नहीं खाया।

(7)

उपनयन की एक प्रचंड तरंग मकान की दीवार से आ टकराई। लड़के, बूढ़े, स्त्री-मर्द सब चंचल हो उठे। सभी एक साथ काम करना चिल्लाना चाहते थे पुरोहित के उच्चारित मन्त्र और होम के धुएं से पूरा मकान गमक उठा था।

ऊपर छत से एक भद्र महिला पुकार उठीं—होम समाप्त हो गया, ब्रह्मचारी को कौन-कौन भिक्षा देना चाहती है।

लोगों के अविच्छिन्न प्रवाह से सीढ़ी पर एक तरंग उठी। नाना वर्ण के, नाना गोत्र के विचित्र वस्त्र-भूषा में सुसज्जित स्त्री-पुरुषों की पदचाप से एक तरंग-सी उठती प्रतीत होती थी। सुधामयी के मन में मानो कुछ खटका, तो भी असंकोच से आंचल की गिरह को एक बार दाहिने हाथ से टटोल वह उस स्रोत में बढ़ चलीं। मुंडित मस्तक, गैरिक वसन पहन कृशतनु लड़का दंड और गैरिक झोली ले घर के बीच खड़ा था। होमाग्नि से उस समय भी धुआं उठ रहा था और गाय के घी की सुगंध से घर की हवा मंथर हो चली थी। घर के एक कोने में मांगलिक द्रव्य सजाए हुए थे। चांदी के थाल में नोट और रुपये-पैसे भरे पड़े थे, और पास ही गेरुआ झोली लिए खड़ा था एक हँसमुख लड़का। ब्रह्मचारी—गले में शुभ्र यज्ञोपवीत, पांव में खड़ाऊं, मुख में संस्कृत शब्द—भवति भिक्षां देहि। सर्व प्रकार सुख विलास समृद्ध सौध के एक सुन्दरतम कक्ष में पुराकालीन उपनयन का अनुवर्तन—खिड़की से देखने लगी सुधामयी।

लड़के के पास गृहिणी खड़ी थी। लड़के के हाथ से लेकर गलीचे के ऊपर सजाकर रख रही थी भिक्षा-उपहार की सामग्री। झोली भारी न हो, इसलिए एक के भिक्षा देने के साथ ही उपहार के सामान को थाल या गलीचे पर डाल देती थी।

क्रमशः भीड़ कुछ कम हुई, खिड़की से हट कर घर के सामने खड़े होने का साहस सुधामयी को नहीं हुआ। उनकी अनभ्यस्त दृष्टि और ग्राम-रीति पुष्ट मन में न जाने कहां एक संशय उठा, लज्जा लगी। नए ब्रह्मचारी को भिक्षा दे, पुण्य संचय की आकांक्षा, संशय और लज्जा के भार से दब गई। यहां एक उत्सव चल रहा था—उपहार में उसकी छाप स्पष्ट निखरती—लज्जा, संशय छोड़ उठना दुष्कर था। आंचल से खुल कर मुट्ठी में बंधा एक रुपया सुधामयी के हाथ में जलता मालूम हुआ।

भीड़ कम हो गई, घर की कई औरतें अब भी वहां खड़ी थीं। उनके चेहरे पर खुशी की छाप थी। उपहार के सामान को गलीचे के ऊपर से उठा-उठा कर देख रही थीं, प्रशंसा कर रही थीं, साथ-साथ हिसाब-निकास भी देख रही थीं।

—यह कैमरा किसने दिया मां? ·········वाह, कैसा सुन्दर शैफर्स का पेन है। रिस्टवाच शायद तुमने दी है मां? ······· नाती को तो उपनयन में ही बहुत कुछ मिल गया, अब उसके विवाह के बाद बहू को क्या दोगी?

एक लड़की झुक कर रुपये-पैसे गिनने लगी। गिन चुकने के बाद बोली—एक सौ निन्यानवे हुए, एक और मिलने से पूरे दो सौ हो जाते—फिर लड़की हंसकर बोली—जो कुछ कहो मां, नाती को जनेऊ देने से लाभ ही हुआ। जो कुछ मिला है, उससे एक और यज्ञोपवीत हो सकता है।

लड़की की भोली बात सुन कर गृहिणी हँस पड़ी। खिड़की से हटकर सुधामयी जाना ही चाहती थी कि मालकिन उसी समय कमरे से बाहर निकली, दोनों का आमना-सामना हुआ।

मालकिन हँसती हुई बोली—भिक्षा दोगी बहू? ठीक तो है—बेखटके चली जाओ। अब समय हो चला है, बिना भिक्षा दिए जल भी तो ग्रहण नहीं कर सकती हो। भिक्षा दे आओ।

सुधामयी का चेहरा उस समय बिल्कुल शुष्क दिखाई दे रहा था। कंठ सूखकर कांटा हो गया था और सारा शरीर जल रहा था। येनकेन प्रकारेण उसने ब्रह्मचारी की झोली में वह रुपया डाल दिया। इसके बाद बिना किसी ओर देखे जैसे-तैसे शरीर को वहन करते हुए तिमंज़िले की सीढ़ी पर आ बैठी। सीढ़ी के पास जल से भरा एक लोटा रखा था। सुधामयी लोटे को उठा कर उसका पूरा जल गटागट एक सांस में पी गई।

अनुवादक : श्री श्रीनिवास

धार

व्यंकटेश माडगूलकर

अधबुना नीला स्वेटर एक तरफ रखी तिपाई पर पड़ा था। पैरों के पास 'टाइम्स' रखा था। सामने की मेज़ पर घड़ी टिकटिका रही थी और अलसाई हुई शालिनी आरामकुर्सी पर बैठी थी। उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। बुनने और पढ़ने में मन नहीं लगता था। नींद नहीं आ रही थी और सुस्त बैठा भी नहीं जाता था।

वह फूलदान के बासी फूलों की तरह दिख रही थी। आरामकुर्सी के नए कपड़े का रंग लाल था और उस पर गहरे नीले रंग की धारियां थीं। गोरी शालिनी सफेद वायल की साड़ी और ब्लाउज़ पहने थी। एक पैर पर दूसरा पैर चढ़ाए, हाथ सीने पर रख कर वह खुले हुए दरवाज़े से सामने देख रही थी।

दोपहर के ढाई-तीन बजे थे। अप्रैल की गर्म हवा के झोंके भीतर आ रहे थे। शालिनी का चेहरा लाल हो गया था। उसकी सरल नासिका पर पसीने की बारीक बूंदें जम गई थीं। सामने का खुला बगीचा और उस पार की नंगी टेकड़ी धूप से चिलचिला रही थी। दरवाज़े के सामने से जो रास्ता जा रहा था, उस पर बहुत देर से सन्नाटा था। आसपास किसी भी प्रकार की आवाज़ नहीं हो रही थी। पड़ोसी भी चुप थे। हाल ही में श्री भिडे बदल कर पूना आए थे। और बहुत कोशिशों के बाद यह घर उन्हें मिला था। डेक्कन जिमखाना के बिल्कुल एक तरफ का यह ब्लाक भी शालिनी को बड़ा लगता था, क्योंकि घर में कोई तीसरा न था। पड़ोसियों से परिचय न हुआ था और श्री भिडे सुबह साढ़े नौ बजे साइकिल पर जाते तो शाम को छः बजे के बाद ही लौटते थे। ऐसी हालत में नवयौवना शालिनी घर में क्या करे? कितना बुने, कहां तक पढ़े और कब तक सोए?

विवाह हुए दो वर्ष हो चुके थे। वैसे श्री भिडे स्वभाव से बहुत अच्छे थे, परन्तु शालिनी जैसा चाहती थी, वैसे न थे। वह बड़ी बोलने वाली और खिलाड़ी स्वभाव की थी, हँसना-खेलना, इधर-उधर आना-जाना

पसन्द करती थी और भिडे जन्म से ही शान्त स्वभाव के सभ्य और बुजुर्गों की तरह वर्ताव करने वाले थे। वे बहुत कम बोलते और थोड़ा ही हँसा करते। शालिनी का चपल स्वभाव उन्हें खटका करता। शालिनी का जब देखो तब झकाझक कपड़े पहन कर घूमने जाना, नाटक-सिनेमा देखना, नरगिस राज कपूर के विषय में बातें करना, होटल में भोजन करना आदि बातें उन्हें पसन्द न थी और शालिनी को यही बातें बहुत अच्छी लगती थीं। वह चाहती थी कि आफिस से आते ही उसका पति उसकी पसन्द का सूट पहने और उल्लास से उसे अपने साथ घुमाने ले जाया करे। रास्ते से चलते हुए एक-दूसरे के शरीर एक-दूसरे को स्पर्श करें। कहीं एकान्त में हरियाली पर बैठ कर दोनों मीठी-मीठी बातें करें। काफी हाऊस में जाकर कुछ नमकीन खाएं। कभी-कभी 'जीवन' अथवा 'लकी' में जाकर भोजन करें। और बेचारे भिडे दिन भर के थके-मांदे घर लौटते, तो उनकी यह इच्छा होती कि जूतों और मोजों के भीतर गर्म हो गए पैरों को मुक्त करें, टाई उतारें, पाजामा और ढीला कुरता पहन कर आरामकुर्सी पर शान्ति के साथ पड़े रहें। बातें करने की उनकी इच्छा न रहती, यहां तक कि अपनी तरुण पत्नी से भी अधिक बातें करने की उनकी इच्छा न होती थी। इधर घर आते ही शालिनी की बक-बक शुरू होती—चाय बनाऊं या काफी ?

भिडे को लगता रोज़-रोज़ यह पूछने की क्या ज़रूरत है, जबकि मालूम है कि मैं चाय लिया करता हूं। चुपचाप चाय बना देनी चाहिए। मुंह से सिर्फ 'हूं' कह कर वे चुपचाप बैठे रहते। फिर रसोई से नाचती हुई आकर शालिनी पूछती—काफी बनाऊं तो कैसा रहे ? मैं चाय पीते-पीते उकता गई हूं। कोई हर्ज है क्या ?

चेहरे को शान्त रखने का प्रयत्न करते हुए भिडे कहते—काफी ही बना लो। क्या हर्ज है ?

फिर वह चट उन्हें चूम लेती और शरारतभरी हँसी हँसती हुई भीतर चली जाती, कोई फिल्मी गीत गुनगुनाती हुई स्टोव में हवा भरती।

चाय-काफी खत्म हुई कि तुरन्त वह घूमने के लिए तैयार हो जाती। तब फिर—

—क्यों जी, आज साड़ी कौन सी पहनूं ? नीली चलेगी क्या ?

—पहन लो न ····

—और ब्लाउज़ ?

—पहन लो कोई भी।

—जो पहनती हूं, वह आपको पसन्द नहीं आता। फिर रास्ते भर कुड़कुड़ाते रहते हो।

—मैं कुछ नहीं कहता। कोई भी पहन लो।

बेचारे भिडे, उन्हें तो जगह से हिलना जान पर बन जाता था। फिर भी वे उठते। शान्तिपूर्वक कपड़े पहनते। यह सब करने में उनमें कोई उल्लास न रहता, बिल्कुल न रहता, शालिनी की दृष्टि से यह बात छिपी न रहती।

वह चट कह देती—आपकी इच्छा घूमने चलने की नहीं है क्या? हां, मैं ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करना चाहती।

—पर कौन कहता है ऐसा?

—कहने की क्या ज़रूरत है? चेहरे से ही लग रहा है।

—क्या?

—मुहर्रमी सूरत बना कर चलने की ज़रूरत नहीं। आप न चलें, मैं अकेली जाकर बाज़ार से सब्ज़ी खरीद लाती हूं।

इतना हो जाता। फिर भी शान्त स्वभाव वाले भिडे नाराज़ न होते थे। धीमी आवाज़ में पत्नी को समझा-बुझा कर वे घूमने के लिए निकल पड़ते। जिन बातों को उन्हें खुद करने की इच्छा न होती, पर जो शालिनी को पसन्द रहतीं, वे बातें भी वे किया करते। उनकी इच्छा के विरुद्ध भी यदि कुछ हो जाता, तब भी क्रोध न कर, दूसरे व्यक्ति के उस प्रकार के व्यवहार का सीधा अर्थ लगाने की आदत उन्होंने अपने आपमें डाल ली थी। शालिनी ज़रा चंचल है, अधिक बातूनी है, बातें करने के लिए घर में दूसरा कोई नहीं है, दिन भर उसे अकेला ही रहना पड़ता है, इसलिए जब मैं घर आता हूं, तो उसका हर्ष विभोर हो जाना स्वाभाविक ही है, इसमें उसकी कोई गलती नहीं है, एक-दो बच्चों की मा बनने पर यह आप ही आप कम हो जाएगा। इस तरह सोच कर वे बहुत नाराज़ न होते थे। फिर भी उनके चेहरे पर अप्रसन्नता के भाव झलक उठते थे। कुछ दिनों से तो आफिस से घर लौटते, तो कपड़े उतारे बिना ही बैठे रहते और शालिनी तैयार हुई कि घूमने के लिए चल पड़ते। कभी-कभी आते ही पूछते—

—जूते उतारूं या घूमने चलना है?

और उनका इस तरह पूछना शालिनी के हृदय में चुभ जाता था। वह बहुत नाराज़ होती। उसे लगता है कि श्री भिडे को उसके साथ घूमना अच्छा नहीं लगता। उसका सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन एक दुखभरी कहानी है। अपने पति के साथ उसकी नहीं पटती। उन्हें उसके प्रति प्रेम नहीं है। वह बड़ी अभागिनी है कि उसे शौकीन, मज़ा उड़ाने वाला, रंगीन, होशियार, खिलाड़ी और उत्साही पति नहीं मिला। और अब जन्म भर यह बेड़ी नहीं तोड़ी जा सकेगी। इस तरह के विचार उसके मन में उठते और उसे स्वयं अपने ही

ऊपर करुणा आ जाती । फिर उदास मन से वह आरामकुर्सी पर बैठी रहती और ऐसे समय उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से आंसू आ जाते....

बहुत कुछ सोच कर अब शालिनी ने रोज़ घूमने जाने का आग्रह छोड़ दिया था । पिछले चार दिनों से उसने श्री भिडे को, जैसी वे चाहते थे, उसी तरह की स्वतन्त्रता दे दी थी। और वह भी नाराज़ न होकर; चेहरे पर नाराज़गी का ज़रा भी भाव दिखाए बिना । उन्हें अच्छा लगता है, इसीलिए वह ऐसा सभ्यतापूर्ण बर्ताव करती थी । वह जानती थी कि इस तरह के बर्ताव से श्री भिडे को सन्तोष प्राप्त होता है।

उस दिन दोपहर को शालिनी इसी तरह बैठी हुई थी । अप्रैल की धूप से सारा वातावरण थका-सा हो गया था । चारों ओर शान्ति फैली हुई थी और उसे भंग करने वाली एक आवाज़ एकाएक उठी—"धा ऽऽ र चाकू-कैंची को धार धरा लो धा ऽऽ····

यह आवाज़ शान्ति को चीरती गई। यों ही बैठी शालिनी का शरीर सिहर उठा ।

चिल्लाने वाले की आवाज़ अच्छी कमाई हुई थी—साफ, जोर की और पतली । भरी दोपहरी में यह पागल व्यक्ति क्यों घूम रहा होगा ? इस समय कोई घर के बाहर भी न निकलेगा । इसे काम देगा कौन ? कौन उठेगा और इसे चाकू-छुरी देगा ?

फिर बिलकुल पास से आवाश आई—"धा ऽऽ र चाकू-छुरी को धार धरा लो धा ऽऽ र।

शालिनी की आंखें रास्ते की ओर अटक गईं और उस तरफ से उसके आने की बाट देखने लगीं ।

और वह आया । पीठ पर धार लगाने की मशीन—शरीर पर सिर्फ एक बनियान और नीले रंग का साफ हाफ-पैंट । पैरों में पुराने सामान की दुकान से खरीदा हुआ मिलिटरी का मोटा जूता । पीठ पर लदे बोझ के नीचे दबा, लम्बे-लम्बे डग भर कर चलते-चलते उसने शालिनी के खुले हुए घर की ओर देखा और सामने ठहर कर पूछा—कुछ है क्या, बाई साहब ! —चाकू, छुरी, कैंची···· ?

शालिनी ने गर्दन हिला कर 'ना' कह दिया। फिर भी वह वहीं खड़ा रहा। थोड़ा आगे बढ़ कर फेंसिग के खम्भे को एक हाथ से पकड़ कर खड़ा रहा ।

शालिनी ने सोचा : मैंने सिर्फ गर्दन से इशारा किया, इससे शायद वह मेरी बात न समझा हो । इसलिए वह आवाज़ ऊंची उठा कर बोली— नहीं, कुछ नहीं ।

इस बीच वह खुले फाटक से भीतर आ गया । दरवाज़े के सामने आया । व्यवस्थित ढंग से उसने पीठ पर लदी मशीन उतार कर नीचे रख दी । और सिर का मुंडासा खोल कर उससे मुंह पोंछते हुए बोला—हा, हा, कैसा धूप का तमाचा पड़ रहा है।

वाहर धूप थी ही । कम्पाउंड के भीतर आया तो धूप में थोड़ी भी छाया न थी ।

उसने बड़े अदब से पूछा—कुछ है क्या, वाई साहव, हंसिया-छुरी ?

—नहीं, रे भाई।

—देखिए, कितनी सुन्दर वना देता हूं ! आपने आज तक दूसरों के काम देखे होंगे। ज़रा मेरा भी काम देखिए।

अन्य फेरीवालों की तरह चिमड़ापन उसमें भी था, परन्तु वह मनुष्य को चिढ़ा देने वाला न था । उसके वोलने का अदव, उसके चेहरे पर की सभ्यता—इसके कारण शालिनी पर एक प्रकार का नैतिक दवाव पड़ा । यह बेचारा भरी दुपहरिया में इतना वोझा लेकर घूम रहा है। इसे दरवाज़े से खाली हाथ कैसे लौटाऊं ? दुख से भीगे स्वर में उसने कहा—पर नहीं है न कुछ।

—तो रहने दीजिए । परन्तु अब जब दोवारा आऊंगा तो आपके यहां का काम ज़रूर मिलना चाहिए, वाई साहव ! हां, काम की तारीफ होगी, ऐसा ही घर है यह।

वह नौजवान था—ऊंचा और गठीला । कड़ी मेहनत करते रहने से उसके हाथ और पिंडलियों के स्नायु सुडौल वन गए थे और उसका लम्वा अधगोरा चेहरा धूप और हवा की मार से झुलस कर वहुत रुक्ष हो गया था ।

अपने पतले ओंठों पर उसने जीभ घुमाई । मुंडासा फिर सिर पर बांधा और इधर-उधर देखते हुए बोला—पानी का नल है क्या वाई वंगले में ?

—हौज़ है। पर उसका पानी अच्छा नहीं है। प्यास लगी है क्या ?

—जी हां, हौज़ किधर है ? पानी खराव है तो रहा आए · · · किधर है ?

शालिनी को जाने क्या लगा । वोली—ठहरो थोड़ा ।

इतना कह कर वह भीतर गई और सुगंधित ठंडा पानी एक लोटे में भर कर ले आई। फेरीवाले ने अपना वर्तन वढ़ाया । ठंडे पानी को गट-गट पीते हुए उसके गले की घाटी हिल रही थी । उसकी ओर देखते-देखते शालिनी को लगा कि इसे कुछ काम देना चाहिए।

और वह भीतर गई। आलू, प्याज़ काटने की छुरी लेकर वाहर आई।

—लो, इसकी धार वना ही दो।

जैसे कोई कांच की चीज़ हाथ में लेते हैं, इस तरह उसने वह छुरी सावधानी से अपने हाथ में ली। उसे उलटत-पलटते हुए कहा—अहा, वड़ी सुन्दर छुरी है, वाई साहव! राजर्स है। देखिए न पढ़ कर। मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं। फिर भी माल हाथ में लेते ही पहचान लेता हूं। दस-वारह रुपये से कम में यह माल न मिलेगा।

उसकी वात सच थी। कीमत और मेकर उसने ठीक वताए थे। शालिनी को ताज्जुव हुआ, जो उसके चेहरे पर उमड़ उठा। चौखट पर हाथ रखे वह खड़ी रही।

—पर धार वनाने का क्या लोगे?

उसके चेहरे की ओर न देखते हुए उसने अदव से कहा—काम देख कर जो ठीक समझें, दे दीजिएगा, वाई, मैं अपना काम साफ करता हूं और दाम वाजवी लेता हूं।

—वाजवी यानी कितना?

—यह क्या आपको वताने की ज़रूरत है? क्या आपने कभी धार नहीं रखाई होगी?

और वह खुद ही खुशी से हंसा। चाक गिर्र-गिर्र घूमने लगा। गर्दन टेढ़ी कर घूमती सान पर वह छुरी की धार टिकाने लगा। चरचर्र-खरंखरं की आवाज़ होने लगी और चिनगारियां उड़ने लगीं। छुरी की धार चमकने लगी।

शालिनी टकटकी लगा कर देख रही थी। उसके खुले हाथ जैसे-जैसे चल रहे थे, वैसे-वैसे स्नायु फूल रहे थे, मुड़ रहे थे। पत्थर पर फौलाद की होने वाली आवाज़ के कारण कभी-कभी शालिनी की देह को झुरझुरी-सी आ जाती। कभी-कभी वह आंखें वन्द कर लेती। धारवाला छुरी को एक वार इस तरफ से और एक वार उस तरफ से पत्थर पर टिका रहा था। धार चमकती जा रही थी।

वीच ही में उसने एक वार धार पर अपनी अंगुली फिरा कर देखा। शालिनी का हृदय धक-से रह गया। परन्तु उसकी अंगुलियों से खून की धार नहीं वही!

घूमती हुई सान पर फिर छुरी रखता हुआ वह वोला—इतना ही घिसना चाहिए जितनी कि धार के लिए ज़रूरत है। सान की घिसाई का पता न चलना चाहिए। हां, वाई साहव, इसी में तो सच्ची कारीगरी

है और धार टूटनी न चाहिए। आप जैसे बड़े-बड़े लोगों के घर यदि काम करना है, तो हाथ में सफाई अव्वल दर्जे की चाहिए, बाई साहब! सिर्फ पैसा लूटने के लिए ही रोज़गार करना ठीक नहीं।

वह बोल रहा था, पर उसकी गर्दन नीचे झुकी हुई थी। आंखें छुरी पर थीं। अन्त में तपती धूप में छुरी की धार से आंखों में चकाचौंध होने लगी।

शालिनी ने पूछा—क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है?

—हुसैन, बाई साहब।

—कहां के हो तुम? यहीं के हो क्या?

—जी नहीं, हैदराबाद में एक गांव है, वहां का हूं।

—फिर इतनी दूर कैसे आए?

—पेट के लिए आना पड़ता है, बाई। यह तो अच्छा है कि अभी मेरे पीछे बीवी-बच्चों का कोई झंझट नहीं है। अकेला राम हूं···।

इस बीच धार हो गई थी। छुरी को कपड़े से पोंछ कर उसने सीढ़ी पर रख दिया। बोला—लीजिए, बाई, अब आप भले ही कागज़ से भी पतली चकती इससे खुशी से काटिए। एकदम तेज़ हो गई है।

शालिनी आनन्द से नाचती हुई भीतर गई। छः आने लाकर उसने हुसैन को दे दिए और कहा—ठीक है?

वह सिर्फ हँसा, मोहक हँसी। शालिनी ने दो आने और उसके हाथ पर रख दिए।

सलाम करके वह खड़ा हुआ। वह भारी-भरकम मशीन फिर अपनी पीठ पर उठाई और भरी दुपहरिया में लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ वह नौजवान और सुन्दर धारवाला व्यक्ति लुप्त हो गया।

दूर से आवाज़ सुनाई दी— धा ऽऽ र चाकू, कैंची, छुरी की धार धरा लो, धा ऽऽ र···।

शाम को श्री भिडे थके-मांदे घर आए और बूट के लेस खोलते हुए कुर्सी पर बैठे। खुला दरवाज़ा धड़ से बन्द कर शालिनी ने उन्हें कस कर अपनी बाहों में भर लिया और उन पर चुम्बनों की वर्षा करती हुई बोली—कब से आपकी राह देख रही हूं आज?

जि़द

बसन्त पुरुषोत्तम काले

मैं इतवार को नौ बजे से पहले कभी नहीं उठता। आज इतवार होने पर भी सुबह सात बजे ही वीणा ने मुझे जगा दिया।

—जल्दी उठिए। पापा जी आए हैं — उसने कहा।

मैं गुस्से में उठा। जिसके प्रति मेरे मन में ज़रा भी आदर या श्रद्धा नहीं, ऐसे इन्सान के लिए उसने मेरी मीठी नींद तोड़ दी थी। पिछले चार साल से पापा कभी हमारे घर नहीं आए थे। मैं अलग रहने लगा, तब से आज पहली बार मेरे घर में आ रहे थे। मां से मिलने के लिए मैं जाया करता था। हम दोनों की आपस में अच्छी बनती थी। वह हमारे यहां पन्द्रह-बीस दिन रहने भी आ जाया करती थी। वीणा को भी वह बहुत चाहती थी। सिर्फ मेरा झगड़ा है पापा से, अपने पिता जी से। आज पहली बार हमारे यहां आए, मगर मुझे उनका आना कतई अच्छा नहीं लगा। फिर भी उनसे मिलना अनिवार्य था, क्योंकि मां बीमार है। वीणा ने कल ही बताया था और कल वह उसकी दवा भी दे आई थी। कुछ खास बात होगी, इसलिए शायद पापा आए हों।

पापा के चेहरे पर परेशानी नज़र आ रही थी। मैंने सिर्फ प्रश्नवाचक दृष्टि से उनकी तरफ देखा। मेरी आंखों से आंखें न मिलाते हुए पापा ने कहा—मुझे कुछ रुपये चाहिएं।

—कितने और किस लिए?—अपनी आवाज़ में हमदर्दी न आने दने की कोशिश करते हुए मैंने कहा।

—पन्द्रह तो चाहिएं ही। तुम्हारी मां की दवा के लिए।— पापा सरासर झूठ बोल रहे थे। उनके हाथ कांप रहे थे। पहली बार झूठ बोलते वक्त इन्सान जैसे घबरा जाता है, वैसे ही वे दिख रहे थे। मेरे खयाल से आज पहली बार और वह भी केवल पन्द्रह रुपये के लिए। इन तीन-चार सालों में वे कितना नीचे उतर आए थे। मुझे उन पर और भी गुस्सा आया। फिर भी मैंने संयम से कहा—मां, मां को दवा कल ही मिली है। कुछ निश्चय से उन्होंने कहा—झूठ बोल कर पैसे मांगने का मेरा इरादा था। लेकिन आज तक मैं कभी झूठ बोला नहीं। अब मैं तुम्हें साफ-साफ बता दूं, डर्बी के टिकट के लिए मुझे रुपये चाहिएं।

—तो आपकी ज़िद अभी तक पूरी नहीं हुई ?

—और लाटरी मिलने तक वह पूरी होगी भी नहीं।—पापा ने जवाब दिया।

—किन्तु इससे क्या लाभ है ?

—इससे कुछ लाभ है या नही, मुझे मालूम नहीं।—पापा ने जवाब दिया—जिसका सारा जीवन पीछा किया, वह केवल दो-चार शब्दों से कैसे छूटेगा।

मैंने और भी चिढ़ कर उनसे कहा—आप मुझसे ही पूछ रहे हैं ? अच्छा मज़ाक है। आपकी तकदीर में यदि पैसा होता, तो पहली बार जब आपने टिकट लिया, तभी आपको मिल जाता। किसी और से पैसे उधार मांगने की नौबत ही न आती। इसी से समझ लीजिए कि आपकी किस्मत क्या है।

मैंने सोचा, शायद पापा चुप रहेंगे। किन्तु, वे मेरी ओर देखते हुए शान्ति-पूर्वक बोले— जिस मोटर कम्पनी में आज तुम अपना सारा स्वाभिमान खोकर लचर जीवन विता रहे हो, मैनेजर बन कर बड़ी शान से घूम रहे हो, उसी कम्पनी के मालिक से पूछो कि इस सदाशिव राव की ज़िद और उसकी तकदीर क्या है। पूछ लो ! मेरे घर के लोग—न तुम, न तुम्हारी मां—मुझे कभी समझ ही नहीं सके। मगर वे मुझे अच्छी तरह से समझते हैं। एक बात और सुन लो। खून-पसीना एक करके भी उसका फल उसी वक्त नहीं मिलता। फिर पहले ही टिकट का नम्बर कैसे आता ? वहां भी तो उचित समय लगता है ?

—सारा जीवन अब खत्म होने का समय आया, फिर भी वह उचित समय नहीं आया।—मैंने गुस्से में कहा।

—बिल्कुल सही। जब मिलेंगे, तब लाखों मिलेंगे।

—अपनी उम्र के बीसवें साल से मैं आपसे यही सुनता आ रहा हूं। इसी-लिए आपकी और मां की कभी बनी नहीं। मैं भी अलग ही रहता हूं, इसका भी आपको कुछ खयाल नहीं? —मैं बोला।

—जो बातें मुझे अच्छी तरह से मालूम हैं, वही फिर से क्यों सुना रहे हो ? मेरी ज़िद अब कोई नई बात नहीं। पैसे नहीं हैं, साफ-साफ कह दो। मैं चला जाऊंगा।

—ठीक है। डर्बी का टिकट खरीदने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं—मैंने निश्चयपूर्वक कहा—आपके सारे कपड़े फट रहे हैं, कोट की तरफ देखा नहीं जाता, धोती तो जगह-जगह······

—कल सात लाख का इनाम मिलने पर भी इस अवस्था में कुछ परिवर्तन नहीं होगा। पैसे के प्रति मुझे कभी प्रेम न था, न रहेगा। मुझे सिर्फ विजय चाहिए।—पापा ने जवाब दिया—लड़ाई चाहिए।

—वह किसके साथ ?

—अपनी किस्मत के साथ। अब सिर्फ उसी के साथ लड़ना है। अगर समानबल शक्तियों में लड़ाई हुई, तो इसमें आश्चर्य क्या है ? अपनी हार होगी, यह जानते हुए भी जो अखाड़े में उतरता है······।

—वह मूर्ख है।— मैंने बीच में ही कहा।

—मंजूर। आज तक यदि मुझे लाटरी मिली होती, तो मेरी इसी मूर्खता की जय के गीत गाए जाते। मैं गुणी इन्सान माना जाता। पराजित व्यक्ति हमेशा मूर्ख ही रहता है।

—इन विचारों वाले व्यक्ति को मोहपाश में बंधा नहीं होना चाहिए। —मैंने कहा।

—अरे, पगले, इस मूर्खता में भी मेरी पत्नी साथ देगी, यही समझ कर मैंने यह पाश-निर्माण किया था। मैं सुधर जाऊंगा या मुझे सुधर जाना चाहिए, यह उद्देश्य मेरे सामने कभी नहीं रहा है।—पापा बोले।

—इसीलिए आपकी यह हालत हुई है।

—हां। वह लड़ने की आदत से हुई है। और मुझे उस पर गर्व है। दुर्बलता से मैं किसी का गुलाम तो नहीं हुआ न ?

—तो फिर यह हालत किस बात की द्योतक है ? जाने दीजिए, मैं व्यर्थ बहस कर रहा हूं आपसे। मुझे आपका मत कभी जंचा नहीं।—मैंने कहा।

—और मैं भी नहीं चाहता कि तुम मेरे मत से सहमत हो। हरेक इन्सान के अपने कुछ मत होने चाहिएं। अपने मतों के लिए चाहे वह कुछ भी करे। मैं जितना ज़िद्दी हूं, उतना ही तुम भी हो, इस पर मुझे गर्व है—पापा बोले।

यह जानकारी मेरी दृष्टि में बिल्कुल नई थी। मैं भी ज़िद्दी हूं ? और यह भी मुझे पापा ने बताया ? इससे भी बढ़ कर उन्हें, इस पर गर्व था ? आश्चर्य है। उनकी ज़िद से मैं ऊब गया था। मगर उन्हें मेरी यह ज़िद बहुत पसन्द आई। मैं फिर से आश्चर्यचकित हुआ था। मुझे आश्चर्य में छोड़ कर वे चले गए।

वैसे देखा जाए, तो उन्होंने मुझे पहली बार आश्चर्य में नहीं डाला था। पहले भी उन्होंने बहुत धक्के खाए और हमें भी खिलाए। कोई भी ज़िद अच्छी हो या बुरी, उसे पूरा करना ही चाहिए, यह उनकी स्थायी प्रकृति है। किसी ने भी उन्हें ललकारा, तो वे उससे टक्कर तो लेंगे ही। इसी ज़िद के कारण अपने पिता जी से लड़ कर उन्होंने अपनी पसन्द की लड़की से शादी की थी। इसी ज़िद के लिए उन्होंने अच्छे वेतन की नौकरी छोड़ दी और व्यापार-धंधा करने लगे। वह भी इसलिए कि एक व्यापारी दोस्त ने चिढ़ाया था— मराठी लोग कहीं धंधा कर सकते हैं ?

बस इसके बाद पापा कपड़ों के गट्ठे सिर पर लेकर घूमने लगे। उनका सब कुछ न्यारा था। कोई भी काम करना है, तो करना ही है। यदि समय आता

तो भूखे रहने की भी तैयारी थी। किन्तु भीख नहीं मांगेंगे। लाचारी से नहीं जीएंगे। और लोगों को उनकी यही बात अच्छी नहीं लगती थी। पापा ने कभी इस बात का बुरा नहीं माना। फिर भी आग तो आग ही होती है। इस आग में मुझे और मां को काफी जलना पड़ा। मां के प्रति मेरे मन में आदर बढ़ गया था, वह इसलिए कि पापा का स्वभाव अच्छी तरह जानते हुए भी उन्हें ज़रा भी धक्का न लगे—इसकी वह हमेशा कोशिश करती थी। ऐसा क्यों है—यह सवाल उसने पापा से कभी पूछा तक नहीं था। जब पापा घर नहीं होते, तब वह अपने दिल का दर्द मुझे वताया करती थी। किन्तु उसने पापा के प्रति कभी तिरस्कार का भाव प्रकट नहीं किया।

पापा पर गुस्सा होते मां को मैंने एक ही बार देखा था। प्रसंग वैसा ही था। और कारण भी कुछ बड़ा ही था। पापा को धंधे में वहुत नुक्सान पहुंचा। उन्हें ज़िद थी, किन्तु धंधे के लिए जिस छक्के-पंजे की ज़रूरत होती है, उसमें वे दक्ष नहीं थे। और अगर उन्हें वह मालूम भी हो, तो उनसे काम लेने की उनकी इच्छा नहीं थी। पहली ही बार चार-पांच हज़ार के व्यापार में अपने सिर पर कपड़ों के गट्ठें ढोकर उन्होंने काफी मुनाफा कमाया और उस दोस्त का मुंह बन्द कर दिया। इसी प्रकार वे हज़ारों रुपये कमा सकते थे, लेकिन तिकड़म से पैसा पैदा करना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। व्यापार करने में भी हम किसी से कम नहीं—यह दिखा कर वे चुप बैठ गए। परिणामतः व्यापार भी गया और नौकरी भी। पापा घर में ही रहने लगे और घंटों सोचने लगे। पर उनक चेहरे से कभी प्रतीत नहीं हुआ कि वे घवरा गए हैं या वहुत परेशान हैं। वे कभी लाचार नहीं हुए।

उन्हें देख कर लगता कि इस आदमी का जन्म केवल ज़िद पूरी करने के लिए हुआ है; इस आदमी को नौकरी नहीं करनी चाहिए और न व्यापार ही। पेट के लिए खून-पसीना एक करना इनका काम नहीं। एक मात्र ज़िद ही वे कर सकते हैं।

जीवन में आप सब तरह का अभिनय कर सकते हैं। किन्तु पास में पैसा होने का अभिनय नहीं कर सकते, उसमें भी मां की बीमारी, मेरी परीक्षा और पापा की बेकारी! पापा कभी खाली नहीं बैठे। वे हमेशा कुछ न कुछ करते थे। किन्तु मासिक वेतन की बात कुछ और है और यह, बीच में ही एकाध दिन के लिए चन्द रुपयों की बात, कुछ और है। हम लोगों के दिल में तो हमेशा डर लगा रहता था कि फिर किसी ज़िद को पूरा करने के लिए कुछ संकट तो उपस्थित नहीं करेंगे।

हां, तो क्या बता रहा था? याद आया। मां को गुस्से में देखा, तब की बात। पेट की बीमारी से मां बिस्तर पर थी। तकलीफ बगैर आपरेशन के दूर नहीं हो सकती थी। मेरी मैट्रिक की परीक्षा सिर पर थी। पढ़ाई के बाद रसोई का सारा

काम मुझे ही करना पड़ता था। उस दिन पापा बाहर जाने लगे, वह भी रात को। सुबह से मां की तबीयत ठीक नहीं थी। बाहर जाते वक्त किसी को टोकना नहीं चाहिए, यह मालूम होते हुए भी मां ने पापा से पूछा—कहां जा रहे हैं ?

—जुआ खेलने।—पापा ने कहा।

पापा का जवाब सुनकर मां और मैं दोनों विस्मित हो गए। पापा और ताश ! खयाल आया, वहां भी लड़ते होंगे, होड़ लगाते होंगे। कोई व्यापारी अपने यश की खूबियां जिस अभिमान से बताता है, उसी प्रकार पापा सुनाने लगे कि ताश कैसे खेलते हैं। 'सीक्वेन्स' क्या होता है। प्वाइंट के पैसे कैसे लगते हैं।

उनके मुंह से ये बातें सुन कर मां अपने को सम्भाल न सकीं, ज़ोर से चिल्लाई—मुझे कुछ मत सुनाइए। आपको तो घर की ज़रा सी भी फिक्र नहीं। आपको तो सिर्फ अपनी ज़िद चलाने से मतलब है और उसी में अपने आपको धन्य मानते हैं। अब जुआ भी खेलिए, क्योंकि वही बाकी था। आज तक मैं कभी कुछ बोली नहीं। सब कुछ चुपचाप सहती आई। अब मुझसे सहा नहीं जाता। पहले मेरी जान ले लीजिए, बाद में आपके जी में जो आए, वह कीजिए।

मुझे लगा था कि शायद इस पर पापा आग-बबूला हो जाएंगे, मगर वे चुपचाप चले गए। फिर मैंने मां से कहा— आज तक तुमने कुछ कहा नहीं। हमेशा सुनती आई हो। अब वे क्या किसी की सुनने वाले हैं ? पहले से ही तुम्हें इतनी नर्मी नहीं दिखानी चाहिए थी।

—ऐसा तेरा खयाल है—मां ने जवाब दिया—मुझे उनका स्वभाव मालूम नहीं ? मैंने उन्हें कभी कुछ कहा नहीं, इसीलिए तो इतने दिन जीवन का रथ चलता आया है। तुम्हारे पापा बहुत अभिमानी हैं। वे मेरा विरोध बर्दाश्त नहीं कर सकते, बल्कि मुझसे भी वे ज़िद करना नहीं छोड़ते और वही बात मुझे टालनी थी। मेरा अपना खयाल है कि जो इन्सान स्वभाव से भावना-प्रधान होते हैं, उनके स्वाभिमान को ज़रा भी आघात पहुंचा, तो उनमें से कुछ लोग तो दिल ही दिल में कुढ़ते हैं और बबूल के पेड़ के समान नीरस जीवन बिताते हैं और कुछ लोग हमेशा चिढ़ते रहते हैं, अच्छे-बुरे का खयाल नहीं करते। बस तुम्हारे पिता जी इन दूसरी तरह के लोगों में हैं। आज पहली बार मैंने उनका जी दुखाया है।

—बहुत अच्छा किया।—मैंने कहा—अगर सच्चे स्वाभिमानी होंगे, तो कल से कुछ न कुछ करके बताएंगे। नहीं तो मैं कहूंगा कि जो ज़िद वे दिखाते हैं, वह भी झूठी है, सिर्फ अभिनय है।

—उनके बारे में यह सोचना ही गलत है—मां ने मुझसे कहा।—उनकी ताकत मैं जानती हूं। सिंह का शौर्य और गरुड़ की उड़ान है उनके पास। सिर्फ

एक ही बात बुरी है उनमें। वह यह कि ज़िद कहां करनी चाहिए और कहां नहीं, इसका उन्हें खयाल नहीं रहता। इसीलिए उनकी सारी ताकत गलत जगह पर खर्च होती है। अभी जिस जुआ के बारे में वे बता रहे थे, वहां भी वे कुछ न कुछ करके दिखाएंगे, सिर्फ समय या मज़े के लिए नहीं खेल रहे होंगे।

दूसरे दिन पापा ने सौ-सौ के दस नोट मां के सामने फेंके और हमेशा की तरह शान्ति से बोले—आज तक तुमने कभी मुझसे कुछ नहीं कहा, कल पहली बार बोलीं। पैसे के लिए ही तुम मुझे पहचानती हो, तो ये लो पैसे।

मां कुछ बोली नहीं, मगर पापा की यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी। गृहस्थी के कर्तव्य को निभाना ही चाहिए। अगर पैसा कमाया, तो इसमें कौन सी बड़ी बात हुई? उस दिन से पापा फिर से कुछ काम करने लगे थे।

मां का आपरेशन हुआ। मेरी परीक्षा खत्म हुई। और नतीजा भी निकला। उसी दिन मां ने मुझसे कहा—तेरे पिता जी क्या करते हैं, यह अभी तक उन्होंने मुझे बताया नहीं और मैंने भी पूछा नहीं है। अब पूछना चाहती भी नहीं। अब मेरी सारी आशाएं तुम्हीं पर हैं। घर में पैसा हमेशा आता रहेगा या नहीं, इसका कोई पता नहीं। तेरे पिता जी कभी-कभी आते हैं और जब दिल में आता है, तभी बाहर चले जाते हैं। मुझे यह भी मालूम नहीं कि अब वे जुआ खेलते हैं या नहीं। मुझे बहुत फिक्र है। अब तू कोई नौकरी ढूंढ ले तो अच्छा।

दो महीनों तक हज़ार कोशिशों के बाद एक मोटर ट्रांस्पोर्ट कम्पनी में रजिस्ट्रेशन क्लर्क की जगह मिली थी। हमारे मालिक के चालीस ट्रक थे। पूना, शोलापुर, बम्बई, कोल्हापुर आदि शहरों से माल आता था। हरेक ट्रक में कितना पेट्रोल लगा, उसके ड्राइवर का नाम क्या था, ट्रक कितने मील चला आदि सारी बातों का हिसाब रखना पड़ता था। नौकरी के तीसरे ही दिन मुझे पता चला कि पूना माल ले जाने वाले ड्राइवरों में पापा का भी नाम था।

उसी दिन कुछ काम से मैं मालिक के घर गया था। कुछ प्यार से मेरी ओर देख कर वे बोले—अच्छा तो सदाशिव राव के तुम सुपुत्र हो। ठीक है, ठीक है. तुम्हारे पिताजी-जैसा आदमी मैंने ज़िन्दगी में आज तक नहीं देखा। अरे बैठो भी, खड़े क्यों हो?—मैं बैठ गया। फिर एक बार वह बोले—बहुत ज़िद्दी आदमी है। बीस हज़ार की रकम कोई मामूली चीज़ नहीं।—मैं कुछ असमंजस में पड़ गया। और उनकी ओर यों ही देखने लगा।

—इसका मतलब तुम्हारे घर में किसी को कुछ मालूम नहीं।— मालिक बोले।

—नहीं तो— मैंने कहा। इस पर मालिक और भी खुश होकर कहने लगे।

—वह बहुत ही महत्वपूर्ण समय था। एक बड़े व्यापारी के साथ सदाशिवराव आए। शुरू में मैंने उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया। बल्कि मैंने कहा—

यह बाज़ी ऐसी नहीं कि कोई ऐरा-गैरा मुझसे खेल सके।—जिस व्यापारी के साथ वे आए थे, उसका नाम था हरिदयाल। उनकी ओर इशारा कर सदाशिव राव ने मुझसे कहा—मेरे हाथों की ताकत और मेरी किस्मत इन्हें मालूम है। हां, तो लीजिए ताश।

—हम लोग खेलने बैठे। सौ रुपयों से शुरुआत हुई। पांच हज़ार रुपयों तक हमने ताश देखे तक नहीं। फिर दस हज़ार रुपये सामने रख कर मैंने पत्ते उठाए। मेरे पास तीनों बादशाह निकले। सदाशिव राव ने भी पत्ते उठाए। उनके चेहरे पर कोई फर्क नज़र नहीं आया। मगर हरिदयाल के चेहरे में एकदम परिवर्तन हुआ। वह झट बोले — मेरे पन्द्रह हज़ार। मगर सदाशिव राव तीव्र स्वर में बोले— पैसे आपने लगाए, पर ताश मेरे हाथ में हैं। पैसे लगाने का अधिकार मेरा है। बस इससे ज्यादा रुपये लगाना मैं नहीं चाहता। सेठ जी चाहें, तो ज्यादा बढ़ा सकते हैं। हरिदयाल ने उन्हें बहुत मनाया, मगर वे कुछ नहीं बोले। मेरे बीस हज़ार कहते ही, उन्होंने पत्ते खोलने के लिए कहा। मैंने बड़ी शान से तीनों बादशाह दिखाए। सदाशिव राव ने अपने कार्ड्स दिखाए। तीनों इक्के थे। उस बाज़ी के भरोसे वे सारी बम्बई खरीद सकते थे। आज मेरी भी जगह ले सकते थे, मगर असली बात तो आगे ही है। बीस हज़ार में-से दो हज़ार लेते हुए वे बोले—अपने इस दोस्त को बताइए कि ऐरे-गैरे ने उन्हें जीत लिया है। मुझे इसमें से सिर्फ दो हज़ार रुपया चाहिए, वह भी अपनी बीवी के आपरेशन के लिए, बाकी आप रख लीजिए।

—क्या आदमी है ? —कह कर मालिक ने बात खत्म की।

मैं अपनी जगह पर वापस आया। मालिक की नज़र में पापा की ज़िद सराहनीय थी। मगर मुझे तो वह सारी मूर्खता ही लगी। उस दिन हम लोग लखपती भी बन सकते थे। मैं बहुत पढ़ सकता था। विलायत भी जा सकता था। पापा की सब लोग तारीफ कर रहे थे, मगर मुझे उनसे घृणा हो रही थी।

कम्पनी में काम करनेवाले भी पापा की तारीफ कर रहे थे। मगर हमारे दिलों की दूरी दिन ब दिन बढ़ती ही जा रही थी। व्यापार जब से शुरू किया था, तबसे क्लर्क की नौकरी अच्छी नहीं लगी। इसलिए उन्होंने ट्रक-ड्राइवर की नौकरी पसन्द कर ली थी। करीम से महीने भर में ड्राइविंग सीख ली। मगर इस बारे में मां को उन्होंने कुछ बताया तक नहीं था। और उन्हें इसकी भनक भी न लगे, इसकी पूरी-पूरी कोशिश की थी। पापा अभी तक जुआ खेलते होंगे, यह समझ कर मां उनसे बातचीत नहीं करती थी। मगर पापा ने उसके बाद ताश को कभी हाथ भी नहीं लगाया।

हम लोग कभी-कभार एक-दूसरे से बात करते थे और वैसे एक-दूसरे

से मिलने का मौका भी कम आता था। मैंने सोचा था कि इस मेहनती जीवन में उनकी लड़ाकू प्रवृत्ति कम हो जाएगी। क्लर्की करने से वे ऊब गए थे। उन्हें कुछ स्वतन्त्रता चाहिए थी। ड्राइवर का काम वे कहां तक निभा सकेंगे, इस बारे में मैं शंकित था। जीवन के चालीस साल व्यतीत करने के बाद उन्होंने उसे नए सिरे से शुरू किया था। पापा के चेहरे पर मैंने लाचारी कभी देखी नहीं। बल्कि वे ज्यादा निश्चयी दीख रहे थे। उनकी आंखों के नीचे गड्ढे पड़ गए थे। मगर उन्हें ट्रक बहुत तेज़ी से चलाने का शौक था। चूंकि मैं सदाशिव राव का लड़का था, कम्पनी में मेरा एक अलग स्थान था। तीन साल बाद मेरी तरक्की हुई और मुझे 'पे क्लर्क' की ज्यादा ज़िम्मेदारी की जगह मिली। पापा को उनका वेतन देते वक्त मुझे कुछ झिझक महसूस होती थी। मगर पापा निर्विकार थे। मैं सोच रहा था, अब पापा का पहले-जैसा जोश नहीं रहा। मगर यह भी मेरा भ्रम ही था।

एक दिन एक व्यापारी को कपड़े की कुछ गड्डियां पूना पहुंचानी थीं। किसी भी हालत में, माल तीन घंटों में पहुंचाना ही था। ड्राईविंग में करीम की बराबरी करने वाला दूसरा कोई और ड्राइवर नहीं था, पर इस वक्त उसने भी अपनी हार मान ली थी। मगर पापा ने वह काम करने की हिम्मत की। इतना ही नहीं, वे करीम से बोले—खाली ट्रक लेकर तुम आगे जाओ। तुम्हारे पन्द्रह मिनट बाद चल कर तुमसे पहले मैं पूना पहुंचूंगा।

उस दिन मुझे बेचैन देख कर मां ने मुझसे बार-बार बेचैनी का कारण पूछा। आखिर मुझे सारी बातें बतानी ही पड़ीं, बीस हज़ार की बाज़ी से लेकर ट्रक की स्पर्धा तक।

—अगर वे ताश खेलना बन्द नहीं करते, तो कोई हर्ज नहीं था। उसमें उनके प्राण संकट में नहीं थे। मगर ऐसी रेस लगने लगी, तो मुझे लक्षण अच्छे नहीं दीखते।—मैंने कहा।

मां शान्तिपूर्वक बोली—बेटा, अभी तुमने इन्हें पहचाना नहीं। अगर वे अपनी रेस पूरी कर सके, तो फिर दोबारा वही बात करने में उन्हें कोई मजा नहीं आएगा।

—लेकिन रेस जीतते-जीतते ही कुछ हो-हवा जाने का तुम्हें भी डर नहीं लगता?—मैंने पूछा।

—नहीं। और डर लगे भी तो किससे कहूं? शादी के बाद कुछ दिनों में ही जब इनका स्वभाव पहचाना, तभी मैंने तय कर लिया कि उनका विरोध नहीं करूंगी। और इनके इस स्वभाव की वजह से जो भी संकट सामने आ खड़ा हो, उसका सामना करने की भी मैंने पूरी तरह से तैयारी कर ली थी। मेरे भी अपने कुछ निश्चित विचार हैं। मैं एक साधारण स्त्री हूं, इससे अधिक मेरे बारे में वे कुछ नहीं जानते

ये सारी बातें मैं तुझे इसलिए बता रही हूं कि किसी भी अच्छी या बुरी स्थिति के लिए मैं हमेशा तैयार हूं, यह तुम जान लो।

और वह रेस पापा जीत ही गए। फिर से वही पुराना जीवन शुरू हो गया था। अब पापा काफी थक गए थे। फिर भी उनमें कड़वाहट कम नहीं हुई थी। मगर अब उनका शरीर अपना और अपने स्वाभिमान का साथ नहीं दे रहा था, इसलिए वे काफी चिड़चिड़े हो गए थे। इस अवस्था में उनकी देखभाल करने की ज़रूरत थी। किसी छोटे बच्चे के समान उन्हें सम्भालना आवश्यक था। मैंने उन्हें सम्भालने की सोची भी थी, मगर होने वाला कुछ और ही था।

मेरे आफिस में किसी दूसरे की गलती से वेतन बांटने में कुछ गड़बड़ हो गई थी। उसका ज़िम्मेदार मुझे ठहराया गया और मेरे वेतन से उन्होंने अच्छी खासी रकम भी काट ली। जाने कैसे, पापा को इस बात का पता लग गया था।

—तेरी कोई गलती नहीं, यह तूने मालिक को बताया ?—उन्होंने मुझसे पूछा।

—नहीं।

—यह तुझे बताना चाहिए था।

—पापा, नौकरी में ऐसे नहीं चलता।—मैंने कहा।

—यह तू मुझे सिखाने चला है ? तुझमें कुछ स्वाभिमान है या नहीं ?—उन्होंने तीखे स्वर में पूछा।

—स्वाभिमान गरीब के वश की बात नहीं है। स्वाभिमान के मायने हैं भूखों मरना।

—छी: छी:। मुझे तुम पर शरम आती है; रोटी के दो टुकड़े पाने के लिए क्या तुम कुत्ते की तरह जीना पसन्द करोगे ?

—मेरे कहने का मतलब यह नहीं। मगर इतनी ही बात पर स्वाभिमान स्थिर नहीं। किसी न किसी दिन सचाई अपने आप सामने आ जाएगी।—मैंने कहा।

—तो सीधे नौकरी छोड़ दे। मगर बगैर किसी वजह के तू यह अपराध अपने सिर पर मत ले।—पापा बोले।

—पापा और कुछ दिन ऐसा करना ठीक नहीं होगा। कुछ खास कारण हैं कि मैं यह नौकरी नहीं छोड़ सकता।—मैंने निश्चयपूर्वक कहा।

—अब मैं समझा। केवल डेढ़ सौ कौड़ियों के लिए तुम यह सर्विस छोड़ नहीं सकते ? मैं तुम्हारा बाप हूं, यह कहने में मुझे शरम आती है।

मैं अपने मन पर काबू नहीं रख सका। मैंने कहा—ज़िद के लिए अपना सब कुछ लुटा देना और अपने आदमियों का बुरा हाल करना ! ज़िद्दी कहला कर भूखे मरने से तो साधारण आदमी कहलाना मुझे ज्यादा पसन्द है। मेरा किसी ने

अपमान किया तो भी मुझे कोई परवाह नहीं, मगर मैं घर के लोगों को भूखा नहीं रख सकता। यही मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

पापा कुछ नहीं बोले। चुपचाप चले गए। उसी दिन मेरे सामने पापा ने मालिक के पास अपना स्तीफा भेज दिया। स्तीफा देते वक्त मेरी तरफ देखा तक नहीं। वह बोले —मेरे स्तीफे से कुछ लाभ नहीं होगा। फिर भी मैं दूंगा। और वह भी सिर्फ इसलिए कि किसी भी अन्याय का प्रतिकार करने की शक्ति आजकल के जवानों में नहीं है। फिर भी वे अपने को 'जवान' कहते हैं। मैं इसका प्रतिकार करूंगा।

मालिक ने पापा को तनख्वाह दे देने के लिए मुझसे कहा और पापा के हाथ में एक लिफाफा देते हुए वे बोले—आपकी किस्मत हम सब लोगों से अच्छी है, इसलिए आपके नाम से डर्वी का टिकट आज तक लेता आया हूं। मगर आपकी किस्मत भी हमारे जैसी ही निकली। यह लीजिए इस साल का टिकट। अब कुछ उम्मीद तो नहीं है, फिर भी अपनी किस्मत को आज़मा देखिए। आज तक आप सबको झुकाते आए हैं। अब किस्मत को भी झुका सकें, तो झुका देखिए।

अब पापा कुछ काम नहीं करते थे। पहले जैसी ताकत भी नहीं थी। जाते-जाते मालिक ने भी उन्हें किस्मत के विरुद्ध ललकारा था, इसीलिए ऐसा लगता था, मानो आग पर मिट्टी का तेल डाल दिया हो। माता जी से अब अच्छे-भले रहते थे, मगर मुझे देखते ही उनके माथे पर बल पड़ जाते। मैं समझता था कि मेरी शादी के बाद उनमें कुछ परिवर्तन होगा। मगर वे मुझसे कुछ और ज्यादा खिचे-खिचे रहने लगे। मां को यह बहुत बुरा लगता था, इसीलिए शादी के बाद मैं अलग रहने लगा था। उसी मोटर ट्रांस्पोर्ट कम्पनी में, मैं मैनेजर बन गया। तब मैंने पापा के लिए मिठाई भेजी थी। मगर पापा ने मिठाई को छुआ तक नहीं। सिर्फ इतना ही कहा—अगर अल्सेशियन कुत्ता हुआ तो क्या, आखिर है तो कुत्ता ही।

दिन-बदिन पापा ज्यादा चिढ़ने लगे थे। इन्सान के साथ ज़िद से लड़ने वाले वे अब किस्मत के साथ लड़ने लगे। मगर शरीर उनका साथ नहीं दे रहा था। मन शान्त नहीं रहता था। वे सिर्फ एक ही समय खाना खाते थे। कपड़ों का खयाल नहीं रखते थे। सिर्फ डर्वी। और उसके लिए ही वे पैसे कमाते थे। बाद में वह लाचार हो गए इतने कि हमारे यहां जो पापा कभी नहीं आए थे, वे उस दिन सिर्फ पन्द्रह रुपये मांगने के लिए आए।

—पापा जी अब काफी थक गए हैं न?—खिड़की से देखते हुए वीणा बोली।

—बहुत।

—उन्हें पैसे देने चाहिए थे आपको।—वीणा बोली।

—जान-बूझ कर नहीं दिए। मैं नहीं चाहता कि उन्हें लाटरी मिले।

मुझे अब उनसे बहुत डर लगता है। लाटरी हाथ लगी, तो शायद उसका शॉक वे बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे—मैंने कहा।

—ऐसा क्यों कह रहे हैं ?

—पहले उनका मन बहुत सन्तुलित था। किसी बात का उनके दिल पर कोई असर नहीं होता था। वे खुशी से पागल नहीं हुए और दुख से कभी घबराए नहीं। मगर अब उनका तन और मन किसी भी प्रकार का सदमा बर्दाश्त नहीं कर सकेगा।

लेकिन हुआ कुछ और ही। किसी ने मुझे बताया, मां का सोने का मंगलसूत्र बेच कर उन्होंने डर्बी का टिकट लिया था। चार महीने बाद मेरे मालिक ने अचानक मुझे बुलाया। बड़े उतावलेपन से वे बोले—तुम्हारे पिता जी ने हमें फिर एक बार पराजित कर दिया है; उनका लाटरी का नम्बर निकल आया। अब आप लोग सात लाख के मालिक हैं। चलिए, आपके घर चलूं। लेट मी कंग्रैचुलेट युअर फादर।

मालिक की मोटर से हम लोग घर पहुंचे। घर में सब कुछ ठीक ही होगा, इसका मुझे भरोसा नहीं था। रह-रह कर मुझे लग रहा था कि या तो खुशी के मारे वे पागल हो जाएंगे या उनका हार्ट फेल हो जाएगा। घर के सामने कार रुकते ही मैं मालिक को लेकर घर में दौड़ा। आज तक कभी हमारी पूछताछ न करने वाले रिश्तेदारों से हमारा मकान भरा था और सामने ही पापा पेपर पढ़ रहे थे। मैं उनसे कुछ पूछने वाला ही था कि अचानक घर में से हँसने की आवाज़ आई और उसी वक्त मां पागल-सी दौड़ती आई। बाकी लोग उन्हें सम्भालने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

—मां—मैं चिल्लाया।

उन्होंने मेरी ओर देखा, मगर मुझे पहचाना नहीं। मैं पापा के पास गया। उनके हाथ में अखबार था और वे न्यूयार्क कपास का भाव देख रहे थे।

अनुवादिका : सुनीता शिरोले

वधू

एस० के० पोट्टेक्काट

बरसात का मौसम अभी-अभी समाप्त हो कर चुका था। सारी प्रकृति धुली-उजली-सी लग रही थी। शाम बादलों में डुबकी मार कर खेल रही थीं।

पट्टापि-कुट्टिपुरम रेल लाइन से मैं गोपी के साथ जा रहा था। दोनों तरफ खेत, जो अनाज की बालों से लदे हुए थे। हरित वनश्री की साड़ी पहने हुए पहाड़ी ढलान, फलों से लदे पेड़ों से भरे बागान, उनके परे चुड़ती-मुड़ती चली जाने वाली नदी का अर्द्धजलमग्न रेतीला मैदान। उन सबकी ओर दृष्टिपात करते और बचपन की भूली-बिसरी बातों को ताज़ा करते हुए हम दोनों चले जा रहे थे।

गोपी तीन महीने की छुट्टी पर मलाया से आया है। आठ साल से वह मलाया में है। वह अच्छा खाता-पीता है। शहर में उसका अपना घर है। मगर उसके परिवार में अब उसके सिवा और कोई ज़िन्दा नहीं। इसलिए घर किराए पर उठा रखा है।

गोपी शादी करने के विचार से मलाया से छुट्टी लेकर आया हुआ है। इसके बारे में मलाया से वह मुझे खत लिख चुका था। मैं उसका बचपन का साथी था और स्थायी रूप से गांव में ही रहता था। खत में उसने साफ-साफ लिखा था कि अब मैं शादी करना चाहता हूं, अपने ही देश की एक लड़की से। तुम्हें मालूम है कि अब देश में तुम्हारे सिवा मेरा कोई संगी-साथी नहीं है। इसलिए तुम्हीं को मेरे लिए एक लड़की चुननी होगी। लड़की में ये गुण हों—रंग पूवन केले जैसा; आंखें बड़ी-बड़ी और काली-कजरारी; नाक ढली हुई। बाल घने बादल जैसे; न लम्बी हो, न नाटी। न मोटी हो, न दुबली; उम्र सत्रह और बीस के बीच; बड़े खानदान व अमीर घराने की न हो। पुनश्च: रंग केले जैसा मिलना दूभर हो, तो कुछ सांवलापन लिए हुए साफ गेहुंआ गोरा रंग भी हो सकता है, लेकिन ऐसी हालत में सिर के बाल घने-घुंघराले ज़रूर हों। बाकी चीज़ें पूर्ववत्।

गोपी का खत पढ़ा, तो मुझे सबसे पहले एक रेलवे स्टेशन का फेरीवाला याद आया जो चिल्ला-चिल्ला कर कहता था—पूवन केला। बढ़िया पूवन केला।

लड़की का रंग पूवन केले जैसा, नाक खड़ाऊं की खूंटी जैसी।

गोपी का खत दो-तीन बार पढ़ने के बाद भी मैं अन्दाज़ा नहीं लगा सका कि

बह इस माडल की सौन्दर्य-प्रतिमा का सपना क्यों देख रहा है। शायद उसका यही उद्देश्य हो कि मलाया के अपने दोस्तों को एक ऐसी 'टिपिकल' मलयाली लड़की को दिखा सके, जिस पर वह गर्व कर सके। तभी तो उसने बाल, नाक, और रंग का खास ज़िक्र किया था। अजीब हसरत है, यार।

इस खत का जो जवाब मैंने दिया था, उसमें दो प्रश्नों का उत्तर मांगा था। लड़की चश्मा पहनती हो, और संगीत की सनक रखती हो, तो क्या कोई उज्र हो सकता है ?

मगर मेरा खत मलाया पहुंचने से पहले ही गोपी मलाया से चल चुका था।

गोपी ने जिस तरह की लड़की चुनने का आदेश मुझे दे रखा था, उसे अंजाम देना साधारण स्थिति में आसान काम न था । मगर इस मामले में मेरे सामने कोई भी कठिनाई पेश नहीं आई। संयोग की बात कहिए, मुझे एक ऐसी रमणी का पता लग गया, जिसमें गोपी द्वारा निर्दिष्ट गुण नब्बे फी सदी लागू होते थे। वह एक किसान की भानजी थी। वह कुंवारी न थी। आठ-दस साल पहले उसकी शादी हो चुकी थी। मगर एक महीना भी नहीं बीता था कि वह अपने घर वापस आ गई थी। पता नहीं, पति ने उसे छोड़ दिया था या उसने पति को। इसके बाद उसने फिर शादी नहीं की। कई साल बीत चले, मगर ज़माने ने उसके अद्भुत सौन्दर्य पर किसी तरह की कलम नहीं फेरी। अगर कहा जाए कि उसकी उम्र अठारह साल की है, तो भी यकीन कर लेना होगा। कुछ लड़कियां होती हैं, जो बेंत की तरह होती हैं। कभी उनकी उम्र का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। मुझे पूरा भरोसा था कि इस लड़की को एक बार देख लेने के बाद गोपी फिर कोई सवाल मुझसे नहीं पूछेगा। लड़की की तरफ से भी किसी तरह के एतराज़ की गुंजाइश नहीं हो सकती थी, क्योंकि गोपी देखने में सुन्दर था। सांवले रंग की दुबली देह; घुंघराले बाल; मगर हां, बाएं कान के ऊपर अकाल वार्द्धक्य के निर्माल्य-पुष्प की तरह कुछ सफेद बाल ज़रूर हैं। नौकरी का यह हाल कि मलाया में किसी ओहदे पर है, नौ सौ रुपये वेतन मिलता है। अपनी कार है। आदमी ज़रा कंजूस है। इसलिए कमाई की रकम भी खासी होगी। और क्या चाहिए ?

हमने इसकी खबर किसी को नहीं होने दी थी कि अमुक तारीख को हम लड़की देखने आ रहे हैं। ऐसे मामलों में पूर्व सूचना न देना ही अच्छा होता है। देखने के बाद लड़की अगर पसन्द न आए, तो घरवालों को बुरा लगता ही है। गोपी से भी मैंने लड़की या घर के बारे में कुछ नहीं कहा था। इतना ही कहा था— पहले तुम लड़की देख लो। पसन्द आने पर बाकी बातें करेंगे।

खेतों में रोपाई हो रही थी। काले रंग की लुंगी और सफेद कुर्ता पहने ग्रामीण मुसलमान औरतें हल्के हरे रंग के पौधों की कालीन पर झुक कर काम कर

रही थीं। कतार में खड़ी उन औरतों को पीछे से देखने पर लगता था कि खेत पर काला पर्दा लगाया गया है।

रेल की लाइन के नीचे खेत की मेंड़ से होकर मुसलमान औरतों का एक जत्था चला आ रहा था। जैसे नववधू को लेकर उसके मायके किसी दावत में जा रही हों। उनके रेशम के गहरे हरे, लाल, पीले, नीले रंगों के कपड़े शाम की सुनहली धूप में इन्द्रधनुष रच रहे थे। अचानक आकाश पर बादल छा गए। धूप फीकी पड़ गई। एक पलित ग्रस्त सी रोशनी लटकती रही।

हम रेल की लाइन के छोटे पुल पर पहुंचे, तो दावत में जाने वाली वे औरतें छाते में मुंह छुपाए, मेंड़ से रेल की लाइन पर चढ़ आईं। वे आगे बढ़ गईं, तो मैंने गोपी से कहा—सगुन अच्छा है। दुलहन को मायके ले जाया जा रहा है।

गोपी चुप रहा।

—इस दल में कुल नौ औरतें हैं। नौ की संख्या सौभाग्य की सूचना देती है— दूर होती हुई उन औरतों की ओर देख कर मैंने कहा।

तब भी गोपी चुप रहा। मैंने उसके चेहरे की ओर देखा, तो सकते में आ गया। गोपी का चेहरा कागज़ की तरह सफेद हो रहा था।

—गोपी! गोपी! तुम्हें क्या हो गया? मैंने उसके कंधे पर हाथ रख कर पूछा।

गोपी अचानक पुल पर बैठ गया, जैसे उसके सिर में चक्कर आ गया हो।

—क्यों, तबीयत खराब है?— मैंने उसके पास बैठते हुए पूछा। गोपी हाथ से सिर थामे चुप बैठा रहा। कोई जवाब उसने नहीं दिया।

थोड़ी देर बाद दूर टीले पर तड़प रहे सन्ध्यातप की ओर ताकते हुए गोपी ने कहा—लगभग आठ साल पहले की बात है, इसी पुल के पास एक ऐसी घटना घटी थी, जिसकी याद करते ही सिर चक्कर-सा खा गया।

—सुनाओ न, क्या घटना घटी थी? —मैंने घड़ी की ओर देख कर कहा। साढ़े चार बज गए थे। निश्चित स्थान पर अंधेरा होने के पहले ही पहुंच सकने के लिए काफी समय था। जल्दी करने की ज़रूरत न थी।

मुझे लगा कि वह घटना गोपी मुझे सुनाना नहीं चाहता था। लेकिन मेरे बार बार आग्रह करने पर वह कहने लगा—मैं बी० ए० पास करने के बाद बी० टी० करने के इरादे से कुछ अरसे तक एक प्राइवेट स्कूल में काम करता रहा। वह स्कूल यहां से दो मील दूर है।

—तुम कुछ अरसे तक स्कूल मास्टरी कर चुके हो, यह मुझे पहले ही मालूम है। मगर यह पता न था कि वह स्कूल इसी गांव का था।— मैंने कहा।

—हां, यहीं का था। मगर उन दिनों तुम गांव में न थे, कहीं बाहर गए हुए थे।

—हां, ठीक है मैं उन दिनों उत्तर भारत की सैर कर रहा था। अच्छा, फिर क्या हुआ।

—मैं दुकान के ऊपर रहता था। अकेला, न किसी से मेल-मिलाप, न किसी के यहां आना-जाना। शाम को स्कूल से छुट्टी पाकर खेतों में घूमता-फिरता या फिर नदी किनारे जा बैठता और शाम के झुटपुट में वापस आता। फिर खा-पीकर स्वामी विवेकानन्द की रचनाएं पढ़ता ········।

—ठीक है। हाई स्कूल, दुकान की छत, शाम की सैर, होटल का खाना और कर्मयोग······इसके बाद? —एक प्रेम-कहानी का आभास-सा पाकर मैंने सोत्साह कहा।

—एक शाम को टहलने निकला, तो रास्ते में एक लड़की को देखा, एक अपूर्व सुन्दरी को। मै देखता हीं रह गया।

आसमान से टूट पड़ी हो!

या धरती पर ही जन्मी हो।—मैंने एक मध्यकालीन वीरगाथा की पंक्तियां गुनगुनाईं।

—हां, अगर उसके सौन्दर्य का वर्णन करने लगूं ····।

—नहीं, नहीं उसका सौन्दर्य-वर्णन कर उसका मूल्य न घटाओ। —मैंने गोपी को मना करते हुए कहा— एक अपूर्व सुन्दरी का रूप मैं मन ही मन देख सकता हूं।

—फिर तो रोज़ शाम को वह रास्ते में दिखाई देने लगी। दीर्घ कजरारी आंखों से जब वह मुझे देखती, तो दिल में कुछ अज्ञात ग्रंथियां पड़ जाती थीं। वह एक अध्यापिका थी।

—तभी तो रोज़ एक ही जगह पर, एक ही वक्त पर और एक ही हैसियत में मुलाकात होती थी।—मैंने बीच में ही टोका—अच्छा, उसका नाम क्या था?

—उसका नाम, अब तक मुझे नहीं मालूम हुआ।

—खैर कोई बात नहीं, फिलहाल हम उसे अज्ञातमोहिनी कह कर पुकारेंगे। इसके बाद?

—फिर रोज़ हमारी मुलाकात होने लगी, जब मैं स्कूल से छुट्टी पाकर टहलने जाता तब वह स्कूल से घर लौटती मिलती। मगर यह मुलाकात आपसी दृष्टि-विनिमय तक सीमित रही। कोई वार्तालाप न हुआ आपस में।

भले ही चुप रहे मिलते
समय ये ओंठ लाचार हो,
चलती थी गुफ्तगू दोनों
तरफ से, नैन से, सैन से।—उन दोनों के नैनों की भाषा पर एक गीत बना

कर मैंने उसी दम गोपी को समर्पित किया।

गोपी ने कहा—एक दिन उसके घर का पता लगाने के खयाल से मैंने उसका पीछा किया। दो-तीन मील दूर चलना पड़ा था।

—उसने पीछा करते समय मुड़ कर क्या तुम्हारी तरफ नहीं देखा था ?——मैंने पूछा।

—देखा था, घर की ड्योढ़ी पार करते समय सिर्फ एक बार मुड़ कर देखा था और वह एकदम अन्दर गायब हो गई थी।

—अगले दिन जब तुम दोनों रोज़ की तरह मिले थे, तो उस वक्त भी क्या उसने तुमसे कुछ नहीं कहा था ?

—नहीं, कुछ नहीं कहा ? रोज़ की भांति उसने मेरी तरफ देखा ज़रूर था। मगर उस देखने में कोई नयापन न था। इस तरह दो महीने और बीते।

—तब भी क्या दृष्टि-विनिमय से आगे न बढ़ पाए।

—नहीं।

खिली ओंठों पे मुस्कराहट

रहे बेकली में दो महीने।—मैंने एक गीत और समर्पित किया। सुन कर गोपी हँस दिया, कुछ न कहा। मैंने एक सिगरेट जलाया।

—फिर कुछ दिन वह बिल्कुल दिखाई ही न दी।—गोपी ने उदास होकर कहा।

—बुरा हुआ— मैंने संवेदना के स्वर में कहा।

—एक रात मैं अपने कमरे में बैठा कुछ पढ़ रहा था। अचानक मैंने पुस्तक से आंखें उठा कर खिड़की के बाहर देखा—जादू भरी चांदनी खेतों में थिरक रही थी। नाले के दोनों तरफ उगे केवड़े के पौधे मस्ती से झूम रहे थे। मन ने चाहा कि ज़रा चांदनी में घूम आऊं। कुर्ता पहन कर बाहर निकल पड़ा।

—खेत से थोड़ी दूर चल कर रेल लाइन पर चढ़ा। अचानक वह लड़की याद आई। सोचा उसके घर तक टहलता चला जाऊं।

—अनजाने ही मेरे पैर आगे बढ़े। मेरा मन-प्राण उसी पर केन्द्रित था। चांदनी में नहाए उसके घर और आंगन को मैं मन ही मन देख रहा था। अब वह सो गई होगी। सोते वक्त वह अपने घने बाल खोल देती है या बांधे रहती है ? क्या वह खुर्राटे लेती होगी ? उसकी कोई धीमी आवाज़ तक मैंने नहीं सुनी। अगर उसका खर्राटा ही एक बार सुन पाता ····।

—कांसे के लोटे में दूध दुहते समय सुनाई देने वाली आवाज़ की भांति—मैंने कहा।

—क्या कहा ? — गोपी ने परेशानी के साथ पूछा।

—कुमारियों के खर्राटे के बारे में तुम कह रहे थे, तो एक छोटी-सी घटना याद आ गई। मैंने सिगरेट का टुकड़ा दूर फैंकते हुए कहा—चार-पांच साल पहले

की बात है। मैं मद्रास जा रहा था। दूसरे दर्जे में काफी भीड़ थी। आधी रात के वक्त किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी, तो थोड़ी जगह लेटने के लिए मुझे मिल गई। लेटते ही सो गया। सपने में मैंने देखा कि मैं किसी गांव के आंगन में खड़ा हूं। सवेरा हो रहा है। वाड़े में एक लड़की गाय दुह रही है। कांसे के लोटे में गाय दुहते समय जो सुरीली आवाज़ निकल रही है, उसे मैं सुन रहा हूं। अचानक मेरी पीठ पर धक्का लगा। मैं चौंक उठा। आंखें खोल कर देखा। आरकोणम स्टेशन पर गाड़ी खड़ी थी। कांसे के लोटे में दूध दुहने का मधुर स्वर उस वक्त भी मेरे कानों में सुनाई पड़ रहा था। मैंने चारों ओर देखा। पास ही वर्थ पर चित सोने वाली एक 'आयंगार' लड़की का मधुर खर्राटा मैं सुन रहा था।

कहानी सुन कर गोपी हँस पड़ा। इतने में दूर से गाड़ी की सीटी सुनाई दी। मद्रास मेल आने का वक्त हो गया था। मैं गोपी को उठाते हुए बोला कि उसे पड़ी-पड़ी खर्राटा लेने दो। गाड़ी आ रही है। हम ज़रा परे हट कर खड़े हो जाएं।

गाड़ी सामने से पुल को डगमगाती चली गई। गोपी ने कहना शुरू किया।—अरे! रेल की लाइन से चलते-चलते ज्यों ही इस पुल के पास पहुंचा, तब···तब···गोपी पुल की तरफ घूरते हुए अचानक रुक गया।

—तब ? तब क्या हुआ ? मैंने उत्सुकता से पूछा।

—तब हुआ यह कि काले भूतों का एक दल खेत की मेंड़ से रेल लाइन पर चढ़ आया।

—काले भूत ?

—जी हां। सिर से पैर तक लम्बा कुर्ता पहने डरावने-घिनौने रूपों का एक दल, कुल नौ थे वे। सब एक ही किस्म के। भरी चांदनी में वे और भी भयावने लगे। वे चुपचाप मेरे सामने आ खड़े हुए। मैं ताकता रह गया। मेरा अंग-अंग ढीला पड़ गया। वे डाकू थे। उनमें से कुछ ने बड़े-बड़े लोहे के लट्ठ कंधे पर आड़े रखे हुए थे। काली नकाबों से उनके चेहरे ढके हुए थे।

—काली नकाबों पर नाक के स्थान पर लगाए गए सफेद जाल से अठारह आंखें मेरी ओर घूर रही थीं।

—कौन हो तुम ?—एक नकाब से गरजती आवाज़ आई।

—तू कहां जा रहा है ?—दूसरी नकाब ने दहाड़ा।

अब अपनी स्थिति का मुझे सही पता लगा। क्या जवाब दे सकता था मैं ? वहां के किसी भी स्थान का नाम मुझे मालूम न था। झूठ-मूठ कुछ कहता, तो वे मुझे जान से मार डालते। मैंने सोचा कि उनको मैंने ऐसे वक्त देख लिया बस यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है। यह लोहे का लट्ठ अभी मेरे सिर पर पड़ेगा और अगले क्षण मैं लोथड़ा बन ज़मीन पर लोट जाऊंगा। मेरी लाश उठा कर वे पटरी पर आड़े रख जाएंगे। सवेरे की गाड़ी उस पर से गुज़र जाएगी। मेरा जिस्म

दो टुकड़ों में कट जाएगा। कल उसे देख कर लोग समझेंगे कि कोई अभागा गाड़ी के नीचे आ गया। पता नहीं कौन ? शायद वह लड़की भी स्कूल जाते समय लाश देखेगी। देखेगी और घृणा से मुंह फेर कर चली जाएगी। ऐसी तरह-तरह की चिन्ताएं, विद्युत की भांति पल भर में मेरे मन में चमक उठीं।

इतने में एक नकावपोश ने हाथ आगे बढ़ा कर मेरे सर पर बंधा कपड़ा एक थप्पड़ से हवा में उड़ा दिया।

—काफिर है।—उसने कहा।

—कहां जा रहा है ?

अचानक दो मील दूर के एक गांव का नाम मुझे याद आया। मैंने वही नाम बता दिया। सोचा कि अब सवालों की बौछार होगी कि क्यों जा रहे हो, किसको देखने जा रहे हो, तो मैं बुरी तरह फंस जाऊंगा।

इतने में एक नकावपोश आगे बढ़ आया और मुझे अच्छी तरह देखने-भालने के बाद बोला—जाने दो यार। मेरे बेटे का मास्टर है।

इस 'मृत संजीवनी' मन्त्र पढ़ने वाले नकावपोश की तरफ मैंने ध्यान से देखा और मैं अपनी क्लास के हर माधिका (केरल के मुसलमान माधिका कहलाते हैं) छात्र का चेहरा याद करने की चेष्टा करने लगा।

—अच्छा तो, चला जा—किसी ने कहा।

—ले, यह भी ले जा—कह कर उसने नीचे पड़ा कपड़ा पैर से उठा कर सामने फेंक दिया।

मैं कपड़ा उठा कर उसी रेल की लाइन से आगे बढ़ा।

—नायर छोकरा कहीं अपनी माशूका से मिलने जा रहा है।—पीछे से किसी ने टिप्पणी की। साथ ही सबके, मिल कर ठहाका मारकर हँसने की आवाज़ गूंज उठी।

—अच्छा, अब हम भी चलें।—घड़ी देखते हुए मैंने कहा। उस समय पांच बज रहे थे।

गोपी मेरे साथ दो-चार कदम आगे बढ़ा। फिर मुड़ कर उसने उस पुल की तरफ देखा। सिगरेट का टुकड़ा जल कर वहां छोटा-सा राख का ढेर बन कर धुआं उड़ाता हुआ छोटे नकाब की तरह पड़ा था।

थोड़ी दूर पहुंच कर मैंने गोपी से पूछा—उस रात को तुम ने फिर क्या किया ?

गोपी ने कहा—मैं बराबर आगे चलता गया। वापस जाना खतरे से खाली न था। अगर फिर नकावपोशों से मुलाकात हो गई, तो जान की खैर नहीं। मैं मौत के मुंह से बच निकला था, इसलिए खुश था। मैंने निश्चय किया कि मैं अपनी यह नई ज़िन्दगी उस लड़की को समर्पित करूंगा। मेरे दिल में मालूम नहीं कहां से अपूर्व साहस का संचार हो गया, जो मुझे बराबर आगे धकेले जा रहा था।

मैंने निश्चय किया कि मैं उसके घर जाऊंगा, दरवाज़ा खटखटाऊंगा। घरवाले दरवाज़ा खोल देंगे। मैं उनसे कहूंगा कि मैं डाकुओं से बच कर आ रहा हूं। आज रात के लिए मुझे वहां आश्रय चाहिए। वह लड़की भी सब सुनती सबके पीछे खड़ी होगी। खुले बाल, करुण आंखें— इस तरह के खयालों में खोया, मैं बहुत दूर चला गया।

रेल लाइन से उतर कर तंग रास्तों से होकर मैं उस लड़की के घर के सामने-वाले खेत में पहुंचा और मैंने सामने देखा। भ्रम हुआ कि मैं कहीं सपना तो नहीं देख रहा। घर का आंगन नीली रोशनी में डूबा था। लोग इधर-उधर व्यस्त से भाग रहे थे और ज़ोर-ज़ोर से बातें, चीखें, ठहाके चल रहे थे। किसी की शादी हो रही थी। थोड़ी देर, मैं दूर से देखता रहा। फिर साहस करके घर की ओर बढ़ गया। मेरी तरफ़ किसी ने ध्यान न दिया। मैं भीड़ में शामिल हो गया और मैंने झांक कर विवाह-मंडप की तरफ़ देखा। दीपों के सामने खड़ी हुई वह लड़की एक अधेड़ उम्र के पुरुष के गले में माला पहना रही थी। लोगों ने अनुमोदन करते हुए तालियां बजाईं, तो मैंने भी उनका साथ दिया।

—भोजन के लिए पत्ते बिछाए गए, तो एक व्यक्ति ने पीछे से आकर कहा—आइए, खाने का समय हो गया।

—मैं पहली कतार में ही खाने के लिए बैठ गया। मुझे इतनी भूख लगी थी कि इच्छा हुई कि शादी के लिए बनाया हुआ पंडाल ही निगल जाऊं।

इसके एक महीने बाद मैं मलाया चला गया।

गोपी की आत्मकथा का उत्तरार्ध मैं ध्यान से सुन नहीं रहा था। हालांकि हां-हां करता जाता था। कारण, मेरे मन में सन्देह होने लगा था कि मैं गोपी को कहीं उसकी उसी पुरानी प्रेमिका के पास तो नहीं ले जा रहा। मुझे मालूम नहीं था कि वह लड़की विवाह के पहले अध्यापिका रह चुकी थी या नहीं। मगर भावी वधू का वर्णन करते समय मानो उसी का रूप गोपी के मन में था, ऐसा मुझे लगा। और मैं चाहता था कि मेरा सन्देह सच निकले। मगर उस वक्त मैं गोपी से कुछ न बोला। सोचा कि अभी कह दूंगा, तो सारा मज़ा किरकिरा हो जाएगा।

हम रेल की पटरी से एक तंग रास्ते की ओर मुड़े, तो सांझ हो चुकी थी। गोपी ठिठक कर खड़ा हो गया, पूछा—तुम मुझे कहां ले जा रहे हो यार?

मैंने कहा—घबराओ नहीं, चुपचाप आ जाओ मेरे साथ।

तंग रास्तों का सिलसिला खत्म हुआ, तो हम एक खेत पर पहुंच गए। वहां से सामने वाले घर की तरफ़ बढ़ने लगे, तो अचानक एक असाधारण उज्वल रक्तिम प्रकाश देख कर ठिठक गए। लोग इधर-उधर मूक निश्चल खड़े थे और घर के दक्षिण की ओर एक चिता जल रही थी।

एक वड़ा सा रस्सा कुंडली वना कर वाएं कंधे पर रखे और लोहे का सलाख हाथ में थामे एक नाटा, तगड़ा-सा आदमी मैला-छोटा कपड़ा पहने हमारी तरफ आया। नारियल के पेड़ों पर लोहे की सलाखें वांधने वाला लगता था (जिससे कि घर के सामने झुके पेड़ के हवा से गिरने पर भी वह घर पर न पड़े)।

प्रकाश की ओर इशारा कर मैंने उससे पूछा—किसकी चिता है वह ?

—वहां के गृहस्थ की भानजी थी। वेचारी को कोई वीमारी न थी। सवेरे अचानक...... ।—उसने कहा।

मैंने गोपी की तरफ देखा। गोपी टकटकी वांधे उस चिता की ओर ताकता खड़ा रहा।

चिता के नीचे अंगारों में कुछ लाल-लाल रेखाएं-सी चमकती-वुझती जा रही थीं। धुआं घुमड़-घुमड़ कर ऊपर उड़ता जा रहा था— जैसे कोई अदृश्य हाथ किसी को वालों स पकड़ कर स्वर्ग को उठा ले जा रहा हो।

अनुवादक : लिल्ली वर्मा

ज़मीन का प्यासा

पी० सी० कुट्टीकृष्णन

सेंट्रल जेल के बाहर, उसकी बड़ी दीवार के सहारे वह बुड्ढा डगमगाता चला जा रहा था। उसकी उम्र सत्तर साल से ज्यादा होगी। माथा चौड़ा, जिस पर झुर्रियां पड़ी थीं। भौओं के बाल पके और घने, नाक लम्बी, गालों पर बुढ़ापे ने दरारें बना रखी थीं। अधनंगी; ढीले धनुष की डोरी जैसी मांसपेशियां शिथिल हो, लटक रही थीं। पसीने की छोटी-छोटी बूंदें, बढ़ी हुई दाढ़ी पर गिर रही थीं।

धूप क्या थी मानो चिनगारियां बरसती थीं। ऐसी कड़ी धूप में वह डगमगाता चला जा रहा था। नीचे उबलती धरती थी, ऊपर जलता सूरज। कहीं छाया का निशान तक नहीं था। कौओं तक को बैठने के लिए छाया नहीं थी। वे कहीं दूर एक बरगद की डालियों पर बैठे 'कांव-कांव' कर रहे थे।

बूढ़ा कांपता, डगमगाता आगे बढ़ रहा था। कमर की लुंगी फटी-मैली, हवा में फर्रा रही थी। कभी उसका छोर पसीने से तर उसके पैरों पर चिपट जाता। तब वह ज़रा रुक जाता। और ऊपर देखता, घबराया हुआ-सा। गले से सिसक-भरी, कराहने की आवाज निकल पड़ी—मे. . . . . रा. . . . . . बे. . . . . टा।—फिर वह पहले जैसे डगमगाता आगे बढ़ता।

तीन दिन से वह इस तरह चल रहा था। बहुत दूर किसी गांव से सुबह तड़के वह निकल पड़ा था। खेतों और नालों के पार, उसे कांपते-डगमगाते चलते लोगों ने देखा तो पूछ बैठे—कहां निकले, अली काका ?

उसने उनको जवाब नहीं दिया था या उनका सवाल ही नहीं सुना था।

उसके पैरों की आहट से चिरपरिचित धरती ने भी मानों पूछा—कहां जा रहे हो, मुझे छोड़ कर ?

बुड्ढे ने न किसी का सवाल सुना, न किसी को जवाब दिया वह आगे बढ़ता ही रहा। कोई आवाज उसके कानों में घुस नहीं पाती थी। उसका अन्तरंग ऐसा दहक रहा था, जैसे किसी आलीशान मकान को आग लग गई हो। स्मृतियां, आशाएं, प्रतीक्षाएं—सब कुछ जल कर राख हो रही थीं। केवल दुख-दर्द का घना धुआं चारों ओर फैल रहा था। सारे वातावरण में अंधेरा छा रहा था। उसके

बीच में एक नन्हा-सा मुखड़ा मात्र, ध्रुव के समान, अली की आंखों के सामने चमक रहा था ।

वह बूढ़ा अतीत की गुत्थियों में उलझ रहा था । उसे अब भी याद है कब उसके बाप ने खेती शुरू की थी । अली उस समय नादान लड़का था । बैलों को चराता, उनके लिए घास-फूस काट लाता और दुकान से चीज़ें खरीद लाने में मां की मदद करता । यह सब उसका काम था । जब कभी मौलवी तंग करता, तो वह कुरान शरीफ पढ़ने जाता । उसके बाप का काम गाड़ी चलाना था । धीरे-धीरे उसने उस पहाड़ी के तले थोड़ी ज़मीन लगान पर ले ली । लोगों ने राय दी, वह पागल हो गया है । उस पथरीली ज़मीन पर वह किस हाथी को पैदा करने वाला है ? यह सुनने पर भी उसका बाप न विचलित हुआ, न शंकित । उन लोगों को जो जबाब उसके बाप ने दिया था, वह अब भी अली के कानों में गूंज रहा था—अरे, मिट्टी और इन्सान ठीक करने पर ठीक हो जाएंगे ।—और उसने जो कुछ कहा, करके दिखाया ।

गाड़ी का काम पूरा कर, वह जल्दी ही घर पहुंचता, बैलों को दाना-पानी देता, तब तक उसकी बीबी थोड़ी 'कंजी' (चावल का पानी) ले आती । उसे पी लेता और कुदाल कंधे पर रख ज़मीन की तरफ़ जाता । जब तक अंधेरा नहीं होता, वह खोदता ही रहता । जहां पहले कुदाल न लगता था, अब वह ज़मीन नरम पड़ने लगी । बीज बोया गया । कोंपल निकलने लगीं ।

पहली कटाई का दिन अली को अब भी याद है । उसकी मां खुशी के मारे उछल पड़ी थी और बोली—जो मेहनत करेगा, उसे खुदा क्यों नहीं देगा ?

'जन्मी' (ज़मीदार) को लगान का धान देने के बाद, जो कुछ बच जाता था, उससे उस परिवार का गुज़ारा मुश्किल से साल के चार-पांच महीने तक हो जाता । उसके बाद पुआल को कटने से जो धान मिलता उससे एक और महीने तक अली की मां किसी न किसी तरह खींच लेती । उसके बाद के दिन गाड़ी चलाते-चलाते गुज़ारा करना पड़ता ।

अली जब सयाना हो गया तो उसके बाप को ज़रा चैन मिला । क्योंकि खेत में मेंड़ लगाने में और हल जोतने में एक सहारा मिलेगा ही । दोनों ने मिल कर मेहनत करना शुरू किया । अली तीन मील दूर जंगल में जाता, और खाद के लिए पौधा वगैरह काट, सिर पर लाद कर ले आता । गोबर और राख जमा कर ले आता । धीरे-धीरे उन लोगों की मेहनत से ज़मीन उपजाऊ हुई और पैदावार भी बढ़ने लगी । अब करीब साल के आठ महीने का गुज़ारा हो जाता था । अब भी अली को याद है, जो हरे-भरे खेत को देख कर उसके बाप ने कहा था—यही ज़मीन बच्चों का सहारा बनेगी ।

बाद में दोनों ने मिलकर और भी ज़ोर से मेहनत की । अली की मां ने

भी छोटी-मोटी मदद दी। ज़मीन ऐसी उपजाऊ हुई कि साल में एक के बदले दो बार फसल तैयार होने लगी। तब 'जन्मी' की आंखें खुलीं और मांग पेश की कि लगान और बढ़ाओ।

यह सुन, अली को अब भी याद है, उसे बेहद गुस्सा आया था। और बोला—ज़मीन परती पड़ी थी, किसी ने मेहनत की और उस पर दो-तीन दाने ज्यादा पैदा किए, तो 'जन्मी' कहां से टपक पड़ा लगान बढ़ाने?

मगर बाप ने उसे समझाया—ऐसा मत कहो। वे जैसे कहते हैं, हमें करना चाहिए। अगर यह ज़मीन भी नहीं होती तो हम क्या करते। और खुदा ने चाहा तो बनते-बिगड़ते कितनी देर लगती है?

यह दार्शनिक तत्व अली को पसन्द नहीं आया था। मगर फिर भी वह अपने बाप के खिलाफ चलने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए दोनों से जितना लगान 'जन्मी' ने मांगा, उसके लिए करारनामा लिख कर दे दिया।

'जन्मी' बहुत खुश हुआ। करारनामा अपने हाथ में लेते हुए बोला—देखो, अली! असल में इसकी ज़रूरत नहीं? मैं सब जानता हूं, तुम वफादार हो, ईमानदार, नेक हो। फिर भी दुनिया क्या कहेगी? यह मुझे देखना है न?

इस पर अली का बाप भी खुश हो गया। बात तो बिना किसी झगड़े के पूरी हो गई थी। वह बराबर खेती करता रहा और लगान चुकाता रहा।

चार साल गुज़र गए। पांचवें साल के आखिर में अली का निकाह हुआ। मां और बाप बूढ़े हो रहे थे। घर सम्भालने के लिए कोई चाहिए था। निकाह के दूसरे साल ही अली की बीबी ने एक बच्चे को जन्म दिया।

खुशी के वे दिन याद आते ही, अली की आंखें डबडबा आईं। और आंसू छलकने लगे।

अली का बाप हमेशा बच्चे को गोदी में ले लेता और पुचकारता—दादा का प्यारा बच्चू...है न तू? ...ज़रा मुस्कराओ तो ...अरे, इसका पेट तो देखो...बिल्कुल खाली...तुझे दादा देगा...।

उस घर के अन्दर लाड-प्यार का वातावरण था; अली को उस कड़ी धूप में भी याद है। बाप को यह कहते उसने कई बार सुना था—अरे, इसे बड़ा होने दो, सब कुछ ठीक कर देगा।

यह सुन कर अली के ओंठों पर हल्की-सी मुस्कान फैल जाती, और जैसे अनसुनी करके बाहर चला आता। उसकी बीवी तो दरवाज़े की आड़ में खड़ी दिल भर के सुनती।

इस तरह लाड-प्यार में पालने-पोसने के बाद आखिर हुआ क्या?... उफ़। यह विचार आते ही अली का दिल फट-सा जाता है। गले तक जलन का-सा अनुभव होता है।

दोपहर की धूप तीक्ष्ण होती जा रही थी। फिर भी अली चलता जा रहा था। खड़ा नहीं हो पा रहा था, इसलिए वह चल रहा था।

एक साल बाद अली की बीबी ने एक बच्ची को जन्म दिया। वह डेढ़ साल की हुई तो एक और बच्ची को उसने जन्म दिया। एक साल के बाद एक और बच्ची को। इस प्रकार वह एक लड़के और तीन लड़कियों की मां बन गई। परिवार की सीमा बढ़ी मगर कमाई उतनी ही रही। मेहनत करने वाले कम थे और खाने वाले ज्यादा। फिर भी अली ज़रा भी निराश नहीं हुआ। फौलादी शरीर था उसका। मेहनत करने की क्षमता भी थी और वह यह भी जानता था कि अगर काम न किया गया तो भूखों मरेंगे। खेत को और चौड़ा कर दिया। घर के चारों ओर ज़मीन थी, वहां भी शाक-सब्ज़ी पैदा करने लगा। ऊपर से गाड़ी चलाने भी जाया करता। इतनी मेहनत करने पर ही, वह उस बड़े परिवार और बैलों को ज़िन्दा रख पाया, यह अब अली याद करता है।

—इतनी मेहनत करेंगे तो कितने दिन चलेगा—अली को उसकी स्त्री कभी-कभी ताकीद करती। अली को मालूम था कि उसकी स्त्री भी घर में सुस्त नहीं बैठी थी। वह सवेरे से शाम तक चींटी की तरह काम करती। परिवार सम्भालने का सारा बोझ उसके कंधों पर था। एक दिन वह अपने पति से बोली—देखो, गिर जाओगे तो यह सब कुछ ढह जाएगा। समझे कि नहीं।

उस दिन अली ने अपनी बीबी की बात न सुनी थी, न मानी था। परिश्रम, हरदम परिश्रम—यही उसकी एक मात्र धुन थी। इसमें वह सफल भी हो जाता था। मगर इसी बीच एक और बला आ पड़ी। 'जन्मी' बदला। उस पुराने खानदान की आलीशान इमारत गिर पड़ी और इसके बदले सोलह छोटे-छोटे घर बने। उस परिवार के सब के सब व्यक्ति सुस्त और शौकीन निकले। अपनी पुरानी परम्परा के बारे में शेखी बघारने में वे होशियार थे। मगर काम करने में पीछे। ऐश-आराम में तो सबसे आगे। भोग-विलास की सामग्री से घर भर गया। सब के सब हमेशा मोटर साइकिल पर सवार। इधर से उधर, उधर से इधर। ज़मीन जायदाद थोड़ी-थोड़ी करके दूसरों के हाथों में जाने लगी। आखिर उनकी सारी सम्पत्ति का स्वामित्व मुहम्मद हाजी के हाथ में आ गया, जिसने लकड़ी का व्यापार करके पैसा जमा किया था।

जब 'जन्मी' बदला तो अली बहुत दुखी हुआ। वह बोला—बुरा हुआ एक पुराने परिवार का नाश हो गया।

यह बात उसके बेटे को पसन्द नहीं आई। वह बोला—अब्बा, वह क्यों? अब तो हमारे 'जन्मी' एक मुसलमान हैं न?

—मुसलमान होने से क्या? लगान तो देना ही होगा?

—अपने आदमी को देने में ज़रा आगा-पीछा हो सकता है न ? बेटे ने प्रतिवाद किया।

बाप-बेटे के बीच में इस बातचीत को हुए एक सप्ताह भी न गुज़रा था कि हाजी ने अली को बुला भेजा। नए मालिक से मिलना ज़रूरी है, यही बेटे का विचार था। इसलिए अली, गठिए से परेशान अपने बाप के पास गया।

—जाओ बेटा, वह हमारे मालिक हैं न ?

अली अपने नए मालिक के पास पहुंचा। सिर खुजलाता वह हाजी के सामने खड़ा हो गया।

—क्यों, अली ?

—बुला जो भेजा था।

—ओ ! उसी के लिए। —हाजी ने धीरे से कहना शुरू किया—उस ज़मीन की बात करने के लिए हमने तुमको बुला भेजा था।

—पहले जैसे हम लोग चलने को तैयार हैं—अली ने मंज़ूर किया।

हाजी चुरुट की राख शान से झाड़ते हुए बोला—वह तो तुम करोगे ही, मैं जानता हूं। म-ग-र हमने इतना सारा पैसा इसमें इसलिए लगाया कि दो-चार पैसे ज्यादा मिलें। क्यों ? समझे ?

—मेरे पास धान का एक कण भी नहीं बचा है, सरकार ! इस बार की फसल से यहां देने के बाद जो कुछ बचेगा वही हम लोग घर में लेंगे।—अली ने वायदा किया।

—वह काफी नहीं है—चुरुट की राख झाड़ते हुए हाजी बोला—वह ज़मीन हमें दे दो। हम खुद खेती करना चाहते हैं। क्यों ? समझे ?

यह सुन कर अली सन्न-सा रह गया।

—ऐसा न कहिए सरकार ! —अली ने मिन्नत की।

—तुम क्या बोलते हो, अली ? तुमसे ज्यादा देने के लिए हमारे पास आदमी तैयार हैं। म-ग-र हम खुद हल जोतने के लिए यह ज़मीन तुमसे ले रहे हैं। क्यों ? समझे ?

—ऐसा न कहिए, सरकार !

—फिर ? अपना पैसा खर्च करूं और नुक्सान उठाऊं ? —हाजी तैश में आकर बोला।

अली की प्रार्थना हाजी ने न सुनी, वह अपने नुक्सान पर भाषण झाड़ता ही गया।

—सरकार को नुक्सान हो, यह मैं नहीं चाहता— अली बीच में बोला— पर मुझसे ज़मीन न लें, यह मेरी अर्ज़ है।

—ठीक, हम सोचेंगे। कल आना।

अली दूसरे दिन भी गया। हाजी के यहां खचाखच भीड़ भरी हुई थी, लोग व्यापारिक बातें करने आए थे। जब उनका अपना काम पूरा हो गया, तो सब के सब चले गए। अली तब तक बरामदे के किसी कोने में सिर खुजलाता खड़ा रहा। सारी भीड़ के छंटने पर वह अपने मालिक के पास गया।

मालिक ने अपना सिर उठाया तो देखा, अली सामने खड़ा है।

—क्यों ?.....अच्छा, बताओ.....तुम्हें क्या चाहिए ? तुमने क्या फैसला किया अपनी ज़मीन के बारे में ?

—ज़मीन छोड़ने के लिए मत कहिए सरकार !—अली गिड़गिड़ाने लगा।

हाजी ने चुरुट का एक दम लगाया और बोला—तुम मुसलमान हो, हम भी मुसलमान हैं। इसलिए हमसे तुम्हारी भलाई होनी चाहिए न ? दूसरे लोग पैंतीस 'परा' (अनाज की एक माप) देने के लिए राज़ी हो गए हैं। अच्छा, तुम एक काम करो। तीस 'परा' दे दो। पांच का फर्क है। परवाह नहीं। तुम मुसलमान हो न। मैं इस साल हज गया तो कितना रुपया खर्च हो गया था...... ।

अली स्तब्ध होकर यह सब सुन रहा था। ।

—इसमें कमी-बेशी करने की बात नहीं।—हाजी ने साफ-साफ अपना आखिरी फैसला सुनाया—अगर मंजूर है तो काम करो, नहीं तो ज़मीन छोड़ दो।

हाजी ने चुरुट फर्श पर रगड़ कर बुझा दिया और टुकड़े को कान में लगा कर अन्दर चला गया।

अली पसोपेश में पड़ गया। अभी जो कुछ वह देता आ रहा था, वही मुश्किल से दे पाता था। इससे अधिक वह और कहां से लाएगा ? और अपने घर के लिए क्या बचा पाएगा ? वह इतना नहीं देगा.....नहीं देगा.....तो ....ज़मीन हाथ से चली जाएगी। उफ़ ! यह वह सोच भी नहीं सकता। भले ही मुसलमान अपनी बीवी को क्यों न तलाक दे, मगर एक किसान अपनी खेती हरगिज़ नहीं छोड़ सकता।

—अब छोड़ देने का क्या मतलब ?—बीमार बाप ने अली को समझाया। और तीस 'परा' ज्यादा लगान देने की शर्त में दूसरा पट्टानामा अली से लिखवाया गया। खेती का काम नए सिरे से शुरू हुआ।

अली का बड़ा लड़का सयाना हो रहा था। यह अली के लिए तसल्ली की बात थी। क्योंकि हल जोतने व बीज बोने में उससे मदद मिलेगी।

इसी बीच अली के मां-बाप चल बसे। परिवार के गौरव के अनुकूल उनको अन्तिम संस्कार करना था। इसलिए अली को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी, सब कुछ कर्ज़ के पैसे से करना पड़ा।

फ़सल देखी तो अली का मन ज़रा ठंडा हो गया। अगली कटाई के बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा, अली ने निश्चय किया।

इसी बीच एक और मुसीबत आ गई। बड़ी लड़की सयानी हो गई। सयानी लड़कियों को बिना ब्याही घर रखना ठीक नहीं है, यही अली की बीबी का विचार था। शादी की तैयारी हो गई। उसके लिए थोड़ा कर्ज लेना पड़ा। किसी तरह शादी कर दी। फिर भी मुसीबत कम न हुई। उसका एक बैल मर गया। बैल खरीदे बिना खेती का काम कैसे चलेगा ? बैल खरीदने के लिए पैसा कहां है ? कर्ज लेना ही पड़ा। उसके लिए भी कर्ज, इसके लिए भी कर्ज। कर्ज पर कर्ज बढ़ता ही गया। मतलब यह कि फसल काटी गई तो कर्ज चुकाने में ही सारा धान निकल गया और उस साल का लगान भी बाकी रह गया।

—अली, तुमने क्या सोच रखा है ?—हाजी ने पूछा।

—अगली फसल पर दे दूंगा—अली ने निःशंक जवाब दिया।

अगली फसल भी काटी गई। मगर अली अपना लगान नहीं दे पाया। उसने तय कर लिया, अगले साल ज़रूर पूरा-पूरा अदा करूंगा। मगर उस समय सारी फसल सूख गई और अली की रही-सही आशा भी टूट गई।

—अब हाजी से क्या कहूं ?—अली ने पूछा।

—मैं बोलूंगा। वह मुसलमान है न ?—बेटा बोला।

मगर बेटे को यह समझने में देर न लगी कि हाजी को मुसलमान नहीं, धान चाहिए।

—वैसे ही दो साल का लगान बाकी रह गया है। ज़मीन छोड़ दो न ?—हाजी ने अली को समझाया।

अली और उसका बेटा उसके लिए तैयार न थे ?

हाजी मामला अदालत में ले गया। अदालत का फैसला हाजी के अनुकूल हुआ। अगली फसल को ज़ब्त करने का फरमान भी अदालत से जारी हो गया।

अली झुलसती धूप में डगमगाता चल रहा था। शरीर उसका पसीने से तर था। धूप से काला हो गया था।

अली को अब भी याद है कि फसल पक गई थी। कटाई का समय आ गया था। उस दिन अदालत से कुछ लोग आए और फसल काटने लगे। बाप-बेटे खड़े-खड़े देखते रहे। उनको लगा कि उनके शरीर को कोई नोच-नोच कर काट रहा है। अपने बच्चों को उड़ा ले जाने वाले बाज़ को आते देख, जैसे मुर्गी 'कु-र-कुर' करती है, पंख फड़फड़ाती है, बिल्कुल वही हाल बेटे का था।

—अब्बाजान ! मैं यह नहीं होने दूंगा—उसने एक कदम आगे रख ही दिया। इन आंखों ने ज़मीन देखी थी, उसके बाद हरी-भरी देखी, फसल पकी देखी... और अब वे ही आंखें कुत्तों को उसे लूटते देख रही हैं.......

—यह सब खुदा का कारनामा है...सब्र करो। सब ठीक हो जाएगा। —बूढ़े बाप ने बेटे को समझाया।

—ये मुसलमान नहीं, काफिर भी नहीं, शैतान हैं।

बेटे ने आगे बढ़ना चाहा, मगर बाप ने रोका। अली डर रहा था कि आज कुछ न कुछ हो कर रहेगा, मगर कुछ नहीं हुआ।

कटाई पूरी हुई, सारा धान वे लोग अपने साथ ले गए।

अली ने खाली खेत देखा, वह उसके सूने जीवन के समान था। वह वहां कितनी देर खड़ा रहा, कहना मुश्किल है। उसकी आंखों से आंसुओं की नहीं, खून की बूंदें टपक रहीं थीं।

अली आज भी याद कर रहा है—उस दिन बाप-बेटे आपस में नहीं बोले, उस दिन घर में न कोई कुछ बोला, न किसी ने कुछ सुना। वहां ऐसा वातावरण था, जैसे किसी की मृत्यु हो गई हो।

दूसरे दिन लोगों की यह बात अली के कानों में पड़ी—अली काका की फसल वे लोग ले गए।—यह एक किसान के लिए अपमान की बात है। उसने हल जोता, बीज बोया, खेती को सींचा-निराया, बच्चों के समान उसे पाला-पोसा। मगर कटाई के समय आए ये कमीने........अपमान नहीं तो और क्या ?.... उसने दांत पीसे।......उसने तय कर लिया कि आगे वह ज़मीन के साथ नाता नहीं रखेगा।

—बस, इतना काफी है। इससे अच्छा है हजामत करना—अली इतना निराश हो चुका था।

गुस्से से भरा चेहरा हथेली में थामे, बेटा यह सब सुन रहा था।

मगर समय गुजरा। पानी की पहली बूंदें पा, ज़मीन गीली और नरम हो गई। धरती से सुगंध निकली। तब उस किसान से रहा नहीं गया। उसके पांव खेती की ओर बढ़े।

—क्या, पागल हो गए हो ? —बेटे ने पूछा था।

—अरे बेटा, तुम क्या जानो ? धरती कभी दगा न देगी। हम इस धरती से पैदा हुए। यह हमारी मां है !—बेटे को उसने समझाया।

—कम से कम लगान का बकाया तो चुका देंगे। यही खेती शुरू करते वक्त अली का विचार था।

खेत में फिर हरियाली छाई, अली के मन में उजाला फैला।

—इस साल फसल बुरी है क्या ? —अली की बीवी ने पूछा।

—चुप रहो। कुछ न बोलो।

—ओ ! मुझे अपने बच्चों की फिक्र पड़ी है। कटाई हुई तो उनको कुछ दे सकूंगी। कितने दिन हुए, उनको पेट भर कर खिलाए।

खेत केओंठ लाल होते देख, अली खेत के पास बैठता और तोते पेड़ों की डायों पर।

आखिर फसल काटने का समय भी आ गया। अली के दिल में खुशी की लहरें उठ रही थीं।

बेटा बोला—इस बार हाजी उत्पात नहीं मचाएगा।

मगर हाजी की भूख मिटी नहीं थी। एक सप्ताह के अन्दर अदालत से लोग आए, कटाई के लिए।

गाड़ी चलाते, थके-हारे, सूखे गले से, जब अली का बेटा दोपहर को घर पहुंचा तो देखा कि कटाई हो रही है। उसके सारे शरीर में सिहरन-सी हुई। वह गुस्से में कांपने लगा। उसने पास में पड़ा हल का डंडा लिया और खेत की ओर लपका।

—निकल जाओ यहां से........। एक आवाज़ गूंज उठी।

अमीन उसके पास गया और बोला—देखो, यह अदालत का मामला है खेल नहीं।

—धत् तेरी.......निकल जाओ......एक गर्जन सुनाई पड़ी।

उसके बाद क्या हुआ, किसी को पता नहीं। किसी के कराहने की आवाज़ सुनाई पड़ी और लोगों के भागने-बुलाने की आवाज़ भी।

—सब के सब निकल जाओ। नहीं तो ....मैं........।

अली को अब भी उस दृश्य का स्मरण है। उसका स्मरण आते ही, उसके शरीर में सिहरन पैदा हो जाती है। अमीन खेत में पड़ा हुआ था। उसका सिर फट गया था और खून बह रहा था। दांत टूट चुके थे। आंखों की पुतली उभरी हुई थी। उसके कागज़ात खून से लथपथ हुए हवा में उड़ रहे थे। अली का बेटा खड़ा था, हल का डंडा हाथ में लिए, निश्चल-निस्तब्ध बुत की तरह।

—अरे बेटा तुमने कत्ल कर दिया है।......अली की बीवी के मुंह से ये शब्द निकल पड़े और बेहोश हो गई। होश आने पर मालूम हुआ कि बेटा पुलिस की हवालात में है।

वह बूढ़ा आगे बढ़ रहा था।

—बेटा, मैंने तुमको कैसे पाला-पोसा था।—अली ने सिसकियां भरीं। झुलसती धूप और तपती धरती का उसे ज्ञान तक नहीं रहा। वह कांपता-झूमता आगे चला जा रहा था। गला सूख रहा था। आंखें अपने आप मुंदी जा रही थीं। उसे लगा कि धरती चक्कर काट रही है। उससे एक कदम आगे नहीं चला जाता था। वह बैठ गया, उस पत्थर की भारी दीवार के सहारे। बेरहम धूप उस समय भी उसके शरीर पर चिनगारियां उगल रही थी। चेहरे से पसीना बह रहा था। उसकी बूंदें उसकी छाती के पके बालों पर टप-टप गिर रही थीं, जैसे ओस की बूंदें सूखी घास पर पड़ रही हों। वह कराह रहा था—बेटा, मेरा प्यारा बेटा ! उसका सिर दीवार से रगड़ता-रगड़ता नीचे लुढ़क गया।

उस बूढ़े को गिरते देखा एक आदमी ने, जो दूर से आ रहा था। वह उस जेल का जल्लाद था। वह अली के बिल्कुल पास आया।

—हो! हो!—उसने बुलाया।

कोई शब्द उस बूढ़े के मुंह से नहीं निकला।

—ओ! ऐ!—एक बार और बुलाया। किन्तु कोई जवाब नहीं।

उस जल्लाद ने उसके पास जाकर देखा, छाती पर उंगलियां रखीं। दिल अब भी धड़क रहा था। उसने अपनी छाती खोली ताकि उस बूढ़े के चेहरे पर धूप न लगे। उसने चारों ओर देखा, कोई नहीं था। ऊपर एक दो कौवे 'कांव-कांव' करते उड़ गए। उसने एक-दो मिनट तक सोचा। फिर छाती बन्द की। बूढ़े को दोनों हाथों से उठा लिया और धीरे-धीरे चलने लगा। थोड़ी दूर ले गया और किसी पेड़ के साए में लिटा दिया। पास वाले किसी घर से थोड़ा पानी ले आया और चेहरे पर छिड़क दिया। बूढ़े की आंखें ज़रा खुलीं।

—बेटा, मेरा प्यारा!

—क्या चाहते हो?

—पा.....नी।

उसने उस सूखे मुंह में पानी डाल दिया। अली ने एक बार और आंखें खोलीं।

—बेटा, तुम कहां हो?

फिर आंखें मुंद गईं। एक-दो बार सांस ऊपर-नीचे चली, जैसे खेत में हल चल रहा हो, गर्दन एक तरफ लुढ़क गई। एक बार और पानी उसके होंठों को लगाया गया।

उस जल्लाद ने ठण्डी सांस ली, जिसने हज़ारों को फांसी पर लटकाया था, उसी हाथ से उस बाप के ओंठों पर पानी फेरा, जिसने बेटे को फांसी पर लटकाया था। मगर पानी अन्दर नहीं गया। एक तरफ से वह गया।

अनुवादक : पी० एन० भट्टतिरी

प्रलय नहीं हुआ

गनू सामताणी

नए शहर और शीला भाभी के नए घर में पहली रात थी। यात्रा की थकान के कारण जल्दी ही सो गया था। किन्तु, आधी रात को न जाने किस आवाज़ ने मुझे जगा दिया। हल्की बूंदाबांदी हो रही थी। ऊपर छत पर बूंदों के गिरने से टप-टप की ध्वनि वातावरण में शीतलता उत्पन्न कर रही थी। और उस ध्वनि के बीच, रह-रह कर सुनाई पड़ रही थीं किसी की सिसकियां ? कितना सामंजस्य था उन दो स्वरों में, और वह भी रात की खामोशी एवं गहराई में।

टप-टप.....सिसकियां.....टप-टप.....फिर सिसकियां रुकी-रुकी-सीं, उलझी-उलझी-सीं—जैसे शीत ऋतु में, सागर में लहरें किनारे की ओर बढ़ती हैं रुक-रुक कर, उलझ-उलझ कर।

भैया के मकान और पड़ोसी के मकान के बीच एक खिड़की थी। सिसकियां वहीं से आ रही थीं। उठ कर खिड़की के पास पहुंचा। खिड़की बन्द थी, किन्तु ऐसा लगा कि कोई स्त्री उसके दूसरी ओर बैठी सिसकियां भर रही है।

मन के कौतूहल को दबा कर वापस आकर लेट गया।

उस रात क्या मैं सो सका ?

दूसरी रात !

शायद दस बजे होंगे। तब सोया तक नहीं था, कोई पुस्तक पढ़ रहा था कि खिड़की की उस ओर से ताल का स्वर वातावरण में दौड़ गया, धीमा और मधुर। ताल एक सिलसिले से, झुन-झुन कर बज रहे थे और उसके साथ—यदा-यदाहि धर्मस्य—

यह स्वर !

कृष्ण की बांसुरी की सम्पूर्ण मधुरता क्या उसी स्वर में मिश्रित थी ?

कृष्ण की बांसुरी सुन कर जमुना की धारा में, लहरों में भी क्या यही लय उत्पन्न हो जाती होगी ? धीरे-धीरे, झन-झन की उस ताल पर गीत का यह श्लोक गूंजता रहा।

कल रात का दबाया हुआ कौतूहल मन में फिर जग उठा। किन्तु खिड़की

के पास पहुंच कर भी खिड़की खोलने की इच्छा नहीं हुई। उसे खोलने से, उस संगीत का सिलसिला टूट जाए तो ?

मैं आरामकुर्सी पर लेटा हुआ था कि अचानक सुनाई दिया—सुनिए तो।

उसकी सिसकियों की आवाज़ सुनी थी, उसका संगीत-स्वर सुना था, किन्तु उसका यह स्वर कैसा था ? अत्यधिक शान्त, अत्यधिक गम्भीर।

सिर मोड़ कर देखा। वह खिड़की के पास खड़ी थी। किन्तु उसका मुख-मण्डल दिखाई नहीं दे रहा था। वहां अंधेरा था। दीख रही थी केवल एक रूप-शिखा...छाया रेखा-सी।

—कहिए !

—अपने नौकर को भेज कर डाक्टर को बुला सकेंगे ?

—डाक्टर ? —स्वर में चिन्ता आ गई, न जाने कहां से—आप ठीक तो हैं न ? —क्षण भर के लिए जवाव नहीं मिला। फिर अधिक शान्त स्वर में उसने कहा—शीला से कहिए 'उनकी' तवीयत अधिक खराव हो गई है। कृपया शीघ्र ही नौकर भेज कर डाक्टर बुला दीजिए।

—क्या आपके पति ?

वात पूरी होने के पूर्व ही उसने कहा—देखिए, कृपया, शीघ्र।

कितनी सरलता किन्तु व्यग्रता से वात हुई थी। दूसरी रात मैं प्रतिदिन की तरह खिड़की के इस ओर सो रहा था। खिड़की के उस ओर सोने के लिए, शायद वह आ रही थी, उसके कदमों की आहट धीरे-धीरे पास आ रही थी, साथ ही वत्ती का झिलमिलाता प्रकाश भी। हाथ में शायद लालटेन थी।

अचानक जैसे टूटा वर्तन झनझना उठे, वैसे ही, खांसने की एक भयानक आवाज़ अन्दर के कमरे से उठ कर पूर्ण वातावरण में फैल गई। कदमों की आहट थम गई, प्रकाश भी रुक गया। केवल एक क्षण के लिए। फिर कदमों की आहट और लालटेन का प्रकाश धीरे-धीरे दूर चला गया।

मौन अंधकार।

मैं सांस रोके लेटा रहा। किसी प्रलय की आशंका से मैं वहीं स्थिर-सा हो गया।

कल रात डाक्टर जब वापस जा रहा था, अपने दरवाज़े के पास रोककर मैंने उससे पूछा था—डाक्टर, क्या हाल है ?

डाक्टर ने सिर्फ कहा था—देखिए, अभी कहना कठिन है।

शायद आधे घंटे के वाद वह खिड़की के उस ओर आकर लेटी, लालटेन वह साथ नहीं लाई थी।

मैंने पूछा—डाक्टर की ज़रूरत हो तो।

—नहीं, अभी उन्हें नींद आ गई है। मेहरवानी।

——लेकिन ऐसा हुआ कैसे ?

कुछ देर तक कोई जवाव नहीं मिला। लगा, अपनी अनन्त वेदना को दवा कर, अपने स्वर को स्वाभाविक वनाने में उसे कुछ समय लगा और फिर उसने कहा——आधे पेट भोजन, कारखाने की घुटन और धुएं के वातावरण में काम करने से क्या ऐसा होना आश्चर्य की बात है ?

——आश्चर्य की वात नहीं है, मानता हूं। किन्तु यह बात इस तरह सरल एवं स्वाभाविक रूप से कही जाए, क्या यह आश्चर्य की वात नहीं है ?

मैंने कहा——लेकिन, इस तरह काम नहीं चलेगा। कहीं वाहर जाकर, हवा वदलना अत्यधिक आवश्यक है।

जवाव नहीं मिला। मन व्याकुल हो उठा। कहा——जाते क्यों नहीं ?

अचानक फिर वही खांसने की आवाज़ आई ? सांस फूली-फूली टूटती-टूटती-सी। मैंने लेटे-लेटे ही अनुभव किया कि वह उठ कर तेज़ी से अन्दर चली गई।

घंटा भर वीता होगा, मुझे झपकी आ गई थी। खिड़की से आवाज़ आई——सुनते हैं ?——मैं चौंक कर जाग पड़ा।

——डाक्टर——केवल एक शब्द कहा गया।

मैं उठ कर, खड़ा हो गया।

दूसरे ही क्षण उसने कहा——खैर, अभी रहने दीजिए। उनको फिर नींद आ गई है। यदि फिर कष्ट हुआ तो देखा जाएगा।

मैंने कहा——देखिए, फिर पर न छोड़िए। मैं पांच मिनट में ही डाक्टर को लिए आता हूं। मुझे कुछ भी कष्ट नहीं होगा।

अंधेरे में उसका मुख तो देख नहीं सकता था, लेकिन फिर भी अनुभव किया, वह अपने आंसुओं को रोकने का प्रयत्न कर रही थी। उसने भीगी आवाज़ में कहा——रहने दीजिए। मुंह से खून आता देख मैं डर गई थी। किन्तु यह कोई नई वात नहीं है। आज शायद कुछ अधिक खून आ गया था।

मैं खिड़की के पास जा वैठा। विनीत स्वर से कहा——मान भी जाइए न।

वह फूट पड़ी और उस स्वर में मुझे भिगोते हुए उसने कहा——मैं डाक्टर की फीस नहीं दे सकती, आप हवा वदलने की वात कहते हैं।

वस, वह इतना कह वेसहारा-सी धड़ाम से खाट पर जा गिरी थी और फिर उसके रोदन का स्वर धीमा पड़ता गया था।

मुझे खयाल आया था, संसार में कदम-कदम पर जो दुःख है, जो पीड़ा है इन्सान उससे इतना अनजान क्यों है ? सुख का एक ही क्षण, दुख के पूरे युग को भुलाने के लिए पर्याप्त क्यों है ? लगता है, जिन्होंने दुख का सच्चा परिचय पाया है, वही सुख का मूल्य जानते हैं। क्षणभंगुर सुख की वात नहीं करता हूं बात कर रहा हूं उस सुख की, जो अनन्त है, अनमोल है।

खिड़की के उस पार वाले मकान में मृत्यु की जो छाया पल-पल घनी होती जा रही थी, आंखों से सर्वनाश देखते हुए भी जीवन के प्रति निरादर का कोई भी चिह्न, कोई हल्की-सी रेखा भी मैंने उस घर में नहीं देखी थी।

उसी रात की बात है। खिड़की के उस पार वह अपने मधुर स्वर से गीता का श्लोक गुनगुना रही थी। मैं पूछ बैठा—धार्मिक ग्रंथ आपने शायद अधिक पढ़े हैं ?

—मेरी अक्ल ही कितनी कि धार्मिक पुस्तकें पढ़ूं ?—ज़रा रुक कर फिर बोली—आश्चर्यमय बुद्धि तो उनकी है। कोई विश्वास ही कैसे करेगा कि एक बड़ा विद्वान, जिसे न जाने कितने ग्रंथ कण्ठस्थ हैं, केवल भूख और बेरोज़गारी के कारण, विवश होकर, फेफड़े कमज़ोर होते हुए भी, कारखाने में मज़दूरी करते, एक दिन अपर्याप्त दवा के कारण चला जाएगा।

कहते-कहते वह रुक गई। रुकना भी चाहिए था। फिर उसने पूछा था—आपने जीवन में कभी एक क्षण के लिए भी असह्य दुख की गहरी वेदना अनुभव की है।

—दुख ? वेदना ?

वह कहती रही—दुख का सच्चा परिचय जो पाते हैं, वे जीवन का निरादर कभी नहीं करते, कर ही नहीं सकते। अपने सुख के दिनों में जब जीवन को असार नहीं समझा था, अब दुख के कारण असार समझ कर उसका निरादर नहीं करूंगी।

सुन कर मेरा मन भर आया। कुछ कह न सका, मन ही मन उसको नमस्कार किया।

यह मित्रता का सम्बन्ध मैंने ही आरम्भ किया था। उसी सम्बन्ध से मैं उसके पति से भी मिला था। वह उस समय घर में नहीं थी। उसके पति से मालूम हुआ कि प्रातः जल्दी ही वह किसी को ट्यूशन पढ़ाने जाती है। उसके बाद सरकारी अस्पताल से दवा लेने जाती है। लौट कर घर का काम-काज करती है—केवल रात को ही उसको कुछ अवकाश मिलता है। वह भी कौन जाने, कब किस समय दर्द होने लगे और रात भर उसको जागना पड़ जाए।

उसका चार साल का एक लड़का भी था। नाम था कुमार। दूर की एक बुआ के पास रहता था। एक दिन उसके पति ने कहा था—उसे देखने की अत्यधिक चाह होती है, किन्तु इस रोग के कारण उसको यहां बुलाया नहीं जा सकता। —पर उनके स्वर में कोई शिकायत न थी। बोलना, बिल्कुल सहज, स्वाभाविक था, मानो पति-पत्नी का स्वर एक-सा सधा हो।

बातों ही बातों में पता चला कि कभी वे किसी पत्र के सह-सम्पादक थे, किन्तु मालिक से नीति सम्बन्धी मतभेद हो जाने के कारण उन्हें वह काम छोड़ना

पड़ा । यूनिवर्सिटी की मुहर लगी न थी, कहीं नौकरी न मिली । नौकरी की तलाश की परेशानी के कारण काम करने लगे—घुटनमय, अंधियारे कारखानों में ।

उनके तकिए के नीचे शेली की कोई कविता की पुस्तक रखी थी । जिसका जीवन मृत्यु की छाया में बीत रहा था, वह जीवन में जो सुन्दरता है, जो संगीत है, जो मधुरता है, उस पर कविता पढ़ रहा था । कुछ चौंका देने वाली बात थी । तभी याद आया, उनकी पत्नी का यह कथन कि दुख का सच्चा परिचय जिसने पाया है, वह कभी भी जीवन का निरादर नहीं करता ।

तब सोचा था, जिस दिन ऐसा इन्सान केवल निर्धनता के कारण, अपर्याप्त दवा के कारण, आंखें मूंद लेगा, उस दिन भी क्या प्रलय न होगा ?

एक दिन मैंने कहा था—एक बात पूछूं ?

—पूछिए ।

—उस दिन आपने कहा था, आप जीवन का निरादर कभी नहीं कर सकेंगी यदि किसी दिन प्रलय हो जाए, क्या उस दिन भी आप जीवन को निर्मूल्य न समझेंगी ?

उसने पूछा—आपने प्रलय देखा है ?

—नहीं, लेकिन सुना है । बहुत दिन हुए हरिद्वार गया था । वहां माया—कुण्ड है । सुना, वहीं ऋषि मार्कण्डेय ने प्रलय के दर्शन किए थे । आपने तो भागवत पढ़ा है न ?

—हां, पढ़ा है । किन्तु मार्कण्डेय ने क्या केवल प्रलय ही देखा था ? उसने यह नहीं देखा था कि प्रलय के ताण्डव में, उस सर्वनाश की लीला में एक बालक बिना किसी डर के एक पत्ते पर लेटा, मुस्कराता, तैरता जा रहा था ।

मैंने कहा—किन्तु वह बालक तो स्वयं भगवान था । उसे डर कैसा ?

कुछ क्षण शान्ति रही । फिर कहा—एक दिन मुझे भी ऐसी ही शंका हुई थी । उस समय पति से पूछा था । उन्होंने कहा था, नष्ट कुछ नहीं होता, केवल उसका परिवर्तन होता है । वह प्रलय न थी, युग के परिवर्तन का प्रतीक था । नहीं तो भगवान ने कुछ और रूप न धर कर, बालक का रूप क्यों धारण किया था ? बालक युग-परिवर्तन का चिह्न है । मित्र, जीवन··· ।

और उस वाक्य को तोड़ने वाली, जीवन को दबोचती खांसी ।

उसकी बात पूरी न हो सकी, मेरी उत्सुकता बनी रही ।

हल्का-हल्का अंधेरा था । सवेरा तब तक हुआ न था । बहुत से स्वर-ध्वनियां सुन मैं जाग पड़ा । लगा सपना देखा था, भयंकर, अति भयकर ।

बरसात की टप-टप·······फिर वही सिसकियां, वही श्लोक का पाठ ।

आवाज़ पहले बहुत धीमी थी, फिर कुछ तीव्र हुई, अधिक तीव्र हुई,

और तब अधिकतर तीव्र। जाग कर देखा, बाहर तेज़ वर्षा हो रही है। फिर ऐसा लगा, गीता के श्लोक खिड़की के उस पार से उच्चारित होकर, बरसाती कोलाहल में घुल-मिल रहे थे। और दो-तीन मिनटों के बाद ही सृष्टि के सभी स्वरों से तीव्र, एक अनन्त वेदना का स्वर गूंज उठा।

न जाने क्यों मैं भी फफक-फफक कर रो पड़ा।

कैसा रोदन था वह ! मृत्युनाद से भी अधिक हृदयविदारक। उसकी मानो अलग अपनी भाषा थी, पाषाण को भी द्रवित करने वाली। सलाब जब तीव्र वेग से वृक्ष, घर, आदमी, जानवर सबों को बहाता चलता है, तब जो भयंकर हाहाकार होता है, कुछ वैसी ही भाषा थी उस रोदन की।

प्रलय ! मैं मार्कण्डय नहीं हूं। किन्तु उसने भी क्या ऐसा दृश्य देखा था, विश्वास नहीं होता।

प्रलय ! मार्कण्डेय ने यह नहीं देखा था कि एक महान विद्वान, अपर्याप्त भोजन और अधूरी दवा के कारण, चुपचाप सदा के लिए आंखें मूंद ले।

मार्कण्डेय ने यह नहीं देखा था कि घुटन और धुएं से भरे कारखाने कैसे होते हैं। और उन कारखानों में काम करने वाले, पसीना पानी-सा बहाने वाले, कैसे तड़प-तड़प कर मरते हैं।

और तब उस प्रलय ने मुझे दिखा दिया कि करुणा का छोटा-सा कुमार चुपचाप मुस्कराता, निर्भय, तैरता जा रहा था।

करुणा ने सुना था—बालक युग परिवर्तन का चिह्न है। उसी से सुना था, प्रलय नहीं होता, केवल युग बदलता है।

और करुणा उस विद्वान की मृत्यु के दिन भी गीता के श्लोक का पाठ करती रही।

यदा-यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

देखा-सुना आदमी

यशपाल

तारा का विवाह माता-पिता के निर्णय और स्वयं उसकी इच्छा से उतने आधुनिक युग में, हमारे समाज में उचित समझा जाता है। माता-पिता ने लड़की के लिए उचित वर की प्रतीक्षा में तारा को एम० ए० तक पढ़ा दिया था और फिर उसे घर में बेकार न बैठाए रखने के लिए पी-एच० डी० की तैयारी के लिए भी उत्साहित किया। तभी एक दिन तारा के पिता ने 'नार्दर्न स्टार' पत्र के वैवाहिक कालम में एक विज्ञापन पढ़ा—एक प्रसिद्ध यूरोपियन फर्म के प्रबन्ध विभाग में काम करने वाले और स्वस्थ, उच्च-शिक्षित, उच्च वर्ग के युवक के लिए सुशिक्षित और सुसंस्कृत वधू की आवश्यकता है। युवक की मासिक आमदनी 750, आयु अगले जन्म-दिवस पर तीस वर्ष, कद औसत ऊंचा।

तारा के भाई ने पत्र के कार्यालय द्वारा पत्र व्यवहार किया। ठीक पता जान कर दिल्ली-स्थित अपने मित्रों को लिख कर तथ्यों की तसदीक कर ली। फोटो की अदला-बदली हुई। कृष्ण दयाल दशहरे के अवसर पर लखनऊ में आकर यूरोपियन होटल में तीन दिन ठहरा। तारा के घर खाना खाया, दूसरी बार चाय पी। सब लोग साथ-साथ लखनऊ के दर्शनीय स्थानों में घूमे। तारा को दयाल का स्वभाव भी बहुत अच्छा लगा। इतना मधुर और कोमल कि बच्चों तक का मन रखते थे। छः मास बाद विवाह हो गया और तारा मायके की विदाई से उदास परन्तु मन में अरमानों के लड्डू लिए दिल्ली चली गई।

कृष्ण दयाल ने कमला मार्केट में एक सुन्दर आधुनिक फ्लैट किराए पर ले लिया था और कुछ फर्नीचर भी। नए घर में आकर तारा के लिए केवल एक ही काम था, घर को ढंग से सजाना। सजावट के मामले में कृष्ण दयाल से कई बार मतभेद भी हो जाता। तारा अपनी ही राय पर डटी रहती। कृष्ण दयाल कुछ झुंझला जाते और फिर पसन्द न आने पर भी तारा की बात मान लेते। तारा कर तो अपने मन की ही रही थी, परन्तु मन की करने में भी सूक्ष्म असन्तोष की एक किरक-सी मन में रह जाती। चाहती थी, ये कह दें—जैसे मैं कहता हूं वैसे ही करो। तो मैं वैसे ही करूं। परन्तु वह अवस्था आ न पाती, सब कुछ

तारा की इच्छा के अनुसार ही हो रहा था। तारा को झुकने की विवशता का सन्तोष न हो पाता। यह न होने पर भी वह पति के स्वभाव की कोमलता पर वह जाती।

तारा को अभी दिल्ली आए एक मास ही बीता था। शनिवार की संध्या वे दोनों नई दिल्ली में एक मित्र के यहां से तांगे पर लौट रहे थे। रिफ्यूजी मार्केट में तारा को किसी नई खुली दुकान पर एक ड्रेसिंग टेबिल दिखाई दे गई। तारा को पूरे बड़े शीशे के सामने खड़ी होकर साड़ी पहनने का बहुत शौक था। नए सुन्दर घर में इस न्यूनता से वह मन मारे थी। पति की बांह थाम कर उसने कहा—हाय, बड़ी सुन्दर टेबिल है। ज़रा देखें तो।

टेबिल बिल्कुल नए ढंग की, वास्तव में सुन्दर थी। रिफ्यूजी दुकानदार ने दाम बताया—डेढ़ सौ। कृष्ण दयाल का मन न था। उसने अंग्रेज़ी में समझाया यह दाम बहुत अधिक है। जल्दी क्या है, फिर सही। दुकानदार से पीछा छुड़ाने के लिए उसने कह दिया, ऐसी टेबिल सौ रुपये में कहीं भी मिल सकती है। दुकान-दार ने टेबिल की बनावट, शीशे और लकड़ी की कई विशेषताएं बताईं, पर कृष्ण दयाल अड़ गया—नहीं, सौ से एक पैसा अधिक नहीं। रिफ्यूजी दुकान-दार 10 छोड़ देने को तयार हुआ, फिर बीस। ग्राहक को किसी तरह मानते न देख कर वह सौ पर ही आ गया।

दयाल फंस गया था। उसने मुसीबत टालने के लिए कहा—अभी रुपया लेकर नहीं आए हैं। टेबिल देख ली है। आकर ले जाएंगे।

दुकानदार की आंखों में तिरस्कार का ऐसा भाव आ गया कि तारा से सहते न बना। उसने तुरन्त बटुआ खोल कर दस का नोट निकाल कर बढ़ा दिया और घर का पता बता कर बोली—पहुंचा दो और बाकी ले आओ।

कनाट प्लेस से कमला मार्केट की ओर जाते हुए कृष्ण दयाल ने खिन्नता प्रकट की—तुम तो हर बात पर अड़ जाती हो। ऐसी क्या जल्दी थी। अभी तेईस सौ खर्च कर चुके हैं। तुमसे कहा था कि प्रमोशन का झगड़ा तय हो जाए, तो ले लेंगे।

तारा ने उत्तर दिया—चलो हो गया। सौ तो डार्लिंग तुमने ही कह दिए थे।

दयाल ने उत्तर दिया—मैं तो टाल रहा था। तुमने नोट उसे दे दिया। टेबिल वह सौ का भी नहीं है। जाने कैसी लकड़ी हो। ये लोग तो पोत-पात कर सब चीज़ को शीशम की बना देते हैं।

तारा ने कुंठित होकर क्षमा-सी मांगी—डार्लिंग सेल्फ रेस्पैक्ट की बात आ गई थी, क्या करती?

दयाल ने समझाया—इसमें सेल्फ रेस्पैक्ट की क्या बात थी? यह तो सौदा है। नहीं लेते। तभी मैं टाल रहा था।

तारा ने स्वीकार किया—अच्छा जाने दो। दस गए तो क्या हुआ। कल रविवार है। परसों सुबह ही उधर जाओगे तो उससे कह देना, हमें दूसरी जगह उससे अच्छी मेज़ मिल गई है। दस उसे रख लेने दो।

रविवार के दिन कृष्ण दयाल को दफ्तर जाने की जल्दी नहीं थी। दस बजे का समय होगा, वे अभी नाश्ता ही कर रहे थे कि दरवाज़े की घंटी बजी। नौकर ने जाकर बताया—कोई आदमी ड्रेसिंग टेबिल ले कर आया है।

—यह तो अच्छी परेशानी हुई। अब क्या होगा?—दयाल चाय का प्याला मेज़ पर रखते हुए तारा से बोला।

—उससे वही कह देंगे। बहुत होगा, ठेले का किराया दो रुपए और ले लेगा।—तारा ने समाधान किया परन्तु पति के चेहरे पर परेशानी स्पष्ट झलक रही थी। दयाल कुछ हिचकता हुआ दरवाज़ की ओर चला।

दयाल ने बाहर आकर रिफ्यूजी दुकानदार को समझाया—हमें इससे अच्छी और सस्ती ड्रेसिंग टेबिल दूसरी जगह मिल गई है। वो दस रुपए तुम्हीं रखो।

दुकानदार उबल पड़ा—तुम्हारे मुंह में ज़बान है या...। उसने अपशब्द बक दिया।

तारा आंचल ठीक कर पति के संकट में सहायता के लिए आ रही थी। उसने भी दुकानदार की धृष्टता सुनी।

दयाल ने दुकानदार को क्रोध से डांटा—क्या बकता है। निकल जा यहां से।

रिफ्यूजी असाधारण छोटे कद का और मैला-कुचैला था। परन्तु दयाल के सुन्दर फ्लैट और साफ कपड़ों से न दब कर उससे भी ऊंचे स्वर से गरज उठा—बकता तू है, अभी पेट फाड़ कर सब बाबूपन निकाल दूंगा।

तारा का रक्त खौल उठा। आगे बढ़ कर उसने डांटा—तुम किसके हुक्म से ऊपर आया। चलो नीचे।

रिफ्यूजी आस्तीनें बढ़ा कर एक कदम आगे बढ़ा—हम अपना पैसा लेने आया। हिम्मत है तो उतार दे नीचे।

तारा भी क्रोध में कांप उठी—तेरी हिम्मत है तो ले ले पैसा। हमें टेबिल नहीं चाहिए।

रिफ्यूजी एक और कदम आगे बढ़ा—पैसा हम तुम्हारे बाप से ले लेगा और अभी लेगा।

शोर सुन कर पड़ोसी फ्लैट के लोग भी निकल आए थे। तारा का मन चाह रहा था कि दयाल उस बदतमीज़ आदमी को चांटा मार कर गिरा दे,

सीढ़ियों से नीचे ढकेल दे। जो होगा देखा जाएगा। वह स्वयं ही क्यों न उसे धक्का दे दे। वह आगे बढ़ गई—निकलो बाहर।—उसने कहा।

दयाल ने तारा को एक ओर करते हुए ऊंचे स्वर में पड़ोसियों को सुनाते हुए ललकारा—तुमको पैसा लेना है, तुम पैसा लो। तुम लेडीज़ के सामने बदतमीज़ी क्यों करता है, और क्रोध में पांव पटकता हुआ रुपया लेने कमरे में चला गया।

तारा क्रोध और अपमान में बावली हो गई। वह दयाल के पीछे-पीछे भागी। अलमारी से रुपया निकालते हुए पति की बांह पकड़ कर उसने कहा—क्या करते हो जी, उसने गाली क्यों दी ? तुम इतना डरते क्यों हो ?

दयाल ने पत्नी को डांट दिया—हटो। और बांह छुड़ा कर बरामदे में आ गया। सौ रुपये का नोट रिफ्यूजी की तरफ फेंक कर उसने डांटा—चलो निकलो यहां से।

सौ रुपये का नोट उठा कर भी रिफ्यूजी ने लाल आंखों से गुर्रा कर गाली दी—चुप रह, नहीं तो अभी गर्दन तोड़ दूंगा।—दयाल के कमरे के भीतर चले जाने पर ही वह ज़ीने की तरफ मुड़ा।

दयाल ने नौकर को नए सिरे से चाय बना कर लाने को कहा। परन्तु तारा आंचल में मुंह लपेट सोफा पर पड़ कर रोने लगी। दयाल को यह अच्छा नहीं लगा। उसने चिढ़ कर डांटा—कैसी पागल हो तुम! वह जंगली आदमी हाथ चला देता, बेइज़्ज़ती कर देता तो क्या होता। रुपये की ऐसी क्या बात है ?

तारा रोते-रोते बोली—बेइज़्ज़ती में कसर ही क्या रह गई। तुम्हारे भी तो दो हाथ थे।

उस दिन दोनों परस्पर नहीं बोले। तारा ने दिन भर कुछ खाया भी नहीं।

ड्रेसिंग टेबिल ऊपर आ गई थी, परन्तु टेबिल पर नज़र पड़ते ही तारा का मन ग्लानि से भर जाता। दयाल ने दो-तीन बार टोका भी—तुम्हें तो ड्रेसिंग टेबिल का इतना शौक था। अब इसका उपयोग ही नहीं करतीं।

—मेरा तो जी करता है, इसे चूल्हे में दे दूं—तारा ने उत्तर दिया—इस मरी ने इतना अपमान कराया।

दयाल ने समझाया—इसमें टेबिल का क्या अपराध है ? वह बदतमीज़ जंगली आदमी था। ऐसे समय भले आदमी को पैसे पर थूक कर अपनी इज़्ज़त का खयाल करना चाहिए।—तारा को विश्वास ही न होता था कि इज़्ज़त बच गई है।

दयाल प्रायः अपने प्रमोशन की बाबत चलते झगड़े का ज़िक्र किया करता था। उस विषय में वह बहुत चिन्तित भी था। यूरोपियन सर्किल मैनेजर गर्म जलवायु में स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वापस जा रहा था। दयाल के मामा

फर्म के बोर्ड के मेम्बर थे। उन्होंने विश्वास दिलाया था कि उसकी जगह दयाल का प्रमोशन कराने का प्रयत्न करेंगे। सर्किल मैनेजर पिछले वर्ष एक मास के लिए अवकाश पर था तो दयाल ने उसकी जगह काम भी किया था।

नन्दन भी फर्म में सब-मैनेजर था और दयाल से एक वर्ष पहले से काम कर रहा था। पिछले वर्ष सर्किल मैनेजर की जगह दयाल को दी जाने पर भी उसने अपमान का विरोध किया था। अब उसे लांघ कर दयाल को वह जगह स्थायी रूप से दी जाने की अफवाह उड़ी तो नन्दन ने फर्म को नोटिस दिया कि उसका अपमान किया जाने पर उसके नोटिस को त्यागपत्र मान लिया जाए। दयाल को आशंका हुई कि नन्दन कहीं घौंस में ही पद न ले जाए। यह भी सुना था कि सर्किल मैनेजर और बोर्ड के कई यूरोपियन सदस्य नन्दन के ही पक्ष में हैं। अपना पलड़ा भारी करने के लिए दयाल ने भी नोटिस दे दिया। उसका दावा था कि वह उस पद पर अस्थायी रूप से काम कर भी चुका है। झगड़ा बढ़ कर स्थिति यह हो गई कि नन्दन और दयाल में से एक को फर्म छोड़नी ही पड़ेगी।

दयाल इस झगड़े से बहुत चिन्तित रहता। तारा से बात कर अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करता—अब इज्जत का सवाल हो गया है। चाहे नौकरी जाए। मैं दफ्तर में क्या मुंह दिखाऊंगा। मेरे लिए बीसियों नौकरियां हैं। नन्दन तो इसी दफ्तर में सवा सौ रुपये पर क्लर्क भरती हुआ था। सर्किल मैनेजर बन पाया। अब यह दिमाग है। नौकरी छूट जाए तो सिरकी डाल कर मैदान में बैठना पड़ जाए।—और फिर बात बदल कर कहता—वैसे साढ़े सात सौ की नौकरी मामूली बात नहीं है। तुम जानती हो, सवा सौ की वेकेंसी के इश्तहार के जवाब में पांच हज़ार दरख्वास्तें आती हैं···।

तारा हौसला बंधाती—क्या है, अब तो बात का सवाल है। जब बात यहां तक पहुंच गई है तो अब पीछे कैसे हट सकते हैं। हम लोग ऐसे कौन भूखे मरे जा रहे हैं और इज्जत के लिए तो आदमी सिर भी दे देता है।

बोर्ड की मीटिंग से दो दिन पहले दयाल दफ्तर से कुछ पहले ही आ गया और जबरदस्ती की मुस्कान चेहरे पर लाकर बोला—बेटा नन्दन तो गए।

तारा ने सान्त्वना पाकर पूछा—चीफ मैनेजर ने फैसला कर दिया?

दयाल ने उत्तर दिया—नहीं, चीफ मैनेजर का पी० ए० खन्ना अपना मिलने वाला है। उसने सुबह जाते ही बताया था कि साहब ने फैसला किया है कि प्रोटेस्ट का नोटिस देने के कारण दोनों को डिसमिस आर्डर दे दिया जाए। साहब आज बोर्ड को रिपोर्ट भेजने वाले थे। मैंने जाकर साहब से बात की—मेरे लिए फर्म का हित और निर्णय मुख्य है। मैं पद का भूखा नहीं हूं। अगर फर्म मेरी अपील को प्रोटेस्ट समझती है, तो मैं उसे वापस लेता हूं। मैंने अपना प्रोटेस्ट वापस ले लिया। नन्दन बेटा प्रोटेस्ट पर डटे हैं। नौकरी से हाथ धोएंगे।

तारा का सिर झुक गया। परन्तु दयाल कहता गया—साढ़े सात सौ की नौकरी मामूली चीज़ नहीं। इज्ज़त तो आदमी की हैसियत से होती है। नन्दन अब नौकरी ढूंढते फिरेंगे तो क्या इज्ज़त रह जाएगी। और कौन सी मिली जाती है।

तारा का मानो मन भर गया। न हँस सकी न बोल सकी। दयाल ने नौकर को चाय लाने के लिए कहा और कमरे को बांटे हुए पर्दे के पीछे कपड़े बदलने के लिए ड्रेसिंग टेविल की ओर चला गया। पर्दे के पीछे से ही बोला—तो आज तो प्रमोशन की शर्त भी पूरी हो गई। कम से कम रास्ते की रुकावट तो दूर हुई। आज इस ड्रेसिंग टेविल का उद्घाटन हो जाए।

तारा ने आंचल में मुंह लपेट लिया और सोफा पर लेट गई। दयाल कपड़े बदल कर आया तो वह गुम-सुम बैठी थी। क्यों क्या बात है? —दयाल ने पूछा, और उसकी दृष्टि बीच की गोल मेज़ पर पड़े नए आए पत्र की ओर चली गई। उसने पूछा—क्या खबर है, लखनऊ से है?

—मैं लखनऊ जाऊंगी—तारा ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया।

दयाल लिफाफे से पत्र निकाल कर पढ़ने लगा। पत्र में तारा के बड़े भाई की बीमारी की बात लिखी थी कि चार दिन से एक ही बुखार है। डाक्टरों ने खून की परीक्षा कराने के लिए कहा है।

दयाल ने सान्त्वना दी—घबराने की तो कोई बात नहीं। खून की परीक्षा तो हो ही जानी चाहिए। चाहती हो तो हो आओ। कब जाना चाहती हो?

—आज ही रात।—तारा ने उत्तर दिया।

दयाल ने उत्तर दिया—ऐसे घबराने की क्या बात है। कल-परसों चली जाना! —तारा नहीं मानी तो वह मान गया।

तारा लखनऊ पहुंची तो बड़े भाई का ज्वर उतर भी चुका था, परन्तु तारा बहुत दुखी, गुम-सुम बैठी रहती। पड़ोस की कोठी की सहेली विमला भी मिलने आई थी। उससे भी उसने विशेष बात न की। विमला ने विवाह के बाद की रहस्य की बातें पूछीं, हँसाने का बहुत यत्न किया, परन्तु तारा गुम-सुम।

भाभी दूर से यह देख रही थी, समीप आ गई, और उसने भी विमला से तारा के यों गुम-सुम रहने की शिकायत की। विमला ने आत्मीयता और समवेदना से पूछा—तूने तो देख-सुन कर विवाह किया था, क्या बात है?

भाभी भी बोलीं—भई हमने तो सब कुछ किया था। आदमी दिखा दिया, बात करा दी। विवाह से पहले इससे अधिक और क्या देखा जा सकता था!

विमला ने फिर आग्रह किया— क्या सचमुच पसन्द नहीं?

—क्या पसन्द नहीं? —तारा रूखे स्वर में बोली।

विमला ने संकोच दूर हटा कर पूछा—और क्या पसन्द होगा, तेरे अपने आदमी के लिए पूछ रहे हैं ?

—आदमी ही तो नहीं है ।—तारा ने उत्तर दिया ।

भाभी और विमला को सन्नाटा मार गया । कुछ देर मुंह लटकाए बैठी रहीं । तारा फिर भी न बोली । कुछ देर बाद विमला दुख में बिना कुछ और बात किए चली गई, तो भाभी ने समझाया—बहन; अपनी तरफ से तो सब देख-भाल लिया था, और क्या कर सकते थे । ऐसी ही बात है तो तू इतना दिल छोटा क्यों करती है । कमज़ोर होंगे तो इलाज भी हो जाता है । अपना पर्दा तो रखना चाहिए । विमला के सामने तो तुझे ऐसे नहीं कहना चाहिए था । वह एक नगर नायन है ; दुनिया भर में डोंडी पीट देगी ।

तारा समझी और अधिक रुखाई से बोली—तो आदमी क्या बस वही कुछ होता है ?

एक मूठ धान

शैलेश मटियानी

घर-वाड़ तोड़ कर भी पकी हुई फसलों का स्वाद ले लेने वाले पशुओं का पूरा लेखा-जोखा, ग्वालों के सरदार धरम सिंह उर्फ धिरकुवा के पास ही रहता था। कावरी, सेतुली वकरियों और विदुली-मधनी गायों से लेकर गजावा-खैरा और मगनुवा वैलों तक की चटोर नीयत से धिरकुवा रत्ती-रत्ती परिचित था। इनमें से हरेक की आंख की चमक और कानों की खड़ी सलामी देख कर ही धिरकुवा भांप लेता था कि जंगल की घास से उचट करके कावरी, विदुली या कि मगनुवा की दीठ कहां-कहां घूम रही है।

और मगनुवा के वारे में बनप्रधान धिरकुवा की राय यही थी, कि मगनुवा मेरा वैल जितना हल जोतने में माहिर है, उतना ही अक्ल का भी पूरा है। जानता है पट्ठा कि मगनुवा रे, तेरा मालिक तो वैलों को खाली खेतों में फिराने तक ही पोंछता-पलासता है। उसको तो तेरे जूड़े तभी तक प्यारे लगते हैं, जव तक खेतों में हल जोतने, पटेला फिराने और दनैला लगाने का काम-काज निवटाना होता है। पकी हुई फसल में से अन्न के दाने डालते हुए तो उसके हल की मूठ कसकर पकड़ने वाले मज़वूत हाथ थर-थर हिलने लगते हैं। और, मगनुवा रे, 'विन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न भीख' कह रखा है। पकी हुई फसलों पर तो पहला हक तुम वैलों का है, रे, जो अपने जूड़ों का पसीना नितार कर बीज को उपजाऊ लीक देते हैं। तो, भाई, 'राजी से नहीं, तो चालवाज़ी से' वाली मिसाल तू भी कायम कर और जब मौक़ा लगे, पकी हुई फ़सल में से अपने हिस्से के दाने वटोर ले।

बनप्रधान धिरकुवा की यह राय एकदम सही थी और मगनुवा के वारे में यह सभी जानते थे कि ज्यों-ज्यों फसल पकने के दिन नज़दीक आते जाते हैं, त्यों-त्यों मगनुवा का चित्त भी डोलने लगता है। आंखों की पुतलियां जंगल की छोटी-छोटी घास पर थिरती ही नहीं हैं। कानों की खड़ी सलामी देते हुए, मगनुवा पकी हुई फसल की लम्वी-लम्वी लहरों में डूवने की तृष्णा से अकुला उठता है और ग्वाले की दीठ बचाई नहीं कि अपने हिस्से का अन्न वटोरता ही दिखाई देता है।

मगनुवा की एक खूवी यह भी थी कि वह अपने मालिक पदम सिंह के खेतों की फसल में ही मुंह मारता था। जिन खेतों में उसे अपने जूड़ों का पसीना नितारना

पड़ता था, उनसे वह भलीभांति परिचित था और जंगल से यदा-कदा कहीं एकाध चक्कर मार लेता था।

मगर कल न जाने कैसे मगनुवा अपनी बान विसर गया। जंगल से धिरकुवा वनप्रधान की दीठ बचा कर सीधे सिमार के खेतों में पहुंचा, तो पदम सिंह का खेत छोड़ कर, हेमंत सिंह के धान के खेत में घुस गया। धान की असौजिया फसल फेनिल-सर्पिल पहाड़ी नदियों की तरह लहरा रहीं थीं और उन अन्न-वालों की लम्बी-लम्बी सुनहली लहरों में डूबा हुआ मगनुवा तब तक आनन्द के साथ धानों का स्वाद लेता रहा, जब तक हेमंत सिंह की घरवाली विशनुली का फैंका हुआ पत्थर उसके सींग से नहीं टकराया—अरे, मर गए हो, रे तुम इस उजाड़ू बैल के जोतने-पोसने वाले ? जो अपने इस मस्त कलन्दर हाथी को हमारे धान के खेत में छोड़ रखा है।

एक लम्बी हांक लगा कर, वानर जैसी भगाती हुई, घट (पनचक्की) से बाहर निकल कर विशनुली सीधे अपने धान के खेत की ओर दौड़ी थी। कुलियाने वाले खेतों की एक पंक्तिबद्ध पाट सुंयाल नदी के किनारे-किनारे फैली हुई थी, जो छानी का सेरा कहलाता था। सुंयाल के किनारे-किनारे ही पनैलों की धार से चलने वाली पनचक्कियां भी थीं।

पनचक्की के अन्दर बैठे-बैठे ही, विशनुली ने अपने खेतों की ओर दीठ डाली थी कि मगनुवा दिखाई दे गया था। बैल को खेत उजाड़ते देखना था कि विशनुली गोफण से छूटे गोसे जैसी खेतों की ओर दौड़ पड़ी थी। तीन-चार खेत ऊपर से ही ऐसा घुमा कर मारा था पत्थर कि ठीक मगनुवा के बाएं सींग में ही लगा था और मगनुवा पनचक्की के पाटों जैसा ही चारों तरफ को घूमने लग गया था। धान की मूठ उसके मुंह में अधचबाई ही पड़ी रह गई थी।

यह संजोग ही था कि पदम सिंह की घरवाली रेवती भी अपने चौथे दिन के कपड़े धोने सुंयाल के किनारे ही आई हुई थी। विशनुली को हांक-हांक करते हुए दौड़ते देख कर, वह भी उधर को ही दौड़ पड़ी थी कि कहीं हमारा ही मगनुवा तो नहीं है ?

विशनुली पत्थर फैंकती, गलियाती चली जा रही थी—द, रे। इस सांड के सींगों को तेल लगाने वालों के हाथ टूट जाएं। अभी नई फसल की मूठ भूमिया देव को भी नहीं चढ़ाई है कि यह उजाड़ू फसल जूठी करने वड़ा न्यौता हुआ पाहुना जैसा पहुंच गया। द, तुम सांड के कंधे पर हल रखने वाला न भुगते तेरी जोती हुई फसल को। न लगे इस साल के नए धानों के चावल का भात उसके मुंह से····।

रेवती नीचे से चिल्लाई—विशनुली दिदी, फसल पकने के दिनों में ऐसी निठुर गालियां क्यों देती है, भली ? जानवर की वात है, उसे समझ थोड़े ही होती है ?

बिशनुली पलट कर खड़ी हो गई—अरे, जानवर को नहीं, तो जानवर के मालिकों को तो समझ होनी चाहिए ? क्यों रेवती ? इस समय तो बड़ा शहद जैसा छोड़ रही है कि बिशनुली दिदी, निठुर गालियां क्यों देती है···उस दिन तेरे निहोरे करने को गई थी कि दो दिन हलजोत का काम निवटाने को ज़रा अपना बैल लगा दे, बैणा। ···हमारा बायां बीमार पड़ा हुआ था। मगर, तेरे मुंह से नटौरे ही निकले कि अभी तो हमारे ही खेत विन जोते पड़े हैं। काम-काज के समय हाथ सारने में तो तुम लोगों के हाड़ हंसने लगते हैं, मगर पकी हुई फसल चौपट कराते समय बड़ा शहद फूटता है मुंह से। ऐसी ही माया-ममता है अपने सांडों की, तो मेरी पकी हुई फसल को चौपट क्यों करवा रही है ? नहीं होता जतन, तो शिवजी के मंदिर में चढ़ा दे। बगैर साईं-गुसांई का मुसटण्डा फिरता ही रहेगा, फिर नहीं दूंगी मैं निठुर गालियां।

रेवती खिसिया गई। बोली—दिदी, बैल देने को ना-ना तो नहीं की थी मैंने, मगर अपनी खेती को जोतना ही बाकी पड़ा हुआ था और हमारे किरपाल के बाबू दिल्ली, जानकी बेटी के न्यौते में जाने वाले थे। नहीं तो भला, एक बैल के लिए तुम्हारा असन्तोष मोल लेती। हमारे मगनुवा का जूड़ा तो और ज्यादा नहीं घिस जाता, तुम्हारे खेत जोतने में ?

—घिसने का जहां तक सवाल है, रेवती, घिसने को तो इस समय तेरे मगनुवा के दांत भी नहीं घिस रहे होंगे।—बिशनुली व्यंग्यपूर्वक चिल्लाई, मगर अपने खेत में पहुंचते ही उसका कोप क्लेश में बदल गया, जब उसने देखा कि मगनुवा के बाएं सींग का खोल जड़ से ही उतर गया है।

मगनुवा चक्कर खाते-खाते खेत में ही बैठ गया था। उखड़े हुए सींग से बहता हुआ खून उसकी कनपटियों से नीचे तक बहता हुआ, बालों में जमता चला जा रहा है। बिशनुली और रेवती को आते देखा तो मगनुवा भयभीत आंखों से उन्हें घूरता हुआ उठ खड़ा हुआ और खेत से बाहर निकलने लगा।

रेवती ने मगनुवा की करुणाभरी आंखें और उनमें भरे हुए आंसू देखते ही रोना शुरू कर दिया—द, वे बिशनुली दिदी, तेरे निशानेबाज़ हाथ टूट जाएं। मेरे मगनुवा का सिर फोड़ दिया है तूने तो। लाड-प्यार से पाला हुआ बैल है मेरा, तेरे हाथों के पत्थर झेलने को तो नहीं पोसा है मैंने इसे ? ठैर, पापिणी ! ठैर तो सही तू। मेरा मगनुवा जो मरेगा, तो तुझे भी गोहत्या के पातक से मुक्ति नहीं मिलेगी। तेरे निशानेबाज़ हाथों में तो नरक के कीड़े पड़ेंगे। तब तू समझेगी कि पराए बैल को पत्थर मारना कैसा होता है।

बिशनुली भी पथरा-सी गई थी। उसका पत्थर ठीक मगनुवा के सींग में ही लगे, ऐसी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। मगनुवा सींग उखड़ने से मरेगा नहीं, इतना तो वह जानती थी, मगर यह कल्पना उसे कचोटने लगी कि सारे गांव

में उसकी निंदा ही होगी। कहने वाले यह कहते भी नहीं चूकेंगे कि आज बिशनुली ने पदम सिंह के बैल का सींग तोड़ा है, कल-परसों हमारे बैलों के सिर भी फोड़ेगी। पशु की नादानी के लिए ऐसा गाहंतक दण्ड देने वाली औरत को तो डायन का ही दूसरा रूप समझना चाहिए।

पश्चाताप भरे स्वर में, रेवती से बोली—बैणा, मेरे हाथ टूट जाएं, मुझे माफ कर दे। मैं मूरख कहां जानती थी कि मेरा फैंका हुआ पत्थर ठीक मगनुवा के सिर ही में लगेगा। इतने बानर आते हैं, खेत उजाड़ जाते हैं। मैं पत्थर पर पत्थर फैंकते-फैंकते थक जाती हूं, मगर मजाल है कि एक पत्थर भी कभी किसी बानर की खोपड़ी में लग जाए। आज ही जैसे टूट गए होंगे हाथ ठीक निशाने पर।—कह कर बिशनुली भी आगे बढ़ आई और अपनी धोती का छोर फाड़ कर मगनवा का सींग बांधने लगी, तो रेवती का रोध हल्का हो आया। मगनुवा को उसने रोक लिया था और उसके आंसू पोंछने लगी थी। बोली—खैर, जो होना था, हो गया, बिशनुली दिदी।···मगर, जहां तक निशानेबाजी का सवाल है, तुम्हारे खानदान में निशानेबाजों की कोई कमी तो है नहीं। हमारे किरपाल के बाबू एक दिन कह रहे थे कि बिशनुली भौजी का भाई विक्रम सिंह बंदूक की निशानेबाजी में नम्बर एक उस्ताद है। उड़ते हुए पंछियों को छर्रे मार देता है। ··· खैर, जो होना था हो गया? जो कुछ होना है, वह तो अब होगा।

बिशनुली और रेवती ने चौंक कर देखा तो क्रोध से कांपता हुआ पदमसिंह लट्ठ लिए हुए खड़ा था। न जाने किसने खबर पहुंचा दी थी कि मगनुवा ने हेमंतसिंह का धान का खेत उजाड़ दिया है और बिशनुली-रेवती दोनों में दरांतियां चल गई हैं। मगनुवा का सिर फूट गया था, खेत में ही लमलेट हो गया है।

बिशनुली-रेवती सकपकाई ही खड़ी थीं कि पदमसिंह चिल्लाया—मत बांध, वे बिशनुली भौजी, मेरे बैल के सींग में कपड़ा। सिर फोड़ कर, सबूत मिटाना चाहती है? क्या करूं औरत जात हो गई है तू। नहीं तो जैसे तूने बैल का सिर फोड़ा था, वैसे ही, तेरी गुद्दी भी बाहर निकाल देता मैं। यह रेवती भी नामरद औरत है। इसके बैल का सिर फूट गया है और यह मीठी-मीठी बातें कर रही है कि खैर जो होना था, हो गया।···अरे, मैं पूछता हूं कि हो कैसे गया? अभी तो मेरे मगनुवा का सींग ही टूटा है, मगर हूं मैं भी असल ठाकुर, तो हेमंत के दोनों बैलों के सींग उखाड़ कर ही दम लूंगा।···हांक, वे रेवा। मगनुवा को घर को ले चल तू। बिशनुली भौजी के बैल भी तो जंगल ही गए होंगे चरने? घंटे भर में ही चार उखाड़े हुए सींग लेकर मैं भी लौटता हूं घर को। फिर देखता हूं कि कौन माई का लाल मेरा मुकाबला करता है।

इतना कह कर, पदमसिंह सीधे जंगल की तरफ को दौड़ा। रेवती रोकना

चाहती थी कि पुरुष जात का क्रोध है, अनर्थ ही करेगा, मगर रोक नहीं पाई। विशनुली भी घबरा गई। बोली—रेवू, पदमसिंह तो अपने काबू में नहीं है इस समय, मगर बात सिर्फ बैलों के सींग उखाड़ने तक ही नहीं थमेगी। हमारे परताप के बाबू का भी गुस्सा कम थोड़े ही है। हे राम, न जाने आज कैसी कुघड़ी में घर से बाहर निकली थी मैं। सारा अनर्थ मेरा ही सिरजा हुआ तो है। मैं जो नहीं मारती पत्थर, तो यह सारी नौबत ही क्यों आती ?

विशनुली रोने लगी, तो रेवती भी रोने लगी कि—बिशनुली दिदी, अब क्या होगा, वे ? औरत जात का झगड़ा तो मुंह के तीखे बोल-वचनों से उपजता है, मीठे बोल-वचनों पर आकर खतम हो जाता है। ···मगर, पुरुष जात का झगड़ा तो लट्ठों से ही शुरू होता है और उसे थामना बहुत कठिन होता है। तेरे-मेरे कहने से थोड़े ही रुकेंगे दोनों।···

अचानक रेवती को सुधि आई, गोपाल प्रधान की।

—हे राम, कहां होंगे गोपाल सौरज्यू ? रेवती बोली—विशनुली दिदी, हमारे किरपाल के बाबू को अगर अनर्थ करने से कोई रोक सकता है तो गोपाल सौरज्यू ही रोक सकते हैं। ···किसी दूसरे के वश में तो उन्हें रोकना है नहीं। मगर, हमारे गांव में पहुंच कर उन्हें भेजने तक तो न जाने किरपाल के बाबू क्या अनर्थ कर बैठेंगे ?···

कहते-कहते रेवती, सीधे गांव की ओर दौड़ पड़ी और ज़ोर से गोपाल सौरज्यू, गोपाल सौरज्यू ! पुकारने लगी।

* * *

गोपाल प्रधान गांव के उत्तर की तरफ से जंगल की ओर बढ़े थे, सो पदमसिंह से पहले ही गोचर जंगल तक पहुंच गए क्योंकि सुंथाल किनारे से जंगल बहुत दूर पड़ता था।

हेमंतसिंह शक्तेश्वर महादेव के मंदिर में गया हुआ था। लौटते ही उसे भी सारी घटना मालूम हो गई थी और कुल्हाड़ी कंधे पर रख कर, वह भी जंगल की तरफ दौड़ पड़ा था।

पदमसिंह जंगल में पहुंचा और धिरकुवा बनप्रधान से पूछने लगा—क्यों रे, धरमसिंह ? हेमंत के दोनों बैल कहां चर रहे हैं ?

धरमसिंह ने हाथ उठाकर उस ओर इशारा कर दिया, जहां दोनों बैलों को रस्सी से बांधे गोपाल प्रधान खड़े थे। उनके पास ही सहमी-सहमी-सी रेवती खड़ी थी और बिशनुली भी।

बिशनुली दोनों हाथ जोड़ती बोली—देवर हो, मेरे हाथों से पाप हो गया, उसके लिए माफी चाहती हूं। तुम्हारी बहन की ठौर हूं, मेरी लाज रख लो। पुरुष जात का कोप अनर्थ करने वाला होता है।

—बस-बस। रहने दे अपने उपदेश। उस समय कहां गए थे तेरे ज्ञान-ध्यान, जिस समय तूने मेरे बैल का सिर फोड़ा? · · · प्रधान चाचा, आप एक तरफ हो जाएं, मैं इन बैलों के सींग उखाड़े बिना यहां से वापस नहीं जाऊंगा।—पदमसिंह क्रोध से कांपता आगे बढ़ा—कोई भी अगर मेरे और बैलों के बीच में आया, तो इस समय मैं क्रोध से बावला हो रहा हूं, बच्चा-बूढ़ा औरत-मरद कुछ नहीं दिखाई देगा मुझे।

रेवती-बिशनुली तो घबरा कर और पीछे हट गईं, मगर गोपाल प्रधान आगे बढ़ आए—उधर ही खड़ा रह, रे, पदमिया। इन बैलों के सींग उखाड़ने से पहले तो तुझे गोपाल प्रधान का सिर उखाड़ना पड़ेगा। ले, पहले मेरे सिर में लट्ठ मार· · ·

पदम सिंह अपनी ही ठौर ठिठक गया।

गोपाल प्रधान के सिर में सफेद बालों का गुच्छा चमक रहा था और उनकी आंखों में मर्मभेदी तीक्ष्णता ऐसे उभरी हुई थी, जैसे धनुष पर दो तीर चढ़ाए हुए हों। सत्तर से उस पार पहुंची हुई उमर थी, मगर कमर में झोल नहीं पड़ा था। कांठी का सांचा अब भी ठोस था। सारे गांव भर में उनको हरेक ग्रामीण प्रधान चाचा कहा करता था और हर बहू उन्हें गोपाल सौरज्यू (ससुरजी) कहा करती थी।

पदमसिंह साहस नहीं जुटा सका कि गोपाल प्रधान की आंखों से आंखें मिला सके, उनके सिर में लट्ठ मारने की निर्ममता जुटाना तो खैर असम्भव ही था उसके लिए। सिर्फ इतना ही बोला—प्रधान चाचा, सदैव पितरों के रूप में ही आपको देखा है, सो आप पर लट्ठ छोड़ने की नीचता तो मैं नहीं कर सकता, मगर मैं इन बैलों के सींग उखाड़े बिना यहां से वापस नहीं जाऊंगा।

गोपाल प्रधान मन ही मन तो पदमसिंह की बातों से गद्‌गद् ही हुए, मगर मुंह से और तीखी आवाज़ में बोले—क्यों, रे पदमिया? बैलों के सींग तू क्यों उखाड़ेगा? इसलिए कि ये नादान और परवश पशु हैं? अच्छा, तू यह तो बता रे पागल, क्या मगनुवा का सींग इन बैलों ने उखाड़ा है? बिशनुली बहू से गलती हो गई और उसके लिए वह माफी भी मांग रही है।· · · तू इन बैलों के सींग उखाड़ भी लेगा, तो तुझे कौन सा सुख मिलेगा? बड़ा पौरुष वाला बना है छोकरा। और ससुरा बेबस पशुओं के सींग उखाड़ना चाहता है।

—कौन उखाड़ेगा मेरे बैलों के सींग? कुल्हाड़ी लेकर दौड़ता हुआ हेमंतसिंह चिल्लाया—अरे, पदमिया! तू क्या उखाड़ेगा, रे मेरे बैलों के सींग? इससे पहले तो मैं तेरा ही सिर उखाड़ दूंगा।· · · ·

गोपाल प्रधान ने लपक कर, हेमंत सिंह को पकड़ लिया। चढ़ाई दौड़ कर पार करने के कारण, हेमंतसिंह कुछ थक गया था और हांप रहा था। गोपाल प्रधान

ने एक थप्पड़ खींच कर मारा—मार छोरे का मुंह थप्पड़ ही थप्पड़ों से लाल कर दूंगा । ऐं, ले, मेरा वेट्टा विलकुल जरमन-जापान की जैसी लड़ाई लड़ने को आ गया है ? चुप्प, ला, इधर दे कुल्हाड़ी । अरे, तुम सुसरे तो मेरे जीते जी अपने-अपने मन से फौजदारी करने पर उतर आए हो । मेरे मर जाने के बाद तो न जाने क्या-क्या अनर्थ करोगे ?

हेमंतसिंह के हाथ से कुल्हाड़ी छीन कर, गोपाल प्रधान पदमसिंह की तरफ वढ़े और उसके हाथ से भी लट्ठ छीन लिया ।—तेरे मुख पर भी मारूंगा एक झापड़ कस के, तव ठिकाने पर आ जाओगे तुम दोनों । दोनों के कान ऐंठ कर दूसरी तरफ को घुमा दूंगा तो भूल जाओगे पहलवानी दिखाना ।····अरे, सुसरो, पहले इस गोपाल चाचा को श्मशान में फूंक लो । फिर करते रहना मनमानी··· ।

इतना कहते-कहते, गोपाल प्रधान की आवाज़ भर्रा गई, आंखों में आंसू भर गए और वह नीचे जमीन पर वैठ गए । उनकी आंखें तो सुख से भर गई थीं, कि—अरे, सुसरे लाख जवान और गुस्सल हों, मगर अभी पितरों की लाज उतारने की नीचता से कोरे ही हैं ।

········और पदमसिंह-हेमंतसिंह दोनों इस बात से लजा गए थे कि प्रधान चाचा रोने लग गए हैं ।

पदमसिंह और हेमंतसिंह—दोनों ही सकपका गए । गोपाल प्रधान की वातों का उत्तर किसी को सूझा ही नहीं । वस, अपनी असमर्थता से तिलमिलाते रह गए ।

बिशनुली बोली—देवर हो, अव ज्यादा बात नहीं वढ़ाओ । तुम भी चुप रहो, परताप के बाबू ! काम करते समय तुम्हें भी अपने हाड़ खुलते हुए लगते हैं, मगर पहलवानी करने को कहो, तो वाघ की तरह वाल खड़े करने लगते हैं । तुम जो आज सवेरे-सवेरे मेरे साथ झगड़ा नहीं करते, तो क्यों मैं रेवा को वैसी-वैसी अलच्छिन गालियां देती और क्यों मगनुवा वेचारे का सिर फोड़ती ।··· हे राम, ठीक सींग ही टूटा छोकरे का । खून निकलने में ही था । मुझे तो ऐसा लग रहा है, जैसे मेरे कलेजे से निकल रहा हो । पदमसिंह भी बड़े निर्मोही हैं । धोती से सींग वांध रही थी, तो बांधने भी नहीं दिया इन्होंने ।

गोपाल प्रधान बोले—देखो रे सुसरो । मेरी बहुओं का शील-स्वभाव और मोहिल हिया देखो ।····और शरम करो अपनी उत्पाती अक्ल पर । सुनता है, रे, पदमिया ? तू भी सुन रहा है न, हेमंता ?······सुसरो, तुम दोनों छोकरों में से कोई इस मामले को लेकर ऊं से चूं भी करेगा और कचहरी-पटवारी की तरफ जाएगा, तो दोनों सुसरों के कान उखाड़ कर एक तरफ रख दूंगा । दो-दो तीन-तीन बालकों के वाप वन गए हैं सुसरे, मगर अभी तक इतनी सी अक्ल नहीं आई कि एक मूठ धान और एक उखड़े सींग की तौल से ज्यादा कीमती गांव-घरों की

नातेदारी होती है। अरे, बावलो, बैल का सींग भी पूर जाएगा और अच्छे मन से धान बोओगे, तो अगले साल की फसल में फिर खेत भरपूर दिखाई देगा।···मगर, तुम लोगों के मन की ममता उजड़ गई, एक-दूसरे के साथ अपनेपन का नाता उखड़ गया, तो फिर कभी नहीं पनपेगा तुम लोगों का हिया।

इतना कह कर गोपाल प्रधान ने बैलों की रस्सी खोल दी और उन्हें चरने छोड़ दिया; रस्सी लपेटते हुए बोले—आओ, रे छोरो। अब मेरा मुंह क्या देख रहे हो? जा, वे बिशनुली बहू, तू भी रेवती के साथ जा। मगनुवा के सींग में कपड़ा लपेट देना, नहीं तो कौवे उसे परेशान करेंगे।

क्लेम

मोहन राकेश

अड्डे से तांगा चला तो उसमें कुल तीन ही सवारियां थीं। यदि दूर से बस आती दिखाई न दे जाती तो साधुसिंह अभी और कुछ देर चौथी सवारी का इन्तज़ार करता। परन्तु बस के आते ही तांगे में बैठी हुई सवारियां उतर कर बस में चली जाती थीं, इसलिए बस के अड्डे पर पहुंचने से पहले तांगा निकाल लेना आवश्यक हो जाता था। बस के आने से पहले सवारियां कितनी ही उतावली मचाती रहें, वह चार सवारियां पूरी किए बिना अड्डे से बाहर नहीं निकलता था। बस कचहरी से माडल टाउन के पांच पैसे लेती थी, इसलिए तांगे भी पांच-पांच पैसे सवारी लेकर ही जाते थे। यदि पूरी चार सवारियां हों तो कहीं पांच आने पैसे बन पाते थे, नहीं तो घोड़े को सवा मील दौड़ा कर भी दस या पन्द्रह पैसे ही हाथ लगते थे। आज सुबह से उसने माडल टाउन के तीन फेरे लगाए थे, मगर अभी तक उसकी जेब में पूरे सत्रह आने भी जमा नहीं हो पाए थे। मई की चिलचिलाती धूप में घोड़े का वैसे ही दम निकलने को हो रहता था, फिर उसे दस-दस पैसे के लिए दौड़ाते फिरना अक्लमंदी की बात नहीं थी। मगर इसके सिवाए चारा ही नहीं था। गर्मी में एक तो सवारी निकलती ही कम थी, और दूसरे मुकाबला बस सर्विस के साथ था, जो कचहरी से माडल टाउन पहुंचने में पांच मिनट भी नहीं लेती थी।

—चल अफसरा, चल, तेरे सदके, चल।— वह खड़ा होकर लगाम को ही घुमाता हुआ उससे चाबुक का काम ले रहा था। धोबी मुहल्ला पार करने तक उसे आशा थी कि शायद रास्ते में ही कोई सवारी मिल जाए, परन्तु ड्योढ़ियों में ऊंघती हुई दो-एक धोबिनों को छोड़ कर और सारा मुहल्ला सुनसान था। मुहल्ले से निकल कर उसने लगाम ढीली छोड़ दी और आप वज़न बराबर करने के लिए बांस पर बैठ गया।

पीछे से बस आ रही थी, इसलिए पिछली सीट पर बैठी हुई स्त्री ज़रा तेज़ हो उठी—बैठाते वक्त तो मिन्नत-तरला करके बैठा लेते हैं और चलाते वक्त इस तरह चलाते हैं जैसे सैर करने के लिए निकले हों। इतनी देर लगानी थी तो हमसे पहले कह देवे, हम बस में बैठ जाते। हमारा इतना ज़रूरी काम है, नहीं तो हमें इतनी गर्मी में घर से निकलने की क्या पड़ी थी।

साधुसिंह उचक कर बांस पर ज़रा और आगे हो गया और लगाम झटकने लगा—चल, तुझे ठण्ड पड़े, तेरी जवानी के सदके, चला चल गोली की चाल, माई बीबी नाराज़ हो रही है। चला चल, तेरी खैर अफसरा। मार दे हल्ला।

मगर लगाम के झटके खाकर भी अफसरा की चाल तेज़ नहीं हुई और वह दो बार इधर-उधर सिर मार कर अपनी चाल चलता रहा। बस हार्न बजाती हुई पीछे से आई और धूल का ववण्डर छोड़ कर आगे निकल गई।

—देखा, निकल गई न बस। कहता था बस से पहले पहुंचाऊंगा?—पीछे बैठी हुई स्त्री फिर बोली।

साधुसिंह कुछ उत्तर न देकर लगाम झटकता रहा और अफसरा लगाम की परवाह किए बिना अपनी चाल चलता रहा।

एक मील का रास्ता कोई ज्यादा सफर नहीं था। सूरज ढलने के बाद यही रास्ता चुटकियों में कट जाता था। मगर अभी तो ठीक दोपहर थी और दाएं-बाएं कहीं छाया नज़र भी आती थी तो बहुत सिमटी-सिमटी और उजड़ी-उजड़ी-सी। कोलतार की सड़क भी जगह-जगह से पिघल गई थी। अभी यह तो गर्मी का आरम्भ ही था, आगे जाकर जाने क्या होगा?

—चल राजा, चल पुतरा, तेरी जान की खैर, तेरी सलामती की बरकत, गम खा जा और चला चल, तेरी मां के दूध की दुआ...।

तांगे में बैठी हुई तीनों सवारियां क्लेम्स के दफ्तर की थीं। आगे बैठा हुआ सरदार कह रहा था कि उसका साठ हज़ार का क्लेम मंजूर हुआ है, जिसमें से आधा उसे नकद मिलेगा और आधा जायदाद के रूप में। पीछे बैठी हुई स्त्री रो रही थी कि बेड़ा गर्क हो क्लेम मंजूर करने वालों का, जो उन्होंने उसका केवल अठारह हज़ार का ही क्लेम मंजूर किया है। उनके गुजरांवाला में चार मकान थे और एक बगीचा था, साढ़े तीन कनाल का। बगीचा चार कनाल का होता तो उसे और रुपया मिलता। अगर उन्हें पहले पता होता तो वे आधा कनाल और ज्यादा लिखा देते, वे लोग तो अपनी सचाई में ही मारे गए। घर में उसकी दो जवान लड़कियां थीं, जिन्हें अकेली छोड़ कर उसे रोज़-रोज़ बटाला से जालन्धर के चक्कर काटने पड़ते थे। इसी तरह चक्कर काटते-काटते ही उसके पति की मृत्यु हो गई थी और वह आप भी बीमार रहती थी।

—पता नहीं अपने जीते जी मुझे भी इन कसाइयों का पैसा देखने को मिलता है या नहीं? जहां वे चले गए, वहां में भी चली जाऊंगी और मेरे बच्चे भी पीछे बिलख-बिलख कर मर जाएंगे। वह जैसे बात न करके फरियाद कर रही थी और उसके चेहरे का भाव ऐसा हो रहा था जैसे अभी-अभी कोई सदमा पहुंचा हो।

उस स्त्री के साथ बैठा हुआ व्यक्ति बिल्कुल खामोश था।

—माई जी, अठारह हज़ार में से अभी तक कुछ मिला है या नहीं ? आगे बैठे सरदार ने सहानुभूति के स्वर में पूछा ।

—मिला है ? कुल छः हज़ार अभी तक मिला है । वह स्त्री बोली—मेरा बच्चों वाला घर है, मैं छः हज़ार लेकर सिर मारूं ? मेरे बच्चे अच्छा खाने-पहनने के आदी हैं, उन पर तो छः-छः हज़ार महीने में खर्च होते थे । बेड़ा गर्क हो इन दफ्तर वालों का, इन्होंने कुछ भी मेरे हाथ-पल्ले नहीं डाला । छः हज़ार रुपया कोई रकम होती है ? छः हज़ार को आदमी खाए कि रखे ? यह रकम भी कहते हैं कि विधवा होने के कारण मुझे जल्दी मिल गई है । यह भी इन्होंने मुझ पर अहसान किया है । मेरा घरवाला चला गया और ये मुए मुझ पर अहसान करने लगे हैं ।···और वह ज़ोर-ज़ोर रोने लगी ।

खामोश बैठा हुआ व्यक्ति अब सरदार की ओर मुड़ा और तिरस्कार-सूचक ध्वनि गले से निकाल कर बोला—सच कहते हैं कि औरतों की अक्ल टखनों में होती है ।

—क्यों भाई, मुझ गरीबनी ने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मुझे गालियां दे रहा है ?—स्त्री आंसू पोंछती हुई तमक कर बोली—मैं तुझसे तेरी ज़मीन-जायदाद तो नहीं मांग रही हूं । अपना जो कुछ छोड़ आई हूं, उसी का रोना रो रही हूं ।

—तू अकेली नहीं छोड़ आई, हम सब लोग अपने घर-बार पीछे छोड़ आए हैं । शुक्र कर तुझे छः हज़ार मिल गए हैं, यहां हम जैसे भी हैं जिन्हें अभी तक पाई नहीं मिली । हमारा यही कसूर है कि मियां-बीबी दोनों सलामत हैं । दोनों में से एक मर-खप जाता तो हमारे बच्चों को भी अब तक दो कौर रोटी नसीब हो गई होती । आंखें मेरी अंधी हो रही हैं, जोड़ मेरे दर्द करते हैं, मैं जीता हुआ क्या मुर्दे से अच्छा हूं ? मगर सरकार के घर में अंधेर ही अंधेर है जो इन्सान की जरूरत नहीं देखते, जीता मरा हुआ गिनते हैं । मुझे आज एक हज़ार ही दे दें तो मैं कोई छोटी-मोटी दुकान डाल कर बैठ जाऊं । मेरे बच्चों के पास तो फटी हुई कमीज़ें भी नहीं हैं ।

—अपनी-अपनी तकदीर लेनी है, भाई साहब । कोई किसी दूसरे की तकदीर थोड़े ही ले सकता है ।—सरदार मध्यस्थता करता हुआ बोला—हम भी दुखी हैं, आप भी दुखी हैं और यह माई भी दुखी है, कौन दुखी नहीं है ? कोई कम दुखी है, कोई ज्यादा दुखी है ।

—आपको साठ हज़ार मिल रहे हैं, आपको क्या दुख है ? वह व्यक्ति बोला ।

—मिल रहे हैं, यह भी तकदीर की बात है ।—सरदार बोला—क्लेम करते वक्त हमें अक्ल आ गई, उसी का यह फल समझो । नहीं तो हमें भी दस-पन्द्रह हज़ार पकड़ा कर परे हटा देते ।

—आपने क्लेम ज्यादा का भरा होगा।

—हमारी लाख-डेढ़ लाख की जायदाद थी। मगर हमें पता था कि असली क्लेम भरेंगे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। सो हमने वाहगुरू का नाम ले कर फार्म इस तरह से भरा कि हमें अपनी जायदाद की असली लागत तो कम से कम मिल जाए। मगर फिर भी इन बेईमानों ने कुल साठ हज़ार ही पल्ले डाले हैं। हम छः भाई हैं, दस-दस हज़ार लेकर बैठे रहेंगे।

—मैं उनसे कितना कह रही थी, मगर उन्होंने मेरी एक नहीं सुनी। स्त्री हताश-सी हाथ मलती हुई बोली।

—क्या ?—सरदार ने पूछा।

—मैं कह रही थी कि जितनी जायदाद छोड़ आए हो, उससे ज्यादा का क्लेम भरो। मगर ये ऐसे मूरख थे, ऐसे मूरख थे कि हठ पकड़े रहे कि नहीं, जो है वही भरेंगे। आगे इतने दुख उठाए हैं, अब और बेईमानी क्यों करें। आज मेरे सामने होते तो मैं पूछती कि बताओ बेईमानी करने वाले सुखी हैं या हम जैसे लोग सुखी हैं ? लोगों ने जो कुछ छोड़ा था उनका दुगुना-दुगुना लिया, और हम बैठे हैं छः हज़ार ले कर। देख लेना, यह सरकार कभी नहीं रहेगी। हाय ! मेरे बच्चों को भूखों मार दिया। और वह फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

उसके साथ बैठे हुए व्यक्ति ने दूसरी ओर मुंह करके माथे पर हाथ रख लिया। सरदार फिर सहानुभूति प्रकट करने लगा—रोने से कुछ नहीं होगा, माई। जो लिखी है, वही मिलेगी। करतार ने सब करनी पहले ही से लिख कर रखी है। जो मिला है, उसे लेकर सन्तोष कर।

—सन्तोष करने को एक मैं ही रह गई हूं ? और सारी दुनिया मौज करे और मैं सन्तोष करके बैठी रहूं ? · · ·और वह रोती रही।

—ज़रा जल्दी पहुंचा, भाई, इतनी आहिस्ते क्यों चला रहा है ?—माई के साथ बैठा हुआ व्यक्ति साधुसिंह से बोला।

साधुसिंह झुंझला कर बार-बार लगाम को झटके दे रहा था, पर घोड़े की चाल में कोई फर्क नहीं आ रहा था। अब वह लगाम का सिरा ज़ोर-ज़ोर से उसकी पीठ पर मारने लगा—तेरी अफसरा की ऐसी की तैसी। तेरी पूंछ पर ततैया काटे, चल। जल्दी पुतरा, ज़रा जल्दी।

मगर ततैया के डर से भी अफसरा की चाल नहीं बदली।

क्लेम्स के दफ्तर में उन लोगों को छोड़ कर लौटते हुए साधुसिंह को एक भी सवारी नहीं मिली। वह काफी देर मार्केट के मोड़ के साथ खड़ा रहा, मगर सड़क पर उस समय कोई इन्सान ही दिखाई नहीं दे रहा था। तेरह नम्बर दुकान की ओट में दो-एक रिक्शावाले लड़के सोए हुए थे। तेरह नम्बर वाला सरदार बाहर बैठ कर बर्फ कूट रहा था। साधुसिंह का मन हुआ कि वह सरदार से

एक गिलास शिकंजवी बनवा कर पिए और कुछ देर रिक्शावाले लड़कों के पास ही लेट रहे। मगर तांगा खड़ा करने के लिए वहां कोई छायादार जगह नहीं थी और न ही आसपास कोई चरही थी, जहां से घोड़े को पानी पिलाया जा सके। घोड़ा गर्मी के मारे हांप रहा था और बार-बार ज़बान बाहर निकालता था और जेब में जो सत्रह आने थे, वे भी हिसाब से उसके अपने नहीं थे। घोड़े के लिए चारा खरीदने के लिए कम से कम बीस आने अभी और चाहिए थे। उसने ज़बान फेर कर ओंठों को गीला किया और घोड़े का रुख शहर की ओर कर दिया।

लम्बी, सीधी, वीरान सड़क पर वह अकेला ही तांगा चला रहा था। आस-पास पेड़ भी गर्मी से परेशान सिर झुकाए खड़े थे। फिर भी न जाने किन झुरमुटों में बैठी हुई चिड़ियां बोल रही थीं —चि चिच—चिचि—हि्वश् च्यु—यु यु—यु—यु—चि चिचि—चिचि···।

साधुसिंह लगामें ढीली छोड़ कर पिछली सीट पर अधलेटा-सा हो गया था। उसका ध्यान उस समय उस आम के पेड़ की डालों के इर्द-गिर्द मंडरा रहा था जो उसने बड़े चाव से पत्तोकी में अपने घर के आंगन में लगाया था। वह नौ रुपये महीने का घर बरसों के परिचय के कारण अपना घर-सा ही लगता था। एक बार हीरां ने कहा था कि पराए घर में पेड़ लगा रहे हो, इसका पालन करके दूसरों के लिए छोड़ जाओगे। मगर यह तब किसने सोचा था कि वह घर इस तरह छूटेगा कि ज़िन्दगी भर उसके पास से गुज़रना तक नसीब न होगा।

आम का पेड़ इन दिनों खूब फल दे रहा होगा और···हीरां ?

उस साल पेड़ पर पहली बार फल आया था। फल आने की खुशी में उसने न जाने कितनी कच्ची अमियां खा डाली थीं।

—क्या जान-बूझ कर दांत खट्टे करते हो ?—हीरां चिढ़ाया करती ?

—यह अपने पेड़ का फल है, जानी ! इसे खाकर भी कहीं दांत खट्टे होते हैं ?

और वह हीरां के अधखिले यौवन को अपने आलिंगन में समेट लेता।

आम हरे से पीले और पीले से सुर्ख हो आए थे, जब एक दिन··· बलवा शुरू हुआ और पत्तोकी की हर गली में खून बहने लगा। आधी रात को बलवई उनके मुहल्ले में भी घुस आए। जब उनके घर का दरवाज़ा तोड़ा गया, उस समय वह हीरां को साथ सटाए, दम साधे पड़ा था। उन्होंने झट से पिछवाड़े की ओर कूद जाने का निश्चय किया। वह पहले कूद गया, मगर हीरां दो बार उचक कर भी कूद नहीं पाई और इससे पहले कि वह फिर साहस कर पाती, किसी ने उसे पीछे खींच लिया।

अंधेरा, खेत और रेल की पटरियां···निर्जीव हाथ-पैर और भूख···टिकट, कूपन, कार्ड और नम्बर···

नाम, साधुसिंह ।

वल्द, मिलखासिंह ।

कौम, खत्री ।

ज़मीन-जायदाद, कोई नहीं ।

रुपया-पैसा, कोई नहीं ।

क्लेम···?

साधुसिंह वल्द मिलखासिंह का पाकिस्तान में कुछ नहीं रहा, जिनका वह क्लेम कर सके ।

मगर उसका वह आम का पेड़, जिसके पकने का उसने बेसब्री से इन्तज़ार किया था और जिसकी कच्ची अमियां खा-खाकर वह अपने दांत खट्टे करता रहा था, उस पेड़ की घनी छाया में उसे भविष्य में जो बरस बिताने थे···?

उसके घर की अपनी एक खास तरह की गंध की, जो कपड़ों की गांठ से लेकर आंगन की दीवारों तक, हर चीज़ में समाई हुई थी । वह गंध···?

और हीरां के शरीर की गंध, जो उसके रोएं-रोएं में समाई हुई थी···?

और वे रातें जो उस पेड़ के नीचे आसमान की ओर ताकते हुए बीती थीं···?

और आने वाली ज़िन्दगी के सब मनसूबे, जो उस घर की देहलीज़ के साथ आर-पार जाते दिल में उठा करते थे ···?

—हीरां, बता, पहले हमारे घर बेटा होगा कि बेटी ?

—हाय, शरम करो, कैसी बात करते हो ?

—अच्छा, मैं बताऊं ? पहले तेरे एक लड़की होगी, फिर दो लड़के होंगे, फिर एक लड़की होगी ···

—चुप रहो, क्या यों ही बके जाते हो ?

—दूसरी लड़की पहली लड़की से खूबसूरत होगी । उसके तेरे जैसे मुलायम बाल होंगे, बड़ी-बड़ी आंखें होंगी और ठुड्डी के पास, यहां, एक तिल होगा···।

—हाय, क्या करते हो ?

—मैं उसके इस तरह चिकुटी काटूंगा, और वह तेरी तरह रोएगी और···।

वह स्पर्श···! वह सिहरन···! वह कल्पना···! वह भविष्य···!

साधुसिंह, वल्द मिलखासिंह, कौम खत्री, नम्बर·············?
क्लेम···?

साधुसिंह वल्द मिलखासिंह का कोई क्लेम नहीं है। उसकी पाकिस्तान में न ज़मीन थी न जायदाद। मगर·····।

आम का पेड़ अब बड़ा हो गया होगा।

घर की दीवारों की गंध बदल गई होगीं।

और हीरां? उसकी गोद में अब किसके बच्चे होंगे?

साधुसिंह सीधा होकर बैठ गया। तांगा धोबी मुहल्ले में पहुंच गया था। अब भी चारों तरफ हर चीज़ उसी तरह ऊंघ रही थी। उसने लगाम को दो-एक झटके दिए। घोड़े की गर्दन थोड़ी ऊपर उठी और फिर झुक गई।

अड्डे पर पहुंच कर उसने घोड़े को चरही से पानी पिलाया और तांगा शेड में खड़ा किया। फिर उसने कल का खरीदा हुआ चारा निकाल कर घोड़े के आगे डाल दिया और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

—तेरी बरकत है अफसरा, अपने पुराने दिन फिर लौट आएंगे। खाली पेट, भर ले। अपने क्लेम तुझी को पूरे करने हैं, तेरी खैर·····

मगर अफसरा गर्दन लम्बी किए चुपचाप दाना खाता रहा।

बेगमपुल का आदर्श विद्यालय

धर्मेन्द्र गुप्त

इतवार का दिन, बेगमपुल का बाज़ार छुट्टी होने के कारण बन्द था। रेस्त्रां, होटल और एक-दो पान की दुकानें ज़रूर खुली थीं, फिर भी चारों ओर एक अजब-सी उदासी छाई थी। रोज़ाना शाम के समय बेगमपुल पर घूमने वाले भी अपने घरों से नहीं निकले थे। बेगमपुल के शुरू में ही अभी नई बनी 'न्यू मार्केट' भी खामोश थी। न्यू मार्केट की दुकानों के ऊपर बने दो कमरों वाले फ्लैटनुमा मकानों में ज़रूर कुछ चहल-पहल थी, क्योंकि इतवार की छुट्टी होने के कारण बाबू लोग अपने घरों में ही थे।

यों तो बेगमपुल की सड़क दिन-रात चलती थी। हर दस-पांच मिनट बाद कोई न कोई गाड़ी-मोटर तेज़ी से शोर मचाती गुज़र जाती, लेकिन एक ट्रक अपना हार्न करकराता आए और ठीक न्यू मार्केट के सामने ठहर कर शोर मचाए, यह फ्लैट में रहने वालों के लिए ज़रूर उत्सुकता का कारण बन जाता। दो-चार घरों के दरवाज़े खुले और मकान में रहने वाले तमाशा देखने फ्लैट के आगे बने छज्जों पर निकल आए।

ट्रक में से सामान उतारा जा रहा था। सामान कुछ खास नहीं था। बीस-पच्चीस छोटी बेंचें, दो बड़ी टेबिल, चार कुर्सियां, एक लकड़ी की अलमारी, एक टेबिलफैन, एक हारमोनियम, एक दरी में बंधा बिस्तर, एक बक्स, दीवार पर टांगने वाले दो बोर्ड, कुछ और फुटकर सामान, अन्त में एक छः फुट लम्बा साइनबोर्ड, बोर्ड पर लिखा था—आदर्श बाल विद्यालय।

सामान उतर गया। ट्रक मुड़ा और शोर करता हुआ वापस चला गया। सड़क पर सामान के साथ सिर्फ एक आदमी रह गया, जो इतने सारे सामान को, ट्रक ड्राइवर के सहारे उतारने में हांप गया था और अब वापस जाते ट्रक को हांपते हुए देख रहा था। खद्दर का पायजामा, खद्दर का ही कुर्ता। सिर पर गांधी कैप, जिसमें से महीनों से सिर के बढ़े बाल इधर-उधर झांकते हुए हवा में उड़ रहे थे। मुंह पर कई दिनों उस्तरा नहीं चलने से बाल बढ़ आए थे। आंखों पर लगे चश्मों का शीशा भी पुराना होने के कारण सफेद से पीला होगया था।

सड़क पर चलते दो-चार लोग, ट्रक से उतरे बेढंगे सामान को देख कर खड़े हो गए थे। दो-चार आसपास से भी आकर इकट्ठा हो गए थे, इन्हीं में था अधेड़ उम्र का राधे पनवाड़ी। अन्दर मुहल्ले में जो गली जाती थी, उसी की नुक्कड़ पर राधे पिछले पच्चीस साल से पान की दुकान करता आ रहा था। गौर से दिमाग पर ज़ोर डाल कर खद्दरधारी व्यक्ति को देखा, फिर खुशी से चिल्लाया—मास्टर जी, मास्टर जी महाराज !

खद्दरधारी व्यक्ति ने शीशों पर जमी धूल को साफ करने की खातिर आंखों पर से चश्मा उतार लिया था। अपना नाम सुन कर थोड़ा चौंके। जल्दी से कुर्ते के छोर से चश्मे के शीशों को साफ करके चश्मा आंखों पर चढ़ाया, गौर से सामने खड़े व्यक्ति को देखा और फिर प्रसन्नता से बोले—राधे भाई··· राधे, आओ गले मिल लो।—राधे पनवाड़ी जब तक सम्भले मास्टर जी ने आगे बढ़ कर राधे को गले से लगा लिया।

—आप कब आए मास्टर जी, पता ही नहीं चला।

—पता कैसे चलता, तीन दिन पहले ही तो आया हूं। सारा समय यह सामान बटोरने में लग गया, फिर बताओ, तुमसे किस समय मिलता।—मास्टर जी हँसे।

—खैर, अब आप अपना शहर छोड़ कर कहीं न जाएं, यहीं रहें।

—अरे..अरे भाई अब मुझे कहां जाना ? बहुत भटक लिया। अब तो यहां जम कर काम करना है। देखते नहीं यह सारा सामान ? कल से स्कूल खोल रहा हूं आदर्श बाल विद्यालय।—गर्व से सीना तान कर मास्टर जी ने गहरी सांस ली।

सामने फैले सामान को राधे ने आश्चर्य से देखा, फिर बोला—अब ठीक है। अब आप जम कर बैठेंगे। स्कूल चलेगा तो फिर एक जगह रहना ही होगा। चलो जी, सामान चढ़ाओ जल्दी-जल्दी। आप, मास्टर जी हाथ न लगाएं। मैं सब सामान अभी चुटकी बजाते ऊपर पहुंचाता हूं।

एक-एक करके राधे ने सारा सामान ऊपर कोने वाले फ्लैट में चढ़ा दिया। दो-चार चीज़ें मास्टर जी भी ऊपर लाए। लेकिन इतनी ही मेहनत में वे फिर हांप गए। किसी तरह अपने को सम्भाल कर बोले—और कहो, राधे भाई ! मज़े में तो हो ?

—हमारी क्या है मास्टर जी, जैसे पहले थे वैसे ही अब। आप अपनी कहें कहां रहे ? इस शहर को तो भूल ही गए।

भूलना क्या राधे भाई, मैं अजब से चक्कर में रहा। पहले तो पार्टीबाज़ी में जान फंसी रही। एक पार्टी छोड़ी, दूसरी पकड़ी, फिर सभी पार्टियां छोड़ कर मज़दूरों के साथ हो गया। आन्दोलन में तीन साल जेल काटी। बाबा

विनोवा के साथ पदयात्रा पर निकल गया। लेकिन स्वास्थ्य कहीं भी ठीक नहीं रहा, इसी से चला आया हूं। वच्चों को पढ़ाऊंगा भी, उनके साथ खेलूंगा भी, तो तन्दुरुस्ती अपने आप ही वन जाएगी।

—सो तो है ही।—राधे ने समर्थन किया—अब आप मुंह-हाथ धोएं, मैं आपके खाने-पीने का प्रवन्ध करता हूं।

—नहीं, नहीं। खाने-पीने की छोड़ो, पहले तो तुम ऐसा प्रवन्ध करो कि आज ही रात को यहीं स्कूल के नीचे एक छोटी-सी सभा हो जाए, ताकि शहर में खवर फैल जाए कि मैंने वेगमपुल पर स्कूल खोल दिया है........ समझे? वैसे तो यह जगह मौके की है। वेगमपुल से कौन नहीं गुज़रता। दो-चार दिन में तो सारा शहर मेरे स्कूल का वोर्ड पढ़ ही लेगा, फिर भी मैं चाहता हूं, स्कूल खुलने की खबर सभा के ज़रिए आगे वढ़े।

सर खुजा कर राधे ने कुछ सोचा, फिर वोला—ठीक है। आप चिन्ता न करें। अभी एक घण्टे में मेरा साला डुगडुगी पीट कर आस पास सभा की खवर पहुंचाए देता है। एक नम्वर का डुगडुगीवाज़ है। सात वजे शाम से सभा शुरू कर देंगे, सभा के वाद फिर कीर्तन-भजन, वस, सब जान जाएंगे कि स्कूल खुल गया।

—ठीक है.....विल्कुल ठीक। अभी जाओ और तुरन्त सारा इन्तज़ाम करो। मैं भी तव तक कुछ आराम कर लूं, एकदम थक गया हूं।—मास्टर जी से अव और अधिक खड़ा नहीं हुआ जा रहा था, घवरा कर वहीं पड़ी एक वेंच पर वैठ गए।

राधे पनवाड़ी को वापस जाते देख कर आसपास के छज्जों पर खड़े लोग काफी निराश हुए। उन्हें उम्मीद थी कि शायद कोई और तमाशा चलेगा, अब आपस में ही बात करके अपनी जिज्ञासा शान्त करने लगे।

—यह कौन पागल आदमी है जो यहां वीच वाज़ार में स्कूल खोल रहा है? यह रहने के फ्लैट हैं या स्कूल खोलने के। साठ रुपया किराया देना क्या मज़ाक है।—एक मोटे-से व्यक्ति ने अपने पड़ोसी की ओर देख कर कहा।

—अरे आप इतनी सी वात नहीं समझते। साहव, यह जमाना चार-सौ-वीसी का है। जव सीधी तरह काम न चले, तो वहुरूपिए वन जाओ। देखा नहीं आपने, कैसा नेता टाइप का भेष वना रखा है। आज स्कूल खोल रहा है, कल को कोई और धंधा चालू करेगा। कहीं एक-दो सभा करके हड़ताल करवा देगा, वस, जव जनता में थोड़ा नाम हो जाएगा, तो यहीं से चुनाव लड़ कर मज़े से कुर्सी पा लेगा। हम सव उल्लू की तरह मुंह देखते रह जाएंगे।

—अजी नहीं महाशय, यह आपका गलत ख़याल है।—सातवें फ्लैट के छज्जे पर ऊंची मूंछों वाले व्यक्ति ने हाथ हिला कर कहा—यहां पढ़े-लिखे लोग बसते हैं। यहां अगर नेतागीरी की बदमाशी झाड़ी तो दफा चार-सौ-बीस में बन्द करा दूंगा। क्या समझते हैं आप, एलएल० बी० मैंने यों ही नहीं पास की है।

राधे पनवाड़ी का साला बेगमपुल के चारों ओर डुगडुगी पीट कर सभा की घोषणा कर आया था, इसलिए सात बजते-बजते पचास-साठ आदमी न्यू मार्केट के सामने आकर इकट्ठा हो गए। एक बड़ी-सी दरी का भी इन्तज़ाम हो गया था। मेज़-कुर्सी, बेंचें मास्टर जी के पास थीं ही। बस, सभा चालू हो गई। इतने सारे आदमियों को सामने देख कर मास्टर जी की छाती खुशी से गज भर चौड़ी हो गई। मेज के सहारे खड़े होकर बोलने की बजाए, मेज़ पर चढ़ कर बोलना शुरू किया···।

—भाइयो! आप सब मुझे बचपन से जानते हैं, उस समय से जानते हैं जब मैं सन् 42 के आन्दोलन में आठवें दर्जे का विद्यार्थी था और इसी बेगमपुल के थाने में दरोगा कासिम अली से मैंने पीठ पर पांच बेंत खाए थे। बेंत खाकर भी मैं भागा नहीं, बल्कि बापू की छत्रछाया में मोर्चाबन्दी करके अंग्रेज़ों को ही भगा दिया। नतीजा यह है कि आज आप मुझे अपने सामने खड़ा देख रहे हैं। अब बताइए मैं आपको अपना क्या परिचय दूं? मैंने अब तक जो काम किया है वह इस बात का सबूत है कि मैं क्या करना चाहता हूं। मैं देश के कोने-कोने में घूमा हूं, मैंने क्रान्ति का सन्देश सुनाया है, लेकिन उसी बीच मैंने जाना कि जब तक जड़ कमज़ोर रहेगी, हम कुछ नहीं कर सकते। हमें जड़ मज़बूत करनी होगी। जो कल भारत के नागरिक बनेंगे उन्हें आज से ही सम्भालना होगा। इसीलिए मैंने अब यह आदर्श बाल विद्यालय खोला है। इसमें आप अपने बच्चों को भेजिए, ताकि वे समय पर देश के लिए अपने प्राण दे सकें। प्रेम से बोलिए एक बार····भारत माता की जय!

भीड़ ने ऊंची आवाज़ से नारा लगाया—भारत माता की जय।

राधे पनवाड़ी ने हारमोनियम को हवा दी, उसके साथी ने ढोलक पर थाप, और एक बार फिर ज़ोरों से भारत माता की जय बोल कर कीर्तन शुरू हो गया—सीता राम, राधे-श्याम; सीता-राम, राधे-श्याम।

इस सारे शोर ने न्यू मार्केट में रहने वालों को चौंका दिया था। कुछ लोग फिर बाहर छज्जों पर निकल कर तमाशा देख रहे थे, लेकिन वकील साहब का पारा सातवें आसमान पर पहुंच गया था। एक बार उन्होंने गुस्से से हाथ मले, फिर फोन का चोंगा उठा कर डायल घुमाया·····बेगमपुल थाना···नम्बर···।

कुछ देर बाद ही बड़े हवलदार साहब दो सिपाहियों के साथ सभास्थल पर हाज़िर थे। खूब चखचख हुई। अन्त में मास्टर जी ने घोषणा की—भाइयो ये हवलदार साहब बचपन में सही शिक्षा नहीं पा सके, इसीलिए आज ये हमारे शुभकार्य में रोड़ा अटका रहे हैं। आप सब इन्हें क्षमा करें। सभा समाप्त होती है, आप सब घर जाएं।

* * *

आदर्श बाल विद्यालय में अधिक से अधिक संख्या में बच्चे आएं इसके लिए मास्टर जी ने अथक परिश्रम किया। पहले स्कूल के नाम से पर्चे छपवा कर बांटे। फिर खुद घर-घर जाकर बच्चों को स्कूल में पढ़ने भेजने की प्रार्थना की। फीस एकदम माफ कर दी। यहां तक कि अपनी जेब से बच्चों को खिलौने और मिठाइयां ला-लाकर देने लगे। जब कोई व्यक्ति मास्टर जी की इस शिक्षा पद्धति की आलोचना करता तो हँस कर बोलते—घबराओ मत, एक बार बच्चों का बहुमत मेरे पक्ष में हो जाए फिर बच्चों के माता-पिता तो क्या, सरकार भी मेरी बात मानेगी। देखते नहीं, वकील साहब मुझसे नाराज़ हैं, लेकिन उनके दोनों लड़के पप्पू और बबलू मेरे साथ हैं—मास्टर जी खुल कर हँसते।

पहली बात ठीक निकली। बेगमपुल के ही नहीं, दूर-दूर तक के बच्चे एक महीने में ही मास्टर जी को पहचान गए। दूर से ही पुकार कर कहते—मास्टर जी परनाम!

मास्टर जी प्रसन्नता से झूम उठते। साथ चलने वाले से कहते—देखते हैं आप, किस तरह से प्यार करते हैं मुझसे। अगर मेरे स्कूल की तरह ही सारे देश में स्कूल कायम हो जाएं, तो एकदम देश को कायापलट हो जाए।

मगर राधे देखता, पिछले तीन महीने में धीरे-धीरे मास्टर जी की ही कायापलट हो रही थी। बगैर दवा और आराम कमज़ोर शरीर और भी कमज़ोर हो गया। रह-रह कर खांसी उठ आती। जो कुछ खाते, हज़म न होता। दो-चार बार राधे ने फल-दूध का प्रबन्ध भी किया, लेकिन आखिर कहां तक करे? छोटी-सी पान की दुकान, उस पर पूरी गृहस्थी का भार। कभी-कभी राधे मास्टर जी को समझाता भी था—मास्टर जी! न हो कोई और धन्धा करो।

—वाह जी, यह कायरता कैसी!—मास्टर जी भड़क उठते। मैंने राजघाट पर, बापू की समाधि के सामने शपथ ली है। अगर मैं अपनी राह से हट जाऊंगा तो बापू की आत्मा स्वर्ग में दुख पाएगी।

मास्टर जी की ऐसी बातें सुन कर राधे अपना सिर पीट लेता।

—अजी मास्टर जी, कुछ अपनी भी सुध लो। बचपन से तुमने यह धूनी रमाई है। घर-गांव सब छोड़ दिया। तुम्हारी याद में तुम्हारे मां-बाप ने प्राण त्याग दिए। अब घर-गृहस्थी बसा कर सीधी तरह बैठने की जगह यह सब गोरखधन्धा कर रखा है। मैं तो तुम्हारे गांव का हूं, सो मन में ममता हर समय कचोटती रहती है, पर करूं क्या······समझ नहीं पाता।

मास्टर जी प्यार से राधे का हाथ थाम कर कहते—धीरज धरो, बस, अब सब ठीक होने वाला है। मैंने सरकार की मदद के लिए चिट्ठी लिखी है।

* * *

चार महीने बीत गए। मकान का किराया, बिजली का बिल, पानी का बिल, बनिए का बिल, दूध का बिल····धीरे-धीरे कर्ज़ बढ़ता गया। लोग अपना पैसा मांगने सुबह-सुबह आने लगे। मकान मालिक ने तो बहुत ही परेशान कर रखा था। पड़ोसी देखते तो मुंह फेर कर हँसते··एकदम पागल, मास्टर साला तो एकदम पागल है। भला ऐसे कहीं स्कूल चलता है। देश में क्रान्ति करने चला है। एक दिन जब देह से प्राण निकल जाएंगे तो एकदम क्रान्ति हो जाएगी···ह····ह····हह····।

पड़ोसियों को देख कर कभी-कभी मास्टर जी भी उत्तेजित हो जाते—आप सब हँसते हैं। हँसिए, खूब हँसिए। हँसने से क्या होता है। मुझे अपना लक्ष्य मालूम है। आप सबके हँसने से ,मैं अपनी राह से हट नहीं जाऊंगा। मैं बराबर अपनी राह पर आगे बढ़ता रहूंगा।

उस शाम मास्टर जी ने एक नई योजना बनाई, घर-घर जाकर स्कूल के लिए चन्दा बटोरा जाए। इसमें कोई शरम की बात नहीं है। यह कोई अपराध नहीं है , कोई पाप नहीं है। अच्छे काम में जनता का सहयोग तो लेना ही होगा। मगर उसी रात मास्टर जी को बुखार आ गया, एकदम तेज़ बुखार, एक सौ चार डिग्री। राधे पनवाड़ी सारी रात मास्टर जी के पास बैठा रहा। दूसरे दिन बुखार कुछ उतरा। स्कूल की छुट्टी हो गई, बच्चे आए थे, लेकिन मास्टर जी को बीमार देख कर लौट गए।

बुखार दूसरे दिन उतर गया, लेकिन कमज़ोरी तीसरे-चौथे दिन भी रही। फिर भी किसी प्रकार मास्टर जी हिम्मत करके उठे, कमरों में झाड़ू दी। मेज-कुर्सी ठीक की, अपने गंदे कपड़े उतार कर धुले कपड़े पहने·····मगर स्कूल उस दिन भी नहीं लगा। उस दिन ही क्यों, उसके बाद किसी भी दिन नहीं लगा। सुबह-सुबह मकान मालिक मकान खाली कराने का नोटिस लेकर आ गया था। दूसरे तकाज़े वाले भी आ गए थे। मास्टर जी सकपकाए से दिख रहे थे। उनकी आंखों के सामने ही कोई तकाज़े वाला स्कूल की कुर्सी

ले गया, कोई हारमोनियम, कोई पंखा; देखते-देखते सारा सामान उठ गया। मकान मालिक ने किराया न देने के एवज़ में स्कूल की सारी बेंचें ही हथिया ली थीं। मास्टर जी पहले तो आंखें फाड़े यह सारा नाटक देखते रहे, फिर ज़ोरों से चिल्लाए—ले जाओ, सब ले जाओ, दुष्टो ! सारा सामान लूट लो। मेरा इससे कुछ नहीं बिगड़ता। मैं पथभ्रष्ट नहीं होता। तुम सब लाख ज़ोर लगाओ, मैं अपनी राह से नहीं हटूंगा।

मास्टर जी चिल्लाते-चिल्लाते सहसा रुक गए। तेज़ी से आगे बढ़ कर छज्जे के सहारे टंगे आदर्श बाल विद्यालय का बोर्ड उतार लाए, फिर किसी तरह बोर्ड को कंधे पर टिकाए सम्भल कर नीचे उतर आए। सामने स्कूल के बच्चों की भीड़ आश्चर्य से आंखें फाड़ मास्टर जी को देख रही थी। मास्टर जी फिर चिल्लाए—चलो बच्चो, आज से हम खुले आकाश तले स्कूल चलाएंगे। बापू ने ऊंची इमारतों में बैठ कर पढ़ने-लिखने का सख्त विरोध किया था। आज से ऊंची इमारतों का बहिष्कार। प्रेम से बोलो, भारत माता की जय।

बच्चों ने जोर से भारत माता की जय का नारा लगाया। बच्चों में दो-चार ज़रा बड़े और मज़बूत थे। उन्होंने मास्टर जी का सामान दरी में लिपटा, बिस्तर और सन्दूकची सिर पर उठा ली। छोटे बच्चों ने भी मास्टर जी की अल्मीनियम की पतीली, लोटा और टूटी अंगीठी ले ली, फिर काफिला चल पड़ा। आगे-आगे मास्टर जी अपने कंधे पर आदर्श बाल विद्यालय का बोर्ड लादे चल रहे थे; उनके पीछे छोटे बच्चे गले में बस्ता लटकाए, और हाथ में तख्ती-दावात लिए 'भारत-माता की जय' बोलते आगे बढ़ रहे थे; फिर सबसे पीछे मास्टर जी का सामान लादे बड़े लड़के चल रहे थे।

काफिले के चलते ही तमाशबीन भी छंटने लगे। बंगाली होटल के मालिक ने अपने पड़ोसी से कहा—देखा, मैं कहता था न ये सब झमेला दो-चार महीने का ही है। भला ऐसे कहीं स्कूल चलता है। मास्टर साला तो एकदम पागल है, इसके दिमाग में तो गोबर भरा है।

मास्टर जी को अब किसी की परवाह नहीं थी। वे बड़ी शान से स्कूल का बोर्ड कंधे पर रखे आगे बढ़ रहे थे। बेगमपुल का बड़ा चौराहा पार करके, नाले पर बने पुल को पार करते हुए वे कालेज जाने वाली सड़क पर आ गए। छोटा होने के बाद भी आदर्श बाल विद्यालय का बोर्ड काफी भारी था। लगभग तीन फर्लांग चलना पड़ा था, लेकिन इतने में ही मास्टर जी के कंधे बोर्ड के वज़न से टूटने लगे थे। उन्हें लगा, अगर इसी हालत में दो कदम भी और चले तो गश खाकर गिर पड़ेंगे। किसी प्रकार, बोर्ड को कंधे से उतार कर वहीं सड़क के किनारे नीम के पेड़ के नीचे रखा, फिर वहीं बैठ कर सुस्ताने लगे।

—मास्टर जी, अब कहां चलें ?—लड़कों ने पूछा ।

—अरे, अब कहां चलना है, यहीं रहेंगे । आज से यहीं पेड़ के नीचे स्कूल चलेगा, समझे । यह जो आस पास ज़मीन पड़ी है, यह सब स्कूल के काम आएगी । तुम लोगों को एक फुटवाल ला दूंगा, खूब खेलना । अभी गोल घेरा बना कर बैठो ।

मास्टर जी वहीं पेड़ की छांव में बिस्तर बिछा कर लेट गए । कमज़ोर शरीर रह-रह कर थकावट से टूट रहा था । लेटते ही आंखें अपने आप मुंद गईं ।

* * *

राधे पनवाड़ी सुबह से ही काम से शहर के बाहर चला गया था । शाम को लौटा तो न्यू मार्केट से आदर्श बाल विद्यालय का बोर्ड गायब देखा । भागा-भागा मास्टर जी के पास पहुंचा—यह सब क्या हालत हो गई, मास्टर जी ।

लेकिन मास्टर जी ने कोई जवाब नहीं दिया । शाम हो गई थी, बच्चे अपने-अपने घरों को चले गए थे । मास्टर जी नीम के पेड़ के नीचे सुबह से लेटे हुए थे । सुबह की भाग-दौड़ ने उनके कमज़ोर शरीर को तोड़ दिया था । जवाब न पाकर राधे ने मास्टर जी के सिर पर हाथ रखा । माथा तवे की तरह तप रहा था ।

—मास्टर जी, मास्टर जी, आंख खोलो, कैसी तबीयत है ।—राधे ने हिला कर मास्टर जी को जगाया ।

किसी प्रकार कराहते हुए मास्टर जी ने आंखें खोलीं—कौन, भाई राधे ।

—हां मास्टर जी । चलो, घर चलो । यहां सड़क के किनारे पड़े रहने से क्या फायदा ।

—नहीं····नहीं ।—मास्टर जी ने हाथ हिला कर मना किया । तेज़ बुखार के कारण उनके मुंह से बोल नहीं निकल पा रहा था । राधे मास्टर जी की ज़िद जानता था, इसलिए कुछ नहीं बोला, चुपचाप उठ कर चला गया । लौटा तो उसके दो-तीन साथी भी उसके साथ आ गए थे । आधा सेर गर्म दूध भी लाया था । पीछे-पीछे एक खाली रिक्शा भी आ रहा था ।

—लो, मास्टर जी, दूध पी लो ।—राधे ने धीरे से उठा कर मास्टर जी को बैठा कर दूध का गिलास उनके मुंह से लगा दिया ।

गर्म दूध से शरीर में कुछ जान आई । आंख खोल कर मास्टर जी ने सबको देखा, फिर अटकते हुए बोले—अब से मैं यहीं स्कूल चलाऊंगा, यही ठीक जगह है ।

—आप यहीं स्कूल चलाएं, कल हम सब ठीक कर देंगे, पर आज घर चलें । इस खुले में तो तबीयत और भी खराब हो जाएगी ।

—हां........नहीं, कल जब बच्चे आएँगे तो मेरे बिना उन्हें तकलीफ होगी ।

—आप घबराएं नहीं। कल सुबह रिक्शे पर फिर वापस आ जाएं। हम आपके स्कूल का बोर्ड यहीं पेड़ पर लगाए देते हैं । यह जगह अब आपकी है।—राधे ने पूरी बात समझाने की कोशिश की। फिर आगे बढ़ कर अपने साथी की मदद से बोर्ड उठाया। बोर्ड में अब भी बड़ी कील लटक रही थी, राधे ने बोर्ड को नीम के चौड़े तने में जड़ दिया।

मास्टर जी ने एक बार तने पर लगे आदर्श बाल विद्यालय के बोर्ड को देखा, फिर राधे के हाथ का सहारा लेकर उठ खड़े हुए। रिक्शे पर मास्टर जी का बक्स और बिस्तर पहले ही लादा जा चुका था, अब मास्टर जी के बैठते ही रिक्शा चल पड़ा। पीछे-पीछे राधे अपने साथियों के साथ चल रहा था।

× × ×

दूसरे दिन ठीक आठ बजे मास्टर जी आकर नीम के पेड़ के नीचे बैठ गए। रात कुछ दवा भी खाई थी, इससे अब तबीयत काफी ठीक थी। मास्टर जी बच्चों के बैठने के लिए बोरे के टुकड़े अपने साथ लाए थे। इन्हीं टुकड़ों में से एक टुकड़ा बिछा कर खुद बैठ गए।

एक-एक करके बच्चे आने शुरू हो गए। वकील साहब के भी दोनों बच्चे आए। दस बजते-बजते, काफी बच्चे इकट्ठे हो गए। फ्लैट में सिर्फ दो कमरे थे। कमरों के आगे थोड़ा-सा सहन। बच्चों के खेलने के लिए कोई जगह नहीं। लेकिन यहां तो पूरी छूट थी। जिधर चाहो, दौड़ो। बच्चे चीखते-चिल्लाते इधर-उधर कूद रहे थे।

आधा घण्टा ही बीत पाया था कि एक नया दृश्य सामने आ गया। रिक्शे पर तेज़ी से वकील साहब आते दिखाई दिए। मास्टर जी हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए।

—आखिर यह क्या मजाक है। न्यू मार्केट में आप से स्कूल नहीं चला, अब यहां ढोंग रचाया। यह सड़क की धूल खाने के वास्ते मेरे बच्चे हैं। अगर सड़क पर दौड़ता मेरा बच्चा किसी मोटर के नीचे आ जाए तो कौन ज़िम्मेदार होगा।

मास्टर जी जब तक कोई जवाब दें, वकील साहब ने आगे बढ़ कर बच्चों को गोद में उठाया और रिक्शे पर वापस चल दिए। दोनों बच्चे बाप के हाथों से छूटने की कोशिश करते हुए मास्टर जी को पुकार रहे थे। मास्टर जी चुपचाप हाथ मलते जाते हुए रिक्शे को देख रहे थे।

वकील साहब को एक घण्टा भी नहीं बीता था कि एक ट्रक आकर नीम के

पेड़ के पास रुका। पहले दो कान्स्टेबल ट्रक से उतरे, फिर रजिस्टर लिए म्युनिसिपैलिटी के दो कर्मचारी। मास्टर जी के पास आकर बोले—यह किसके हुक्म से यहां स्कूल लगाए बैठे हो?

—क्यों···यहां फुटपाथ पर बैठने का भी क्या किराया लगता है?—मास्टर जी ने उत्तर दिया।

—फुटपाथ चलने के लिए होता है, स्कूल लगाने के लिए नहीं। चोरी, फिर ऊपर से सीनाज़ोरी। चलो, आफिस, वहीं सब पता लगेगा।

दोनों कर्मचारियों ने आगे बढ़ कर पेड़ के तने में जड़ा आदर्श बाल विद्यालय का बोर्ड उखाड़ लिया। पुलिसवालों ने बच्चों को—छुट्टी हो गई कह कर भगा दिया। ट्रक के ड्राइवर ने बैठने के टाट के टुकड़े बटोर कर ट्रक में डाले और ट्रक मास्टर जी को लेकर चल दिया।

* * *

फिर कई दिन तक मास्टर जी नहीं दिखाई दिए? राधे अपने साथियों के साथ मास्टर जी को दूर-दूर तक खोज कर आया। थाना-कचहरी भी देख ली, पर कहीं मास्टर जी का पता नहीं लगा। हार कर वकील साहब से पूछा, तो वकील साहब ने आंखें तरेर कर पहले गौर से राधे की ओर देखा, फिर गुर्रा कर बोले—अपनी खैर मनाओ जो उस पागल के चंगुल से बच गए। दूसरों के बच्चों को बहका कर नेता बनता था। शहर के बाहर जंगलों में छुड़वा दिया है, समझे।

लेकिन पन्द्रह दिन बाद ही मास्टर जी फिर बेगमपुल पर दिखाई दिए। कपड़े पुराने ही पहने थे, जगह-जगह से फटे और बेहद गंदे। दाढ़ी मुंह पर काफी बढ़ गई थी। आंखों पर चढ़े चश्मे का शीशा चटक कर किसी प्रकार फ्रेम में अटका हुआ था। मास्टर जी अपने पैर को इस समय घसीट-घसीट कर चल रहे थे, क्योंकि पैर में पहनी चप्पल की पट्टी टूट गई थी। कंधे पर फलों की एक टोकरी लादे थे, जिसमें छोटे-छोटे पिलपिले आम रखे हुए थे। मास्टर जी हाथ उठा कर कह रहे थे—भाइयो, अब मैं प्राकृतिक ढंग से बच्चों को शिक्षा दे रहा हूं। इसे आप सब बिलकुल आधुनिक शिक्षा भी कह सकते हैं। मैं बच्चों को खुली हवा में लेकर चल रहा हूं, ताकि वे आज़ादी से जीना सीखें। मैं उन्हें ताज़ा फल चखा रहा हूं, ताकि वे प्रकृति की बहुमूल्य देन को पहचानें और उसका मीठा स्वाद चखें। मास्टर जी ने टोकरी में से एक आम निकाला और बच्चों को दिखा कर पूछा—यह क्या चीज है बच्चो?

—आम।—बच्चों ने सम्मिलित स्वर में चिल्ला कर कहा।

—आम को अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं?—मास्टर जी ने पूछा।

—मैंगो!—बच्चों ने फिर चिल्ला कर उत्तर दिया।

—आम खाने में कैसा होता है ?

—मीठा ।

—मीठे को अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं ?

—स्वीट ।

—बहुत खूब, बहुत अच्छे। अब एक बार ज़ोर से ताली बजा कर 'भारत माता की जय' का नारा लगाओ, फिर सबको आम मिलेंगे ।

बच्चों ने ज़ोरों से ताली बजा कर नारा लगाया। मास्टर जी ने टोकरी से आम निकाल कर बच्चों को बांटे। फिर आगे बढ़ चले ।

सड़क पर गुज़रते इस अद्भुत जुलूस को देख कर सभी चौंक गए थे। राहगीर चलते-चलते ठहर गए, दुकानदार अपनी दुकानों से उठ कर बाहर आ गए। न्यू मार्केट के फ्लैट में भी रहने वाले बाहर छज्जे पर आकर खड़े हो गए थे, इन्हीं में वकील साहब भी थे। मास्टर जी ने वकील साहब को देखा तो चलते-चलते रुक गए। ऊंची आवाज़ में पुकार कर कहा—वकील साहब, अब मैं प्राकृतिक ढंग से बच्चों को शिक्षा दे रहा हूं। पप्पू और बबलू को भेज दीजिए, मैं उन्हें प्राकृतिक ढंग से शिक्षा दूंगा। यह देखिए······पढ़ाई का बिल्कुल नया ढंग······प्यारे बच्चो, यह क्या है ?—मास्टर जी ने घूम कर बच्चों को आम दिखा कर पूछा ।

—आम । —बच्चे फिर एक स्वर में ज़ोरों से चिल्लाए ।

—आम को अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं ?

—मैंगो ।

—आम खाने में कैसा होता है ?

—मीठा ।

—मीठे को अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं ?

—स्वीट !

—ठीक····बिल्कुल ठीक ।—मास्टर जी ने घूम कर वकील साहब की ओर देखा ।

—मेरे नए पढ़ाने के ढंग को देखा आपने वकील साहब ? अब मैं बिल्कुल प्राकृतिक ढंग से शिक्षा दे रहा हूं। आप पप्पू और बबलू को भेज दीजिए।

वकील साहब आंखें फाड़े मास्टर जी की ओर देख रहे थे। मास्टर जी अब वकील साहब को बिल्कुल प्रेत की तरह दिखाई दे रहे थे। छज्जे पर और अधिक उनसे नहीं रुका गया, तेज़ी से घर के अन्दर चले गए।

वकील साहब से कोई उत्तर न पाकर मास्टर जी हँसे, फिर अपनी ही धुन में आगे बढ़ चले ।

बेगमपुल के चौराहे तक पहुंचते-पहुंचते मास्टर जी के पीछे पूरा जुलूस

चलने लगा था। एक अजब-सा हो-हल्ला मास्टर जी के चारों ओर मच रहा था—रह-रह कर बच्चे ज़ोरों से भारत माता की जय का नारा बुलन्द करते। तमाशबीन भी अब बच्चों के स्वर में स्वर मिला कर बोल रहे थे। कुछ देर के लिए चौराहे का ट्रैफिक जैम हो गया। चौराहे पर नियुक्त पुलिसवाला मास्टर जी को गालियां देता हुआ भीड़ को आगे बढ़ने के लिए कह रहा था। मास्टर जी पर इस सबका कोई असर नहीं था। वे अपने में खोए प्राकृतिक ढंग से बच्चों को शिक्षा देते रहे। जब पुलिसवाले ने उन्हें आगे की ओर धकेला······तब भी उन्होंने कुछ नहीं कहा·······
बस, चौराहे से आगे चल दिए····किधर, यह उन्हें नहीं मालूम। उनके पीछे बच्चों के अलावा और कौन-कौन आ रहा है, यह भी वे नहीं जानते थे। सिर्फ हाथ उठा कर बराबर बोलते जा रहे थे। इसीलिए जब पुलिस की गाड़ी तेज़ी से आकर उनके सामने रुकी, तब भी वे कुछ नहीं समझे। वे उस समय भी कुछ नहीं समझे जब पुलिस ने उनको जबरदस्ती उठा कर गाड़ी में ठूंसा और तेज़ी से आगे बढ़ चली······दूर····बहुत दूर, शायद किसी पागल-खाने की चहार दीवारी की ओर।

तीन दिन

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

पहला दिन

आज सुबह से पहले मुझे कहां मालूम था कि स्वर्ग मुझसे केवल कुछ ही ही घण्टों की राह पर है। पहले भी मैं कितनी ही बार कश्मीर आया हूं, पर मुझे कभी खयाल भी न था कि श्रीनगर से केवल 25 मील की दूरी पर स्वर्ग का एक कोना विद्यमान है। मेरे मेज़बान का यह विशाल उद्यान और कुछ दूरी पर मानसबल की यह अत्यन्त सुन्दर झील। बसन्त अपने यौवन पर है और यह विशाल उद्यान हज़ारों-लाखों सुकोमल, सुरभित और नयनाभिराम फूलों से जैसे लदा-सा पड़ा है। बाग के बाहर सब ओर ऊंचे-नीचे टीले हैं, जिन पर मूंग के रंग की नई घास फूट रही है। झील के एक तरफ़ ऊंची ऊंची पहाड़ियां हैं, जिनकी चोटियां अभी तक श्वेत बर्फ़ से ढकी पड़ी हैं। झील के स्वच्छ जल में एक ओर इन महाश्वेता पहाड़ियों का प्रतिबिम्ब झलकता रहता है; दूसरी ओर हज़ारों लाखों फूलों से लदे एक ऐसे जंगल का प्रतिबिम्ब जो क्रमशः ऊंचा होता चला गया है।

कितना अन्तर है मेरे शहर के जीवन में और यहां के जीवन में! वहां हर वक्त ज़बरदस्ती मुस्कराना, दिन भर में बीसों नए आदमियों से मिलना और दिन-रात सरकस के बाजीगर के समान सतर्क रहना, जबकि वह तार पर साइकल चला रहा होता है और सरकस के तमाम तमाशबीनों की निगाह उसी की ओर लगी होती हैं। और यहां आकर मनुष्य जैसे प्रकृति मां की गोद में आ पहुंचता है।

कल रात जब मैं यहां पहुंचा था तो फूलों की सुगंध से भरी हुई शीतल वायु ने मेरा स्वागत किया था। सुबह जब मैं उठ कर बाहर आया तो जैसे मेरी आंखों के सामने से एक पर्दा उठ गया। मैंने पाया कि चारों ओर असीम सौन्दर्य बिखरा-सा पड़ा है। मैं चुपचाप बिना किसी से कुछ भी पूछे एक ओर अकेला निकल गया था। मेरे मेज़बान बहुत समझदार आदमी हैं। मेरे आराम की पूरी व्यवस्था तो उन्होंने कर दी, पर वे मेरे सामने नहीं आए। घास से मढ़े ऊंचे-नीचे मैदानों पर मैं अकेला आगे बढ़ता चला गया। चारों

ओर सन्नाटा था। केवल सुदूर आसमान में खूब ऊंचाई पर उड़ रहीं अबाबीलों की पंक्तियां इस सन्नाटे को कभी-कभी भंग करतीं थीं। परन्तु उनका संगीतमय कलरव कितना भला प्रतीत होता था। सौन्दर्य से भरी इस नई दुनिया में मैं अकेला आगे बढ़ता चला गया। यह अपरिचित प्रदेश जैसे किसी चिर-आत्मीय के समान मुझे अपनी ओर पुकार रहा था। आज जो कुछ भी देख रहा था, वह सब मेरे लिए नया था। परन्तु मेरी आत्मा जैसे मुखरित होकर कह रही थी कि बर्फ से लदी इन पहाड़ी चोटियों को, फूलों से लदे इन जंगलों को और आस-पास का सभी कुछ अपनी विशाल छाती में प्रतिबिम्बित करती हुई इस झील को मैं खूब अच्छी तरह पहचानता हूं। एक युग से पहचानता हूं।

न जाने कब तक घूम-फिर कर जब मैं अपने मेज़बान के बग़ीचे में वापस आया, तो सूरज आसमान के बीच तक आ पहुंचा था। मैंने पाया कि मेरे मेज़बान बाग़बानी के कुछ औज़ार लिए एक अत्यन्त आकर्षक वृक्ष की परिचर्या में संलग्न हैं। एक अत्यन्त सरल मुस्कराहट के साथ मेरे मेज़बान ने मुझे अपने पास बुलाया और मेरा हाल-चाल पूछा। साथ के उस वृक्ष को जब मैंने ज़रा गौर से देखा तो मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा। इस वृक्ष का तना तो एक ही था, परन्तु ऊपर जाकर वह वृक्ष तीन भागों में विभक्त हो गया था और इन तीनों पर विभिन्न प्रकार के फूल लदे थे। मेरे मेज़बान ने अपने इस विशेष प्रेमपात्र वृक्ष से मुझे परिचित किया—यह खुमानी का पेड़ था, पर अब इस पर सेब, आड़ू और खुमानी तीनों लगते हैं।

मैंने कहा—आज क्या आप इस खुशकिस्मत पेड़ पर किसी चौथे फल की कलम लगा रहे हैं?

मेरे मेज़बान ने कहा—मेरे यहां चार फल देने वाला भी एक वृक्ष है, परन्तु आजकल तो कलम लगाने का मौसम ही नहीं है।

मैंने पूछा—तो कलम लगाने का भी मौसम होता है?

मेरे मेज़बान ने कहा—कलम लगाने का न सिर्फ मौसम होता है, बल्कि मैं तो कलम लगाते हुए वृक्ष के मूड का भी ध्यान रखता हूं।

मैंने कहा—वृक्षों का मूड।

उन्होंने कहा—वृक्ष तो खैर वृक्ष ही है और उनमें अपार सहनशक्ति है, मगर मेरा तो खयाल है कि अगर मूड का ठीक-ठीक खयाल रखा जाए तो इन्सान में भी कलम लगाई जा सकती है।

मैंने दोहराया—इन्सान में भी कलम।

मेरे मेज़बान ने कहा—जी हां, मानवीय मानस-क्षेत्र में भी यदि मूड और परिस्थितियों का खयाल रखा जाए, तो कलम लगाई जा सकती है।

यह बात आगे नहीं बढ़ी और हम लोग भोजन के कमरे की ओर बढ़ चले।

दोपहर के भोजन के बाद मैं कुछ देर सोया और चाय के बाद पुनः सैर के लिए निकल गया। जब मैं सैर से वापस आया तो रात हो आई थी। रात की नीरवता में मैंने पाया कि मेरे मेज़बान की वही कार, जिस पर कल रात मैं इसी समय यहां आया था, आज पुनः पोर्च में खड़ी है और उस पर से एक और साहब उतर रहे हैं।

मेरे मेज़बान कितने मज़ेदार आदमी है! उन्हें न जाने कहां से मालूम हो जाता है कि उनके किस मित्र को कब उनकी आवश्यकता है। उन्होंने नए मेहमान से मेरा परिचय करवाया—तुमने मेरे इन मित्र का नाम तो सुना ही होगा। यह हैं डा० आनन्दकुमार। कितनी ही पुस्तकों के लेखक।

आनन्दकुमार की कुछ पुस्तकें मैंने पढ़ी थी और यह देख कर मुझे आश्चर्य हुआ कि वे अभी एक नवयुवक से प्रतीत होते हैं। उससे भी अधिक आश्चर्य मुझे यह देख कर हुआ कि डा० आनन्दकुमार बहुत ही व्यथित, गंभीर और खोए-खोए-से दिखाई दे रहे थे। जैसे वे अपना सभी कुछ गंवा कर यहां आए हों।

वातावरण में स्पष्टतः एक उदासी-सी व्याप्त हो गई। मेरे मेज़बान भी अधिक नहीं बोले। डाक्टर आनन्दकुमार तो जैसे गूंगे ही थे। वे इस समय किसी अपरिचित से परिचित होने के मूड में नहीं थे, इससे मैं चुपचाप अपने कमरे में चला गया। रात का खाना भी मैंने अपने कमरे में ही मंगा लिया। रात के सन्नाटे में मैंने सुना, मेरे मेज़बान इसराज पर बहुत ही करुण रागिनियां छेड़ रहे हैं, जैसे वह जानबूझ कर डा० आनन्दकुमार को और भी अधिक रुलाने का प्रयत्न कर रहे हों। आनन्दकुमार का हाल तो वही जानें, चांदनी से ढके स्वर्ग के इस कोने में ये करुण रागिनियां सुन कर मेरी आंखों के कोर आप से आप भीग आए।

दूसरा दिन

सुबह उठा तो मैंने पाया कि मेरा मन और शरीर दोनों बहुत स्वस्थ हो गए हैं। ऐसा जान पड़ा, जैसे एक युग से मैं इसी सौन्दर्य भरी दुनिया में रहता आया हूं। मैं अकेला चुस्ती के साथ मानसबल की ओर बढ़ चला। झील के किनारे पर मैंने पाया कि एक छोटा-सा शिकारा वहां बंधा हुआ है। कालेज के दिनों में मैं अपनी किश्तियां खेने वाली टीम में रहा था। वह प्रकृति मुझ में जाग गई और यह शिकारा लेकर मैं झील के भीतर की ओर बढ़ चला। झील में कुछ ही दूरी पर कमलिनियों का एक बड़ा खेत-सा था। सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में खिली हुई ये पीतवर्ण कमलिनियां कोमलता और सौन्दर्य का साकार रूप जान पड़ती थीं। मैंने उस खेत का एक चक्कर लगाया और बीसों

फूल अपने शिकारे में भर लिए। उसके बाद मैंने शिकारे में अपने कपड़े उतार दिए और झील के स्वच्छ जल में जी भर कर तैरा। बाहर वातावरण में अभी तक काफी सर्दी थी, परन्तु झील का पानी बहुत ठंडा नहीं था।"

घर वापस आया तो आज, कल से भी अधिक देर हो गई थी। मेरे मेज़बान, डाक्टर आनन्दकुमार के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। आनन्दकुमार भी इस समय उतने उदास प्रतीत नहीं हो रहे थे।

आज अपने मेज़बान से डाक्टर आनन्दकुमार की उदासी का कारण ज्ञात हुआ। कारण वैसा ही था, जिसकी मैंने कल्पना की थी। करीब 5 साल हुए अपने ही कालेज में विज्ञान की एक छात्रा कुमारी जेनेट से आनन्दकुमार का परिचय हुआ था। यही परिचय बढ़ते-बढ़ते पारस्परिक आकर्षण की सीमा में आ पहुंचा। महाकाल ने जैसे चुपचाप उन दोनों के हृदयों को एक-स्वर के साथ सी दिया। दोनों एक-दूसरे के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति का स्रोत बन गए।

पिछले साल कुमारी जेनेट के निमन्त्रण पर डाक्टर आनन्दकुमार उसके घर पर भी गए थे। जेनेट के माता-पिता उनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए थे। जेनेट और आनन्दकुमार को इस बात का विश्वास हो गया कि उनके माता-पिता को उनके विवाह के सम्बन्ध में कोई एतराज़ नहीं होगा। दोनों ने एक-दूसरे से कहा कि वे एक-दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। दोनों ने एक-दूसरे से न जाने कितनी किस्म की प्रतिज्ञाएं कीं। दोनों का संसार जैसे सिमट कर एक-दूसरे तक ही सीमित हो गया।

कुछ ही दिन हुए कि आनन्दकुमार ने अपने सब मित्रों को इस बात की सूचना दे दी कि इसी बसन्त में वह कुमारी जेनेट से विवाह कर रहे हैं। मेरे मेज़बान के पास भी उनका यह निमन्त्रण आया था।

एकाएक नीले आसमान में से वज्र गिरा। जेनेट के पिता का पत्र उन्हें मिला कि उनका परिवार किसी गैर ईसाई के साथ अपनी जेनेट का विवाह करने को तैयार नहीं है। इतना ही नहीं, अपने बड़े लड़के को भेज कर जेनेट को उन्होंने अपने पास बुला लिया। आनन्दकुमार की विह्वलता का पारावार न रहा। उन्होंने कितनी ही दलीलें देकर जेनेट के पिता से यह अनुरोध किया कि उन्हें इस सम्बन्ध में एतराज़ नहीं करना चाहिए। विशेषत: उस दशा में जब कि जेनेट और वह कितने ही बरसों से एक-दूसरे को प्यार करते हैं। एक पत्र उन्होंने जेनेट को भी लिखा।

परन्तु जेनेट के पिता अपने आग्रह पर अड़े रहे। उन्होंने लिखा कि आनन्द-कुमार को भी ईसाई हो जाना चाहिए। तभी यह विवाह हो सकता है। बेचारे आनन्दकुमार जो कुछ कर सकते थे, वह सब उन्होंने किया, मगर जेनेट के पिता टस से मस नहीं हुए। आनन्दकुमार को ईसाइयत से कोई वैर नहीं था, पर विवाह

के लिए ईसाई हो जाने को वे तैयार नहीं थे। यह उन्हें मनुष्यत्व का अपमान प्रतीत होता था।

पिछले सप्ताह आनन्दकुमार को कुमारी जेनेट का पत्र मिला, जिसमें उसने स्पष्टतः लिख दिया था कि वह अपने मां-बाप और परिवार को नाराज़ नहीं कर सकती। वह यह भी नहीं चाहती कि उसकी खातिर आनन्दकुमार ईसाई हो जाएं। इसलिए अच्छा यही रहेगा कि दोनों एक-दूसरे को सदा के लिए भूल जाएं।

भावुक आनन्दकुमार के लिए यह बहुत बड़ी चोट थी—मेरे मेज़बान से वे कभी कुछ भी छिपा नहीं रखते थे। उन्हें सभी कुछ ज्ञात था। इससे उन्होंने तार देकर आनन्दकुमार को अपने पास बुला लिया था।

और मैं तो इन बातों में एकदम कोरा हूं। लाख प्रयत्न करने पर भी सान्त्वना का एक शब्द तक भी जैसे मेरे गले से बाहर नहीं निकल पाता। आज सांझ हम तीनों जने एक साथ सैर पर गए। घण्टों तक घूमे-फिरे, पर जो कुछ हो बीता है, उसकी चर्चा किसी ने नहीं की। फिर भी मालूम होता था कि प्रकृति मां की इस उन्मुक्त गोद में आनन्दकुमार के दुखी हृदय को यथेष्ट सान्त्वना प्राप्त हो रही है।

सैर से वापस लौटे तो आज भी रात हो गई थी। मालूम होता है, जैसे मेरी आंखों को इस वक्त कोठी के पोर्च में अपने मेज़बान की कार को मौजूद देखने की आदत पड़ गई है। ओह, कल और परसों के समान ठीक उसी वक्त और ठीक उसी जगह मेरे मेज़बान की कार खड़ी है और आज भी उस पर से किसी का सूटकेस और होल्डाल उतारा जा रहा है।

मुझे तो क्या, मेरे मेज़बान के भी विस्मय का पारावार न रहा, जब कार में से एक नारी मूर्ति उतर कर उनकी ओर बढ़ी। क्षण भर आश्चर्य से देखते रह कर जैसे चीखती आवाज़ में उन्होंने पुकारा— इन्दिरा! तुम यहां कहां?

इन्दिरा आगे बढ़ कर चुपचाप मेरे मेज़बान के पास पहुंची। मेरे मेज़बान ने उसे अपने आलिंगन में लेकर, उद्विग्न स्वर में कहा—तुम अमरीका से कब लौटीं इन्दिरा? अजित कहां है? तुमने तो अपने आने की सूचना तक भी मुझे नहीं दी बेटी? बात क्या हुई?

मेरे मेज़बान के कंधे पर अपना सिर डाल कर इन्दिरा धीरे से बोली—चचा जी!—और उसके बाद एकाएक उसकी रुलाई फूट पड़ी।

चांदनी में मैंने देखा कि उस सुन्दरी की आंखों से टपटप आंसू टपक रहे हैं। मेरे मेज़बान ने पूछा—अजित कहां हैं? उनका स्वर एकाएक बहुत विचलित हो उठा था।

इन्दिरा ने अब भी कोई जवाब नहीं दिया। शायद हम दोनों के सामने वह कुछ कहने से झिझकती हो, यह सोच कर आनन्दकुमार और मैं चुपचाप अपने-अपने कमरों की ओर चले गए।

वातावरण एकाएक बहुत विषादमय हो उठा। रात का वह गहरा सन्नाटा, वह नीरव चांदनी और फूलों की गंध से भारी होकर बहने वाली ठण्डी हवा, ये सब जैसे विषाद की उस अनुभूति को और भी गहरा तथा और भी व्यापक रूप दे रहो हों।

तीसरा दिन

मेरे मेजवान मेरे बचपन के दोस्त हैं। अपने इस मेजबान को मैं खूब अच्छी तरह पहचानता हूं। बागबानी के महापण्डित होने के साथ-साथ वे बहुत ही ठहरी हुई और सौम्य प्रकृति के विचारक हैं। मैं सदा से उन्हें सम-सत्वस्थ रूप का उदाहरण मानता रहा हूं, जिसे कभी किसी ने विचलित नहीं देखा। कल रात उन्हें भी विचलित देख कर स्वभावतः मुझे बहुत पीड़ा हुई थी।

आज मालूम हो गया कि इन्दिरा की कहानी जितनी विषादमयी है, उतनी ही पुरुष मात्र के लिए वह लज्जाजनक भी है।

संक्षेप में किस्सा यह था कि भोली-भाली इन्दिरा पिछले तीन सालों में जिस युवक पर अगाध विश्वास करती रही, वह एक बहुत बड़ा धोखेबाज़ निकला। गत वर्ष पढ़ाई के बहाने मेरे मेजबान से काफी रुपया लेकर अजित अमरीका चला गया था। तीन महीने हुए उसने लिखा था कि उसके एक अमरीकी मित्र ब्राज़ील में पचास हज़ार रुपयों में एक बहुत बड़ा फार्म उसे दिला सकते हैं, इसलिए इन्दिरा को चाहिए कि अपने चचा से धन की व्यवस्था कर अमरीका चली आए। अजित को मालूम था कि इन्दिरा के लिए उसके चचा ने पचास हज़ार रुपया अलग से रखा हुआ है। कितने अरमानों को लेकर इन्दिरा आज से सिर्फ छः सप्ताह पूर्व अमरीका गई थी और किस भग्न हृदय से आज वह वापस लौटी है। परदेश में सब कुछ गंवा कर भोली-भाली इन्दिरा यह जान पाई कि अजित इन्दिरा को नहीं, उसके धन को चाहता था।

किसी को सूचना दिए बिना हवाई जहाज़ से आज सांझ जब इन्दिरा श्रीनगर पहुंची, तो अपने चचा के पास आने के लिए टैक्सी का प्रबन्ध कर ही रही थी कि उसके चचा के ड्राइवर की निगाह उस पर पड़ गई, जो कुछ जरूरी चीज़ें लेने श्रीनगर आया था।

इन्दिरा की आप-बीती जान कर मेरा मन खिन्नता और उदासी से भर आया। ओह, मनुष्य कितना बड़ा दानव बन सकता है। इन्दिरा के लिए मेरे मन में

गहरी समवेदना थी, परन्तु उससे भी अधिक वेदना मुझे अपने मेज़वान के उदास चेहरे को देख कर हो रही थी ।

प्रातःकाल मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे मेरे साथ सैर पर चलें । वे चुपचाप मेरे साथ चल दिए । यों न मुझे अधिक बोलने की आदत है और न मेरे मेज़वान को । मगर आज प्रातः की सैर के तीन घण्टों में न जाने मैंने कितनी बकवास की होगी । मैंने दुनिया भर की मज़ाक उड़ाई, राजधानी के अपने दोस्तों की मज़ाक उड़ाई और सब से बढ़ कर अपनी मज़ाक उड़ाई । संसार की कुछ जातियों के बारे में बेवकूफी के जो किस्से मशहूर हैं, वे सब नवीनतम किस्से मैंने अपने बारे में उन्हें सुनाए । मगर मैं जानता था कि मेरी कोई चाल इसलिए कारगर नहीं हो रही है कि मेरे मेज़वान की अन्तर्व्यथा की थाह नहीं है । मेरी बातें सुन कर वे मुस्कराते तो थे, मगर उस मुस्कराहट में उनकी वेदना जैसे और भी अधिक घनीभूत हो उठती थी । इतनी बड़ी पराजय शायद ही कभी और मेरे पल्ले पड़ी हो । इस नई उलझन के सम्मुख मैं आनन्दकुमार को एकदम ही भूल गया था ।

हम दोनों सैर से लौटे तो दोपहर के दो बजने वाले थे । मेरे व्यर्थ के प्रयास में हमारी सैर न जाने कितनी लम्बी हो गई थी ।

हम दोनों सीधे खाने के कमरे में पहुंचे । भोजनागार का दरवाज़ा खोलने से पहले जब बैरे ने उसे खटखटाया, तो हमें स्वभावतः आश्चर्य हुआ । परन्तु कमरे के भीतर जाते ही हमने जो कुछ देखा, उससे हम दोनों के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा । अपने जीवन में इतना आनन्ददायक आश्चर्य शायद ही और कभी मुझे हुआ हो ।

मेरे मेज़वान और मैंने देखा कि इन्दिरा और आनन्दकुमार खाने की मेज़ के निकट पास-पास बैठे हैं । उनके चेहरों पर दुख या विषाद की छाया तक भी नहीं है और वे इतने तन्मय होकर आपस में बातें कर रहे हैं कि न केवल उन्होंने दरवाज़े पर की गई खटखटाहट नहीं सुनी, अपितु हमारे कमरे के भीतर चले आने तक का भी बोध उन्हें नहीं हुआ । बैरे ने बताया कि वे दोनों प्रातराश के समय से यहां बैठे हैं । पहले कुछ समय तक वे दोनों बड़ी मेज़ के दो किनारों पर चुप-चाप बैठे प्रातराश लेते रहे । प्रातराश के बाद बैरा भीतर तो नहीं गया, पर बाहर ही से उसने उन दोनों को सुबक-सुबक कर रोते हुए भी सुना था, उसके बाद दोनों एक-दूसरे को जैसे सान्त्वना देते रहे, फिर चुप्पी छा गई और अब काफी देर से वे दोनों एक दूसरे के निकट बैठ कर आपस में बातें करने में मग्न हैं ।

इससे भी बढ़ कर प्रसन्नता मुझे यह देख कर हुई कि मेरे मेज़बान के दिव्य चेहरे पर से आश्चर्य का भाव क्षण भर में लुप्त हो गया और उस पर एक आनन्द-पूर्ण स्वर्गीय मुस्कराहट छा गई । देवताओं के समान निश्छल मेरे मेज़बान की

कृषि-पाण्डित्यपूर्ण वाणी से केवल इतना ही निकला—ओह, इन्सान में भी जसे आप से आप कलम लग गई।

मैं समझ गया। जैसे वे कहना चाह रहे हों--देखा तुमने ? समान दुख से दुखी दो मानव हृदयों में मां प्रकृति किस आसानी से कलम लगा देती हैं ? ताकि मां प्रकृति की सृष्टि में निरन्तरता बनी रहे, ताकि उनकी सृष्टि में से दुख और पीड़ा छंट जाए और आह्लाद की वृद्धि हो !

बांज और खत

महेन्द्र भल्ला

वांज के पेड़ की सिफ्तों का धीरे-धीरे पता चलता है। शुरू में यह बुरा भी लग सकता है। आम किसी भी मामूली पेड़ की तरह। नज़र पड़ी, बिना रुके-टिके हट गई। दिलचस्पी ज़रा भी न हिली।

दोपहर को मसूरी में ज्यादा लोग नहीं निकलते। खासकर जब धूप पड़ती है। जैसे आज। यों भी, माल रोड से हट कर घूमने वाले कम ही होते हैं। उन कम में से एक मैं हूं। इस वक्त, यहां, सिर्फ मैं।

मैं दो पहाड़ों के जोड़ पर खड़ा था। खाई मेरे पास से ही शुरू होती थी — फैलती भुजाओं की तरह खुलती जाती। खुलते-खुलते पहाड़ों की गोलाइयों में गुम हो जाती थी। गुम होने के लिए मुड़ने से पहले जहां उसकी ढलान खत्म होती थी, वहां कोई घाटी नहीं थी। एकदम ही दूसरा पहाड़ शुरू हो जाता था, जो बहुत मामूली, लेटी-सी मानो इंच-इंच चढ़ाई को इकट्ठा करता दूर बहुत दूर चोटी निकालता था। वह भी जंगल और बर्फ रहित, गंजी-सी बर्फवाली नुकीली चोटियां उसके पीछे थीं। ज़मीन पर चार-पांच ऊंची-ऊंची बेतरतीब छड़ियां गाड़ कर उन पर सफेद चादर डाल दी गई हो— ऐसी। सफेद चमकती चोटियों की वजह से मेरे और उनके बीच के पर्वत खूब काले लग रहे थे।

खाई बांज के पेड़ों से भरी थी। खामोश खाई में चुपचाप खड़े पेड़। चुप दोपहर की तरह ठहरीं, अटकी-चुप्पी। खाई में हवा की कुछ जागती लहरें शायद सैर कर रही थीं — बांज की झूलती, पत्तों से लदी, झालरों-सी डालें हौले-हौले हिल जाती थीं।

चलने की आवाज़ नहीं हुई। सिर्फ आभास हुआ कि कोई आ रहा है। आंखें मोड़ कर देखा। एक स्त्री आ रही थी। उसे देख कर मैं दूसरी ओर देखना सोचना भूल गया। चलने से उसकी चमकती रेशमी साड़ी पर धूप लुक-छिप नाच रही थी। लम्बी बढ़िया देह। दोपहर की तरह पकी हुई, मंथर मस्ती छोड़ती-सी। अरे —इतनी सुन्दर ! वह उन स्त्रियों में से थी जो बरसों में एक-दो बार दिखाई देती हैं—बे-हिसाब सुन्दर।

मेरे पास पहुंची, मुझे देखा। चलती गई। न आंखों में चंचलता, न चाल

में भटकना। शान्तिमय मौन ठहराव। इच्छा हुई जल्दी से साथ हो लूं। रोक के कहूं—बरसों में ऐसा सौन्दर्य देखा है। मैं अभिवादन करता हूं। वह क्या करेगी या कहेगी? शायद मुस्करा भर देगी। मैं उस मुस्कराहट का रस लेने लगा।

मोड़ पर पहुंच कर वह ओझल हो गई। मैंने मुस्कराना बन्द कर दिया और मन में अपना, तब तक मुस्कराते रहने का मजाक-सा उड़ाया। तो भी और न जाने जैसे भीतर पुराने संस्कार जाग पड़े— किसी अद्‌भुत व्यक्ति को देख-मिल कर सौभाग्यशाली और अहसानमंद महसूस करने के।—मगर पहाड़ों के बीच का यह हिस्सा खाली लगा। अकेला। अकेला।

सब पेड़ों के तनों पर काई जमी थी। कोई नहीं बचा था। धूप पड़ने से रंग गहरा हो गया था। हरियाली का भी और पेड़ के तनों का भी। पीले-पीले-से तने अब काले लग रहे थे। भूरे-भूरे से काले। खाई की धूप, छांव में खड़े अनगिनत काले तने। वैसी ही काई-जमी टहनियां। बीच में हवा भरी थी, बड़ी दीवार पर नई पुती सफेदी की चमक की तरह। कहीं मेरे पास से गहरा नीला परिंदा—चिल्लड़—उड़ा और पेड़ों के अन्दर ही अन्दर चीरता हुआ दूर निकल गया।

—तुम्हें जानकर हैरानी होगी, शायद न भी हो, कि पहली जनवरी से मेरी तरक्की हो गई है। यह फंदा है या उसका इनाम या दोनों, तुम्हीं लिखना। मैं तो इतना ही जानता हूं कि मैं, 'जिम्मेदार' आदमी बन रहा हूं। हँसो मत। मैंने शायद इसीलिए जिम्मेदार को उलटे कॉमाज़ पहना दिए हैं। इन्हें हटा दो, तो भी शायद मतलब गलत नहीं होगा। किसी और को खत लिखता, तो न लगता। विश्वास के साथ लिख डालता।

तरक्की के पिछले पैसे अगस्त में मिलेंगे। हम सितम्बर-अक्तूबर में रानीखेत या मनाली जाने की सलाह कर रहे हैं। मनाली में देवदार हैं, रानीखेत में चीड़, दोनों जगहें तुम्हारी देखी हैं। अपनी राय लिखना।

देवदार और चीड़। दोनों ही बढ़िया पेड़ हैं। रानीखेत के चीड़ों की गंध तो अभी तक याद है और देवदारों के नीचे घूमना तो विमस्य को हमेशा साथ लिए रहना है। दोनों अभिजात हैं। खासकर देवदार। क्षत्रिय राजकुमारों की तरह लम्बे, बलवान! अभिमानी। यही लिखूंगा। यह 'हिन्दू उपमा' उसे बहुत पसन्द आएगी।

लेकिन बांज!—एकाएक मुझे हल्की ईर्ष्या हुई। आनन्द टिक गया है। दुख-सा भी हुआ। वह भी अब गए-बीतों में हो गया।

—आनन्द को आप समझाइए। आप उनके पक्के दोस्त भी हैं। उनसे बड़े भी हैं। आपकी बात मान जाएंगे। अब शादी हो गई है। यह बचपन अब अच्छा नहीं लगता—।

बचपन ! मैं रमा के इन शब्दों से उछल पड़ा था। एकाएक ही जैसे किसी ने लोहे की गर्म सलाख हथेली में रख दी हो। बचपन !

—आप जिसे बचपन कह रही हैं, वह आनन्द के लिए और मेरे लिए, हमारे लिए एक खास—।

लेकिन अचानक आशा खो बैठा था। रमा ने बिल्कुल सही कपड़े पहन रखे थे। कहीं बाल बराबर भी गलती नहीं थी। वह कपड़ों की बात आने पर दूसरी स्त्रियों को ज़रूर जम के भाषण देती होगी। सुख और तल्लीनता से शाम को शापिंग करती होगी।

—मैं कोशिश करूंगा। उससे बात करूंगा—मैंने उसे टाल दिया।

—दोस्तों को नेक सलाह देनी चाहिए —कह कर वह चली गई थी। मैं उसे पसन्द नहीं था। न वह मुझे।

बांज के तने देवदार या चीड़ की तरह सीधे नहीं थे, जहां-जहां इधर-उधर मुड़ गए थे। यों ही। तने काले नहीं थे, यह बार-बार ध्यान में आता था। वे पीले-काले थे। पीली काई थी। बसन्ती चावलों के गुच्छों की तरह जगह-जगह चिपकी थी।

सिर पर धूप तेज़ लगने लगी, तो मैं आगे को सरका। जहां मैं रहता था, वह जगह ऊंचाई पर बनी थी। इस वक्त मेहनत करके चढ़ना बस के बाहर था। मैं सड़क के किनारे पेड़ों की छाया में बनी बैंच पर बैठ गया। सड़क के नीचे भी जंगल था, ऊपर भी। सड़क खाली थी। कोई आ-जा नहीं रहा था। हल्की हवा में धूप और पत्ते डोल रहे थे। कभी-कभी पहाड़ी कौवे बोल उठते या छोटी चिड़ियां बारीक सीटियां बजाने लगतीं। मैं एकदम जगा था, मगर बन चारों तरफ से सर-सर झांय-झांय करता मुझे घेरे था। नींद के बोल फुस-फुसाता बन।

मैं अनायास बैंच पर लेट गया। मेरे ऐन ऊपर बांज की टहनी झूल रही थी। अरे। मैं पत्तों को तो भूल गया था, बांज के दो-रंगे पत्ते। पत्तों की नोक जो बाहर रहती है, धूप, पानी, हवा झेलती है, वह शोखी-रहित हरे रंग की है। दूसरी तरफ कम हरी लगभग सफेद है।

मैंने देखा कि बैंच पर और मेरे मुंह-देह पर पत्तों से छन के आते धूप के जो टिमकने पड़ रहे हैं, वे धूप के नहीं हैं, पत्तों की लगभग सफेद तरफ के प्रतिबिम्ब लगते हैं। यह भी लगता कि पत्तों के धूप-छांव से लटकते गुच्छे वैसे के वैसे नीचे भी उतर आए हैं।

—तुम हो बड़े उस्ताद। तुमने लिखा है कि खास मैं लिखूं कि मेरा अपना निजी हाल कैसा है। इसकी तरफ तो ध्यान ही नहीं गया था। हालांकि हटा भी नहीं था। जैसे तैरते-तैरते पूरी तरह याद न रहे कि हम तैर रहे हैं। एकाएक ही मानो

आंख खुल जाए, तुम्हारे पूछने से ही हुआ। और अजीब बात है, मैं सन्तुष्ट हूं। हां। लगभग सारा। तुम हँसोगे। हँस लो। मगर यह है सच। मुझे मालूम भी न था। अब पड़ा है तो मन में डर-सा भी पैदा हो रहा है कि कहीं छिन न जाए—

अब तुम और भी मेहनत से काम करोगे, मैंने मन में कहा। रमा खुश होगी। मुझे दिखाई-सा दिया। रमा साड़ी पहन रही है, सामने ड्रैसिंग टेबिल का शीशा है। कुछ याद आने से वह नौकर को वहीं से चिल्ला कर हुक्म देती है।

—लेकिन एक बात है, यार। तुम मुझे कुछ भी कह लो, जानता हूं कहोगे भी। बावजूद इस सन्तुष्टि के एक इच्छा मन में कूदती रहती है। वह है···अच्छा हटाओ। मिलोगे तो बताऊंगा। लेकिन, अच्छा कह ही देता हूं। यह है अद्भुत स्त्री। मेरे दफ्तर में एक लड़की आती है। हमारी रिसैप्शनिस्ट की सहेली है शायद। वह बहुत सुन्दर है, इस सीधे फिकरे से कुछ भी पता न पड़ेगा। मगर तुम समझ जाओगे —

मैं चौंका। वह स्त्री याद हो आई। ऐसी? कौन नहीं चाहता? मगर मैंने समझा कि यह इच्छा दूसरी होगी, अपनी उस तथाकथित सन्तुष्टि को छोड़ कर, फिर कर मेरे काम में शामिल होने की—

—खैर। रमा तुम्हें नमस्ते भेजती है।

हां, तुम गर्मियों के बाद क्या करोगे? अब तो तुम खोज भी पूरी कर चुके हो। अगर नौकरी करना चाहो, तो मैं अभी से पता लगाना शुरू कर दूं। या अभी कुछ और 'खोजने की सोच रखी है?' —

जीवन में रचे-रमे आदमी का व्यंग्य। जीवन में नहीं, बल्कि एक तरह से जीवन ही में। अभी से। मुझे उस पर दया आ गई। चार-पांच मित्रों में हम दो ही टिके, दो ही टिके रहे थे। एक तरह की किताबें पढ़ना, एक तरह की फिल्में देखना, साथ-साथ घूमना, बहसें करना, दुनिया में दोष निकालना— एक अनपढ़ नए तरीके की व्याख्या करना, आदि आदि।

आनन्द की रमा से नई-नई पहचान हुई थी। हम चाय पीकर रेस्त्रां से बाहर निकले थे। पांच-छः सूटों में बंधे लड़कों की टोली सामने ही खड़ी थी।

—गधे हैं।—आनन्द ने कहा था। मैंने हामी भरी थी।

—यों ही किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए।—रमा ने धीरे-धीरे कहा था। उस बात का जवाब न देकर हमने एक दूसरे को देख कर मुस्करा दिया था।

अब मैं अकेला रह गया हूं, मैंने गर्व से सोचा।

—यह बचपन अब अच्छा नहीं लगता।—न जाने क्यों रमा के ये शब्द याद हो आए। हल्की बेचैनी होने लगी।— बचपन!

जिस मोड़ से मुड़कर वह अद्भुत स्त्री ओझल हुई थी उसी मोड़ पर दो

लड़कियां और एक लड़का नमूदार हुए। लड़के के गले में कैमरा था और एक हाथ साड़ी पहने लड़की के कंधे पर। वे पति-पत्नी लग रहे थे। दूसरी लड़की उनके आगे-आगे थी— हाथ में ट्रांसिस्टर था। वे तीनों सड़क की मामूली ढलान पर विना कोशिश के ढुलकते-से आ रहे थे। आगे वाली लड़की पहाड़ को देखती आ रही थी। मेरे ोड़ा पास आकर रुक गई। उसने पहाड़ की तरफ देखा। फिर पीछे—

—ये फूल कित्ते बढ़िया हैं।—यह कह कर वह ऊपर चढ़ी और फूल तोड़ने लगी। दोनों आ कर खड़े हो गए और उसे देखने लगे।

—शान्ता! शान्ता!—लड़का जल्दी से बोला—तुम नीचे आ जाओ। प्रभा को जाने दो। इस पोज़ में फोटो वहुत अच्छा आएगा।

उसने प्रभा को देखा। प्रभा मुस्कराई और उसने साड़ी का पल्लू ीक किया। शान्ता ने एक फूल तोड़ लिया और छोटी छलांग मार कर नीचे आ गई।

—फूल हैं वहुत सुन्दर—उसने कहा। वह दुवली-सांवली थी।

लड़के ने कैमरे को चमड़े के खोल से निकाला। और मेरी तरफ उलटा सरकता उसे सही करने लगा।

—चढ़ जाओ तुम, प्रभा।

प्रभा ने स्वेटर शान्ता को थमा दिया और फूलों की तरफ बढ़ गई। फूल पहाड़ी नर्सिंग के थे। साथ ही दाईं तरफ काई-जमी चट्टान थी, जिस पर वहुत छोटे-छोटे हज़ारों सफेद पूफल फूले थे। मेरी नज़र उन पर अभी पड़ी।

प्रभा चढ़ कर झुकी और फूलों की तरफ हाथ वढ़ाया। तोड़ो नहीं। देख कर मुंह मोड़ा और पति की तरफ देखने लगी।

—फूल तोड़ के हाथ में ले लो—पति ने कहा। प्रभा ने वैसा ही किया।

—हाथ में ले रही है तो झुकना नहीं चाहिए—शान्ता ने कहा।—या फिर और तोड़ने की मुद्रा वनानी चाहिए।

वह समझदार है, मैंने सोचा। लड़के ने उसकी बात को अनसुना कर दिया और आंख कैमरे से भिड़ा दी।

—साड़ी ठीक करो।—प्रभा ने साड़ी ठीक की और मुस्कराई। उसकी छातियां बौनी थीं। इस मुद्रा म तन जाने की वजह से चेहरा कठोर लगता था।

शान्ता मेरी तरफ आकर उन्हें अजीव तरह से देख रही थी। हाथ में फल को घुमा रही थी। मुझे अच्छी लगी। वह बैंजनी किस्म की सांवली थी। लगा यह वह लड़की है जो जव वाहर निकलो, दिखाई देगी। किसी के घर जाओ, मिलेगी। किसी भी शहर, गांव में चले जाओ, नज़र आएगी।

—जल्दी तो करो। मैं थक गई हूं।—प्रभा बोली।

वह आम-सी थी— शान्ता! शायद किसी भी पेड़-सी, जिस पर एकदम ही ध्यान नहीं जाता।

मैं उठ कर वैठ गया। उसकी तरफ देखा। उसने जान लिया। पल भर क मेरी आंखों में देखा, फिर अपनी जगह से हिली। फूल को झुलाते-झुलाते वह सड़क पार कर के रेलिंग पर खड़ी हो गई। मुड़ कर मेरी ओर रेलिंग पर झुक कर खाई में देखने लगी। उसके दाएं-वाएं और ऊपर खाई से उठे वांज के तने दिखाई दे रहे थे। हरियाली, चारों तरफ हरियाली में जड़े, ऊंचे, सीधे, टेढ़े-मेढ़े, पीले-काले-से तने। वीच में शान्ता।

वे चले गए। मैं फिर दुनिया से परे हो गया। वन में। हरियाली को उठाए और फैलाए वांज के तनों के वीच।

—और सव ठीक है। यहां गर्मी वहुत पड़ने लगी है। गर्द और गर्मी। मसूरी में यह सव नहीं होता। तुम खुशकिस्मत हो। फुर्सत मिले तो पत्र लिखना। रुपए तार द्वारा भेज दिए हैं। अव तक मिल गए होंगे। —आनन्द।

तार द्वारा। अव तक आ जाने चाहिएं। मैं फौरन उठा और ऊपर को भागा। डाकिया कहीं चला न गया हो। पता किया। वही वात हुई थी। वह ग्यारह वजे आया था। मुझे न पाकर चला गया। अव शायद तीन वजे आएगा। वर्ना कल। मैंने वक्त देखा। ढाई। मैं वाहर विछी कुर्सी पर वैठ गया।

यह जगह बहुत ऊंची थी। हवा तेज़ चलने लगी। दिल्ली में ऐसी तेज़ हवा में छज्जे पर वैठे कवूतरों के पर उड़ते हैं। पूरे पर नहीं, परों के ज़रा अन्दर के सफेद और कोमल छोटे-छोटे रोंए उड़ते दिखाई देते हैं। उसी तरह यहां हवा वांज के पत्तों को उड़ा-उघाड़ रही थी। कम हरे लगभग सफेद पत्ते पूरे शोर के साथ दिखाई दे रहे थे। सारा जंगल उड़ने को उद्यत लग रहा था। मैं वैठा देखता रहा।

हवा बन्द हो गई। हरापन स्थिर हो अपनी जगह पर वैठ गया। मगर एकरसता नहीं थी। गहराई में हरियाली तनों से कटी हुई थी, जगह-जगह पर। पीले-काले-से तनों द्वारा।

पता नहीं आनन्द ने कितने रुपये भेजे हैं। उतने ही होंगे जितने मैंने मांगे थे।—आजकल में मैं उसके पत्र का जवाब ज़रूर दे दूंगा।

सीता बनवास

लक्ष्मीनारायण लाल

सब तरफ से हार कर, और पूरी तरह से निराश होकर अन्त में पेशकार साहब-मुन्शी जानकी प्रसाद ने अपनी खोई हुई पत्नी के लिए एक इश्तहारी पर्चा छपवाया।

सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में छापा था—गुमशुदा की तलाश। उसके नीचे धर्मपत्नी का फोटो। और नीचे पत्नी का नाम, श्रीमती सीता देवी, उम्र सत्ताईस साल, रंग सांवला, कद मझोला, छरहरा वदन, नाज़नक्श खूबसूरत।

नीचे पूरी इबारत—हे मेरी प्यारी धर्मपत्नी, श्रीमती सीता देवी, तुम इस दुनिया-जहान में जहां कहीं भी हो, तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारा अभागा पतिदेव मुंशी जानकी प्रसाद श्रीवास्तव, पेशकार, हाकिम परगना बहादुर तहसील अकबर-पुर, जिला फैज़ाबाद, तुम्हारी याद में दिन-रात रोता रहता है। आज एक साल से ज़्यादा हो रहा है जबकि तुम इस बदकिस्मतवर को छोड़ कर चुपचाप न जाने कहां गायब हो गई। मैंने तबसे तुम्हें नाते-रिश्तेदारों में, कुर्ब-जवार में कितना ढूंढा, कितना पता लगाया, मगर तुम मुझे अब तक न मिलीं। मैं अब इश्तहार के ज़रिए तुमसे हाथ जोड़ कर अर्ज़ करता हूं कि तुम मुझे माफ करके अब सीधे घर चली आओ। मैं ईश्वर की कसम खाकर कहता हूं कि अब मेरे दिलो-दिमाग में कोई मलाल नहीं है। मैंने तुम्हें माफ किया, अब तुम मुझे माफ करो। मैं धर्म से कहता हूं कि अब मैं आइन्दा न तुम्हें बद-अल्फाज़ कहूंगा, न तुम पर कभी अपना यह बदसलूक हाथ उठाऊंगा। मेरी तमाम गलतियों की मुझे ज़रूरत से ज़्यादा सज़ा मिल गई, अब और सज़ा मत दो मेरी रानी, मैं तुम्हारे पांव पड़ता हूं। रहम करो मुझ पर। फौरन अब अपने उजड़े हुए घर में लौट कर इसे गुलज़ार करो। तुम जहां-कहीं भी हो, मुझे बखटके खत दो, तार भेजो, मैं तुम्हें ले जाने के लिए फौरन वहां हाज़िर हूं। मुझ गरीब पर अब रहम करो मेरी मलिका।

तुम्हारा पतिदेव,
मुन्शी जानकी प्रसाद, पेशकार, हाकिम
परगना, अकबरपुर—स्टेशन वाली गली
ज़िला—फैज़ाबाद

इश्तहार में और सबसे नीचे छपा था, मोटे अक्षरों में—जो कोई भी मेरी

इस गुमशुदा पत्नी की खोज-तलाश करके मुझे दे देगा, मैं उसे सफर किराया के अलावा पांच सौ रुपये नकद इनाम दूंगा।

और अन्त में नीचे—ओंउम् राम जी, सदा सहाय। पेशकार साहब का यह इश्तहार परगने के मुहर्रिर, अमीन, कुडुकमीन, चपरासी, हरकारा और कानूनगो, लेखपालों और ग्राम पंचायत के प्रधानों के ज़रिए पूरे फैजावाद भर के इलाके में जगह-जगह फैल गया। फैजाबाद-इलाहाबाद वाली रेल की लाइन, फैजाबाद-बनारस वाली लाइन तथा फैज़ाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ से लखनऊ, जौनपुर, जाने वाली रेल लाइनों के सारे स्टेशनों और वेटिंगरूमों में वह इश्तहार रातों-रात चिपक गया। सारे बस स्टेशनों और सिनेमाघरों की दीवारों पर भी।

बेचारे पेशकार साहब के घर में और कोई न था। पहली पत्नी का स्वर्गवास ब्याह से दूसरे साल ही हो गया। यह बहुत पहले की बात है। यह दूसरी शादी बहुत-बहुत मजबूरी के बाद उन्होंने आज से सात साल पहले की थी। इससे भी आज तक कोई बाल-बच्चा नहीं।

पेशकराइन खुश थीं। घर में और किसी तरह की कोई कमी न थी। हां, साथी और मुंहबोली की कमी पेशकराइन को ज़रूर कभी-कभी सालती थी।

सो एक दिन वह भी अकस्मात मिल गया पेशकारइन सीता को। एक अन्हरी औरत-सुरिपा।

जाने कहां से घूमती-भटकती हुई वह सुरिपा एक दिन पेशकार साहब के दरवाज़े पर आई थी। यही दिसम्बर के दिन थे। उससे एक दिन पहले वर्षा हुई थी। शाम का वक्त। वह पेशकार साहब के मकान के बरामदे की सीढ़ी पर चुपचाप आकर बैठ गई थी। पेशकार साहब कचहरी से तब तक नहीं लौटे थे। बिल्कुल सूना था वह दरवाज़ा। पेशकराइन पड़ोस में कहीं रामायण के अखंड पाठ में शामिल होने गई थीं। लौटीं तो उस सुरिपा को देख कर सोचा कि कोई भिखारिन है; घर में से भीख लाकर जब वह देने लगी, तो सुरिपा ने कहा था—हम भिखारिन नाहीं न मलकिन। हम हुई मजदूर। जात रैदास। मुलुक यही अवध। करम अभागिन···।

सच, बेहद मीठी बोल थी सुरिपा की। बड़ी कोमल ज़बान। पेशकराइन का अकेला मन उसी बोल में लपेट उठा।

पेशकार साहब उस दिन काफी रात गए घर लौटे थे। उनके हाकिम परगना साहब ने उन्हें तब तक कचहरी में ही एक ज़रूरी काम से रोक लिया था। मगर उस दिन सीता को पेशकार साहब की तनिक भी प्रतीक्षा न करनी पड़ी थी। बल्कि सीता को उस दिन फुर्सत ही न थी। वह सुरिपा से इस तरह घुल-मिल कर बातें करती रह गई थी कि वह न जाने कब की बिछुड़ी हुई उस सीता को मिली हो। सीता को उस दिन न भोजन बनाने की सुधि रही, न पति

के लिए चाय-नाश्ता। बस, वह मन्त्रमुग्ध, सुरिपा की बात सुनती रही। उसके अंधी होने की बात। घर और नैहर से टूटने की बात। सारी की सारी बात. बीच-बीच में गीत के दर्द भरे टुकड़ों के साथ।

पेशकार साहब उस दिन बहुत नाराज़ हुए थे। इतने कि उन्होंने अपनी पत्नी सीता पर हाथ तक उठा दिया था। यह सब पहले की बात है।

उन्हीं दिनों की बात है। पेशकार साहब इक्के पर से कहीं गिर गए थे। शरीर भर में दर्द। सुरिपा रात-रात भर पेशकार साहब के बदन की मालिश करती रही।

हर इतवार को पेशकराइन के बदन पर उबटन और तेल। किस्से-कहानियां, गीत, भजन के संगीत से वह घर ही नहीं, स्टेशन वाली गली का सारा मुहल्ला गूंजने लगा था। और सुरिपा की वह निश्छल, शिशुवत हँसी जैसे किसी पहाड़ से झरना फूटता हो—वह हँसी!

गर्मियों की बात थी वह। पेशकार साहब ने सुरिपा को कचहरी में हाकिम के कमरे में पंखा खींचने की नौकरी दिला दी थी। वह बरामदे में मूर्तिवत बैठी पंखे की डोर एक गति से खींचती रहती, दूसरी ओर वह पूरे वक्त कुछ न कुछ गुनगुनाती रहती। भजन, ब्याह के गीत, लोरी, सोहर, लचारी, कहरवां, चैती, बारहमासा और न जाने क्या-क्या ··· ।

हाकिम परगना साहब के लंच का वक्त हो गया था। साहब भीतर से बाहर आकर सुरिपा के पास आकर एकाएक खड़े हो गए। सुरिपा अपनी धुन में पंखा खींचती हुई धीरे-धीरे गा रही थी —

जतन बताये जइहो रामा
कैसे दिन कटि हैं।

हाकिम को न जाने क्या सूझा। उन्होंने सुरिपा को अपने बंगले पर बुलाया और हाकिम की मेमसाहब ने उसे वहीं अपने पास रख लिया। इधर पेशकराइन की बुरी हालत। बिना सुरिपा के एक छन भी उन्हें चैन नहीं। पर बेचारे पेशकार साहब इसमें क्या करते। हाकिम भगवान की बात। इनके बीच कौन पड़े।

सुरिपा को हाकिम के घर से बुला लेने के सवाल पर पेशकार साहब और उनकी पत्नी में आए दिन झगड़ा होता। गुस्से में कई बार पत्नी पर पेशकार साहब का हाथ भी उठ गया। गाली-गलौज की फिज़ा। वह शान्त सुखी घर अशान्त और दुखी हो गया। और एक दिन गज़ब हो गया। पेशकराइन सीधे मेमसाहब के बंगले पर गई। सुरिपा का हाथ पकड़े अपने घर की ओर चलीं। मेमसाहब ने इसका विरोध किया। मेमसाहब और पेशकराइन में तड़ातड़ कई सवाल-जवाब हुए। पेशकराइन को किस बात का डर। पचास रुपये रोज की आमदनी है उनके

पेशकार मर्द की। तनख्वाह ऊपर से। हाकिम को सिर्फ वही तनख्वाह ही तो मिलती है।

मेमसाहब ने अपने साहब के पास चपरासी दौड़ाया। पेशकार साहब से हाकिम ने शिकायत की। पेशकार साहब को काटो तो खून नहीं; दौड़े हुए घर गए। सीता को बेतरह मारा। बीच-बचाव में बेचारी सुरिपा भी पिटी। और पेशकार साहब सुरिपा को उसी दिन मेमसाहब के हवाले कर आए।

रात को घर लौटे तो उसी अशान्त घर में पेशकार साहब के मुंह से यह निकला कि—जा तू भी इस घर से निकल जा··· ।

सुबह पेशकार साहब जब सोकर उठे तो उन्होंने देखा—घर सूना पड़ा है। सीता घर से लापता थी।

इस अन्त की पेशकार साहब ने कभी कल्पना भी न की थी। पेशकार साहब बेहाल होकर अपनी पत्नी की तलाश करने लगे। नाते-रिश्तेदारों के बीच छान कर भी उन्हें कोई भी फल न मिला।

और एक दिन जब निराश होकर पेशकार साहब अपने सूने घर में बैठे रो रहे थे, तो उन्होंने देखा, उनके सामने वही सुरिपा आकर खड़ी है। और उन्हें समझा रही है— हे साहब, रोने मे अब क्या होगा। धीरज धरो बाबू। अभाग तो हमार कर्म है। जहां पैर रखा, वहीं आग लग गई।···हे साहब, ई जिन्दगानी ही ऐसी है। जहां परेम का हाथ फैलाओ वहीं जिन्दगानी की आग की लपट लगे। विश्वास करो साहब, बहिन जी उसी परेम से ही रूठ कर कहीं चली गई हैं। बहन जी मुझे से अक्स अपनी बातचीत में कहती थी कि हो सूरा, औरत को कोई प्यार-इज्जत करे तो औरत घायल हिरनी के माफिक क्यों तड़पे? इतनी-भूख प्यास लेकर औरत क्यों जनमती है सूरा? आखिर क्यों? विधवा की ऐसी मरजी क्या थी कि उसने मरद-औरत को दो आंखों से देखा।

सुरिपा पेशकार साहब के पैताने बैठी उन्हें समझा रही थी। बेहद ममता और स्नेह की बानी में। पेशकार साहब कचहरी से तब समय से घर लौटते थे। कहीं जाना आना नहीं, कोई देर-सबेर नहीं। स्वयं दोनों वक्त भोजन बनाते। पहले सुरिपा को भोजन करा के तब खुद खाते।

और सुरिपा से वही अक्सर एक ही सवाल पूछते थे-—सीता कहां होगी? वह क्यों इस तरह भाग गई?

एक दिन सुरिपा ने नया जवाब दिया—सीता को किसने बनवास दिया था साहब? राम ने या राजा दसरथ ने?

और उसने खुद उत्तर दिया था—सीता को बनवास राम ने दिया, न दसरथ न। सीता ने खुद बनवास लिया था, राम को पाने के लिए। क्योंकि राम ने तो अपनी सीता को अग्नि में डाल दिया था। और वह सीता तो माया थीं।

असली सीता तो अग्नि में समा गई थीं। इसलिए वनवास में जाकर उस सीता ने अपने से ही अपने आपको पाया था। एक असली सीता। एक माया सीता। बीच में राम। तभी तो राम अन्त में सीता को मिले थे।

कभी-कभी रात-रात भर पेशकार साहब उस सुरिपा से बातें करते रह जाते थे। और जब इस तरह सुबह हो जाती थी, तब पेशकार साहब को लगता था—उन्होंने रात भर उसी माया सीता को ही देखा है। और तब उन्हें पहली बार बिल्कुल नए अर्थों में यह महसूस होता था कि जो माया है वह असली से, मूल से कितनी ज्यादा मोहक और खूबसूरत है। यह एहसास उन्हें बहुत-बहुत अच्छा लगता था। तब उन्हें सुरिपा की बात समझ में आती थी कि सीता ने खुद वनवास लिया था, राम को पाने के लिए। और राम ने उस वनवास के बीच पहली बार अपने आपको पाया था। अपने को, यानी सीता को। एक ओर असली, दूसरी ओर माया, बीच में वही राम। और पेशकार साहब अक्सर रात को उठ कर स्नान करते और अकेले पूजा के कमरे में जाकर रामचरितमानस का पाठ करने लगते। वही अयोध्याकांड। वही सुन्दरकांड। उनके सामने पत्नी का वही फोटो होता। और वह अनहद स्वर में कहते— मेरी सीता रानी, तुम मुझे माफ करना। अब तो माफ कर दो। मुझे क्या पता था कि तुम दो हो — एक असली और एक माया।

फिर पेशकार साहब ने अन्त में हार कर वही इश्तहार निकलवाया था। गुमशुदा की तलाश।

और एक दिन सच निकला कि वह पेशकराइन सचमुच माया थीं। आषाढ़ के दिन थे। सुबह-सुबह पेशकराइन सीता अकबरपुर स्टेशन पर उतर कर सीधे अपने घर में आ खड़ी हुई। पेशकार साहब आश्चर्यचकित पत्नी का मुंह देखते रह गए। सुरिपा खड़ी खिलखिला कर हँसती रहीं—वही फूटते झरनोंवाली निश्छल हँसी।

पेशकराइन ने बताया कि वह भाग कर लखनऊ में चली गई थीं। अपने नैहर के एक ठाकुर थे, लखनऊ में पुलिस कांस्टेबल। कुछ दिन उनके यहां। फिर एक मास्टरनी के घर भोजन बनाने की नौकरी।

वाह रे बनवास वाली सीता!

पेशकार साहब बहुत खुश थे। बहुत खुश।

एक दिन पेशकार साहब ने अपनी पत्नी से कहा—कि सुनो हे, नाते रिश्ते-दार, गली मुहल्ले वाले तुम्हारे बारे में तरह-तरह की बातें करते रहते हैं। सो वह मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे पूरा यकीन है, इत्मीनान है कि तुम पवित्र हो, पाक हो, मगर सबका मुंह बन्द करने के लिए, मैं सोचता हूं, तुम अपनी परीक्षा दे डालो। मामूली, यों ही जरा सी बात। क्यों?

पेशकराइन समझ गई। उन्होंने झट उत्तर दिया—मैं क्यों परीक्षा दूं, जब आपको मुझ पर यकीन है, इत्मीनान है। फिर वहीं पुरानी बात···।

पेशकराइन ने अग्नि-आंखों से पेशकार साहब की ओर ताका। दो-चार दिन वे चुप रहे। फिर एक दिन उन्होंने बताना शुरू किया कि उनके बाबा के ज़माने में भी ठीक इसी तरह से एक घटना घट चुकी थी। दादी की देवराइन घर से कहीं भाग गई थीं। आठवें दिन मिलीं वे। दादी ने तब उनकी परीक्षा ली थी। उनकी दाईं हथेली पर आग के दहकते अंगारे रख कर। सबके सामने हथेली पर वह अंगारा रखा गया। पर हाथ नहीं जला। वह पवित्र हाथ। उस हाथ से तब वह जिस किसी को भी जो उठा कर दे देती, वह उसके लिए अमृत होता।

पेशकराइन बिगड़ खड़ी हुई। यह तो पोंगापंथी की बात है? मैं क्यों इस तरह से परीक्षा दूं। मैं तो यह जानती हूं कि आग का धर्म जलाना है। हाथ जैसा भी हो, वह जलेगा, ज़रूर जलेगा।

—नहीं जलेगा। अगर वह हाथ पवित्र है तो।

—तो पहले तुम इस तरह अपनी परीक्षा दो।—पेशकराइन ने कहा।

—मैं क्यों दूं?—पेशकार साहब ने कहा—मैं कहीं इस तरह थोड़े भाग कर गया था।

—तो इसी बात की तुम पहले परीक्षा दो न कि तुम कहीं भाग कर नहीं गए थे।

पेशकार साहब चुप। वे पत्नी की परीक्षा लेने के लिए, अपनी परीक्षा में तैयार हो गए।

आज से ठीक पांचवे दिन मंगलवार आएगा। उसी दिन पेशकार अपनी हथेली पर आग का दहकता अंगारा रखेंगे। यह तय हो गया।

इतवार का दिन था। सुबह से ही अपने कमरे में बैठे पेशकार साहब वही रामायण का पाठ कर रहे थे। सुरिपा उनके कमरे के दरवाज़े पर मूर्तिवत बैठी थी। उसकी अंधी आंखों से रह-रह कर आंसू की धारा बह जाती थी।

संध्या होते-होते पेशकार साहब का वह पाठ समाप्त हुआ। घर में एकदम सन्नाटा। सुरिपा पूरे घर में बहिन जी, बहिन जी का नाम लेकर पुकारती रही। कहीं कोई आवाज़ नहीं।

वह धीरे-धीरे पेशकार साहब के कमरे में घुसी। टटोलते-टटोलते उसने पेशकार साहब का पलंग पा लिया। उसने छूकर समझा कि पेशकार साहब दिन भर रामायण पाठ से थक कर सो गए हैं। पैरों के ऊपर कम्बल को छूकर उसने धीरे से जगाना शुरू किया—हे! हे साहब, जागो न। एक बात कहूं। बुरा मत मानो। सुनो। मैं बता रही हूं साहब, आप अग्नि परीक्षा मत देना साहब। मेरे पेट में अब वह आ गया है। भगवान राम कसम साहब। परीछा मत देना, हां।

पेशकराइन ने आंखें खोल कर सुरिपा को देखा। कम्बल के नीचे पेशकराइन का शरीर जिस तरह कांपने लगा था, उससे कहीं अधिक सुरिपा के दोनों हाथ कमरे की हवा में कांप रहे थे।

वह फिर झुकी। कम्बल पर से हाथ सहलाती हुई उसने बहुत मज़बूती से पलंग का दायां पाया पकड़ लिया। फिर वह मुंह ऊपर करके बोली—विश्वास करो साहेब, मैं यह बात किसी से कभी नहीं बताऊंगी।

पेशकराइन ने दे ा—सुरिपा का वह जलता हुआ मुंह आंसुओं से अब भीगने लगा था। जैसे प्यासी धरती पर आषाढ़ की पहली घनघोर वर्षा हुई हो।

थोड़ी रात बीतने के बाद पेशकार साहब की आवाज़ घर के आंगन में उभरी। उन्होंने सुना सुरिपा बाहर बरामदे में कहीं बैठी गा रही है। पेशकार साहब अपने कमरे में गए। रोशनी में देखा, सीता कम्बल ओढ़े अब तक पलंग पर पड़ी थी।

—अब तक सो रही हो? लो देखो न, मैं परसों के लिए परसाद लेकर आ गया।

पेशकराइन उठ कर बैठ गई। एकटक वह पति के मुंह को निहारती रही। धीरे से बोली—अब वह परीक्षा नहीं होगी।

—क्यों आखिर क्यों?

—बस, यों ही।

पेशकराइन ने गम्भीर मुंह पर एक मुस्कान रंग उठी। वह पलंग से नीचे उतर कर बड़ी शालीनता से बाहर आंगन में चली गई।

न्याय की गति

मन्मथनाथ गुप्त

जब दुखहरण हवालात में बन्द कर दिया गया, तब उसे होश आया और मालूम हुआ कि उसने क्या किया है? अब तक तो वह जैसे नशे में था, सब कुछ आवेश में करता गया था। वह दोपहर के समय एकाएक किसी काम से घर आया, तो उसने देखा कि उसके खपरैल वाले घर का दरवाज़ा भीतर से बन्द है, समझा कि उसकी स्त्री सुमित्रा भीतर सो रही होगी। उसने बाहर से दरवाज़े पर धक्का दिया, पर वह नहीं खुला। फिर समझा कि गहरी नींद में होगी, सो उसने दरवाज़े को भड़भड़ाया। जब फिर भी दरवाज़ा नहीं खुला, तब उसे शक हुआ कि कहीं सुमित्रा ने आत्महत्या तो नहीं कर ली। शहर की यह बीमारी गांवों में भी काफी फैल चुकी थी। पर आत्महत्या करने का कोई कारण तो था नहीं। इस प्रकार वह सोचता गया, और दरवाज़ा पीटता गया। अन्त में जब उसने देखा कि ऐसे काम नहीं चलेगा, तो दरवाज़े पर बहुत ज़ोर का धक्का मारा। दरवाज़ा झनझना कर गिर पड़ा।

उसने सामने जो दृश्य देखा, उसे देख कर एक बार तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। सुमित्रा एक कोने में खड़ी थर-थर कांप रही थी। उसके कपड़े-लत्ते अस्त-व्यस्त थे, आंखें लाल हो रही थीं और चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। दुखहरण कुछ समझ नहीं पाया कि मामला क्या है, इतने में उसी कमरे के दूसरे कोने से उसका पड़ोसी रामचरण तीर की तरह निकला और बिना कुछ कहे-सुने दरवाज़े से निकल गया। एक सेकेण्ड के सौवें हिस्से में ही वह कांड हो गया। पर इससे भी फुर्ती से जो कांड हुआ, वह यह था कि दुखहरण ने दीवार पर टंगे हुए फर्से को उतार लिया, और लपक कर रामचरण के पीछे दौड़ा।

फिर उसके बाद क्या हुआ? यह याद करने पर ही उसे याद आया। एक बार में ही उसने रामचरण को गिरा दिया, और दूसरे वार में तो वह खत्म ही हो गया। अब वह अपनी स्त्री को मारने के लिए चला। पर तब तक गांव वाले इकट्ठे हो गए थे। फिर वह जहां सुमित्रा को छोड़ गया था, वह वहां मिली भी नहीं। लोगों ने उसे पकड़ लिया, उसका फर्सा छीन लिया गया, और थोड़ी ही देर में वह थाने में बन्द कर दिया गया। वहीं पर उसे सारी बातें एक-एक करके पहले

विना तरतीव के और वाद में तरतीव से याद आई। हल और वैल तो खेत में ही छूट गए। वह तो एक रस्सी लेने घर आया था। हल एक जगह से कमजोर हो गया था, सो उसे वहां बांधना था। और जरा देर में यह सारा कांड हो गया। उसके मन में हल, वैल के लिए चिन्ता होने लगी, पर······नहीं, अब कोई चिन्ता नहीं रही। जव कुछ भी नहीं रहा, तो वह हल, वैल की चिन्ता क्यों करे? एक बार उसने सोचा कि सुमित्रा कहां गई? पर फिर सोचना व्यर्थ लगा कि जव सुमित्रा ने उसे इस प्रकार धोखा दिया, तो अव उसे किसी से मतलव नहीं।

पुलिस तथा अदालत के सामने दुखहरण ने सारी वातें स्वीकार कर लीं। छोटी अदालत ने उसे सेशन के सुपुर्द कर दिया। जव मुकदमा सेशन में गया, तो वह मिस्टर सेठ नामक एक अधेड़ उम्र के जज के सामने पेश किया गया। न मालूम क्या वात हुई कि शुरू से ही जज साहव ने अभियुक्त के प्रति वहुत विरोधी रुख धारण कर लिया। दुखहरण को सरकार की तरफ से एक वकील मिले, जो अपना काम वहुत सच्चाई के साथ कर रहे थे। वे वार-वार जज साहव के सामने इसी वात को रखते थे कि अभियुक्त ने जो कुछ किया, वह वहुत भारी उत्तेजना के वशीभूत होकर किया। वकील का यह कहना केवल भावना के प्रति एक निवेदन मात्र ही नहीं था, कानून की दृष्टि से भी यह एक उचित कारण था। पर जज मिस्टर सेठ इस वात को जव भी सुनते, तो झुंझला जाते।

मुकदमे के आरम्भ में ही मिस्टर सेठ ने एक दिन सफाई के वकील को डांट दिया। वोले—यह क्या आप वार-वार उत्तेजनावश, उत्तेजनावश कहते हैं?

सफाई के वकील ने कहा—हुजूर, सुमित्रा उसकी व्याही हुई स्त्री थी। जव उसने उसे रामचरण के साथ ऐसी आपत्तिजनक अवस्था में देखा, तो····

वीच में ही वात काट कर, मिस्टर सेठ वोले—तो क्या हुआ? इससे उसे यह हक थोड़े ही हो गया, कि वह उसे मार डाले? अव मनुष्य गुफा में रहने वाले नहीं रहे, अपने पूर्वजों से आगे वढ़ चुके हैं—कह कर वे हँस पड़े।

उनके मन में इस समय अपने वर्तमान जीवन की कुछ वातें घूम गईं। वहुत दिनों से वे अपने एक मित्र श्री लाल की स्त्री से फंसे हुए थे। यह नहीं कि वे अपनी स्त्री को प्यार नहीं करते थे। पर वह पांच बच्चों की मां थी। घर के काम-काज तथा रिश्तेदारी आदि से ही उसे फुर्सत नहीं मिलती थी। और लड़कों, लड़कियों के लिए वर, वधू खोजने का काम भी था। सो सेठ साहव क्लव जाया करते थे, और वहीं पर उन्होंने इस अनमोल रत्न श्रीमती लाल को ढूंढ़ निकाला था। और श्रीमती लाल के साथ उन्होंने अपने को, अपनी जवानी को फिर ढूंढ़ निकाला था।

अदालत में जव भी रामचरण की वात सामने आती थी, तो वे अपनी वात सोचे विना नहीं रहते थे। वे दुखहरण जैसे व्यक्तियों से सचमुच घृणा करते थे। एक दिन उन्होंने अभियुक्त को कह भी दिया—देखो जी, अगर तुमने यह देखा

कि तुम्हारी बीबी ने तुम्हें धोखा दिया, तो तुम उससे अलग हो जाते, या दूसरी शादी कर लेते। पर यह क्या अहमकपन था कि फर्सा लेकर उसके प्रेमी को खत्म कर दिया?—कह कर, उन्होंने मुंह बना लिया। सचमुच सभ्यता के इस युग में ऐसे लोग बड़े मिसफिट हैं।

जज साहब यों तो अदालत में अभियुक्त से बोल रहे थे, पर वास्तव में यह उपदेश वे अपनी चहेती के पति श्री लाल को दे रहे थे, जिससे उन्हें कुछ न कुछ डर तो बना ही रहता था। जज साहब इतने मूर्ख नहीं थे कि श्री लाल के घर जाएं, जैसा रामचरण ने किया था। वे तो अपनी प्रेयसी को किसी एकान्त स्थान पर अत्यन्त गुप्त रूप से, ताकि कोई उस प्रकार का खतरा पेश न आए, बुला लेते थे। अभी-अभी यह महिला स्वास्थ्य-सुधार के बहाने नैनीताल पहुंची थी। उसके पति उसके साथ न जा सके थे। पर जज साहब छुट्टी लेकर गए थे, और पास ही के बंगले में टिक गए थे। वे भी स्वास्थ्य सुधारने के बहाने गए थे। और उनके घर के लोग समझते थे कि वे किसी सरकारी काम से बाहर कमीशन पर गए हैं। पर मान लीजिए कि उनकी प्रेयसी का पति कहीं नैनीताल पहुंच जाता तो कितनी असुविधा होती। और यही नहीं, कहीं फर्सा लेकर पहुंचता, तो? नहीं, यह तो अकल्पनीय है।

इसी कारण जब सुमित्रा गवाही देने आई, तो जज साहब ने भरसक यही प्रयत्न किया कि वह यही कहे कि कोई उत्तेजना उत्पन्न करने वाली परिस्थिति नहीं थी। उनका इशारा पाकर, इस्तगासे का वकील भी यही प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहा था कि उत्तेजना की कोई बात नहीं थी, सुमित्रा और रामचरण बाहर खड़े बात कर रहे थे, और दुखहरण ने उन पर ख्वामख्वाह हमला कर दिया। सुमित्रा के लिए भी इस प्रकार की गवाही देना आसान था। सफाई पक्ष के वकील ने फिर भी कुछ काम बना ही लिया। पर जज साहब अन्त तक इसका विरोध करते रहे। दुखहरण तो सारी कार्रवाई के प्रति उदासीन-सा हो रहा था, पर जब सुमित्रा ने भरी अदालत में यह कहा कि वह खड़ी होकर रामचरण से बात कर रही थी, और दुखहरण ने आकर रामचरण पर पीछे से फर्सा से हमला कर दिया, तो उससे रहा नहीं गया। वह एकाएक चिल्ला कर बोल पड़ा—धर्म से बोल कि जो कुछ तू कह रही है, वह सच है?

उसकी डांट सुन कर, सुमित्रा कुछ घबरा-सी गई। पर फौरन सरकारी वकील ने उसे सम्भालते हुए कहा—तुम इसकी मत सुनो। मेरे सवालों का जवाब दो।

फिर उसने अदालत से कहा कि गवाह को अभियुक्त की धमकियों से बचाया जाए। इस पर जज साहब ने कटघरे की तरफ से संतरियों को इशारा किया, और उन लोगों ने दुखहरण को जबरदस्ती पकड़ कर बेंच पर बैठा दिया। जज साहब ने रुखाई के साथ कहा—दुखहरण, तुम अगर गवाह को छेड़ोगे, तो

तुम्हें हथकड़ी पहना दी जाएगी। तुम्हारे वकील मौजूद हैं। जो कुछ कहना हो, उन्हीं से कहो। वे तुम्हारी तरफ से बोलेंगे।

इस प्रकार न्याय का निरूपण जारी रहा। दो महीनों तक मुकदमा चलता रहा। जज साहब ऐसे समाज-विरोधी व्यक्ति को फांसी देना चाहते थे, पर वे जानते थे कि ऊंची अदालत में फांसी की सजा नहीं रह सकती, इसी कारण उन्होंने दुखहरण को काले पानी की सज़ा दी।

इसके बाद दुखहरण एक सेंट्रल जेल में भेजा गया, क्योंकि बड़ी मियाद के कैदियों को जिला जेलों में रखने का नियम नहीं है, वहां पर उसने एक दूसरी ही दुनिया पाई। जेलर एक एंग्लो-इण्डियन था। वह इतना दबंग था कि उसके नाम से सारे कैदी थर-थर कांपते थे। न जाने कितने कैदियों को उसने पीट-पीट कर मार डाला था। मार कर वह डाक्टर से मिल कर यह लिखवा दिया करता था कि कैदी न्यूमोनिया या किसी अन्य भयानक रोग से मर गया। कोई पैसे वाला आदमी यदि जेल में फंस कर आ जाता था, तो वह छल, बल, कौशल से उसकी सारी जायदाद दुह लेता था। जेल में उसके कुछ एजेण्ट लगे हुए थे, जो उसे बताते रहते थे कि किसके साथ क्या करने से पैसे वसूल होंगे। इन बातों के अलावा वह बड़ा दुश्चरित्र भी था। सेंट्रल जेल से लगी हुई स्त्रियों की जेल भी थी। वहां तो उसकी दाल नहीं गल पाती थी, पर वहां काम करने वाली स्त्री-वार्डरों तथा अन्य स्त्रियों के साथ वह हमेशा ज़बरदस्ती किया करता था। अपने यहां के दो-एक भारतीय वार्डरों की स्त्रियों से भी उसकी सांठ-गांठ थी। उसके लिए इन स्त्रियों से दोस्ती करना बहुत आसान इस कारण था कि वही वार्डरों की ड्यूटी लिखा करता था। ऐसे वार्डरों की ड्यूटी वह हमेशा रात को डाला करता था, जिससे कि उसकी दुष्टता में कोई बाधा न पहुंच सके।

हां, तो इसी जेलर के सामने दुखहरण पेश किया गया। जेलर का नाम मिस्टर मूडी था। मूडी ने दुखहरण की तरफ देखा भी नहीं। पर जब उसने उसका वारंट पढ़ा, तो हँस पड़ा, और दुखहरण को इस प्रकार देखने लगा, मानो वह कोई अजीब किस्म का जन्तु हो। उसे तो ऐसे व्यक्ति बहुत हास्यजनक मालूम होते थे। वह हहरा कर हँसा।—हा-हा-हा-हा। टुम बड़ा बहाडूर है।

पास खड़े तजुर्बेकार लोग समझ गए कि अब दुखहरण की खैरियत नहीं।

दुखहरण बोला—हुजूर नहीं····।—जिला जेल में रहते-रहते दुखहरण ने यह सीखा था कि हर एक को हुजूर कहना चाहिए।

मूडी फिर हँसा। बोला—टुमारी बीबी बहुत खूबसूरट है?

दुखहरण कुछ नहीं बोला। वह सिर नीचा किए, ज़मीन की तरफ देख रहा था। इतने में मूडी ने पता नहीं कुछ इशारा किया या क्या हुआ कि आठ-दस आदमी डंडे लेकर, उस पर पिल पड़े। वह गिर गया, और थोड़ी ही देर में बेहोश हो

गया। तब उसे उठा कर, अस्पताल भेज दिया गया। मूडी ने अपनी हिन्दी में अपने मुसाहिबों से जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है—यही लोग दुनिया को तबाह किए हुए हैं। जब तुम्हारी बीवी तुमसे राज़ी नहीं है, तो उसको जाने दो। उसके पीछे किसी की जान क्यों लेते हो?—फिर बिगड़ कर, अंग्रेज़ी में बोला—ये जज भी साले नम्बर एक के गधे होते हैं। ऐसे असभ्य आदमी को फांसी देकर छुट्टी करते। यह नहीं, इसकी बीस साल की सज़ा करके, यहां भेज दिया। इसीलिए तो हमें अपने हाथों से सज़ा देनी पड़ती है।—कह कर, वह मूंछों पर ताव देता हुआ वहां से चला गया।

खैर, दुखहरण के भाग्य में जीना बदा था। वह अच्छा हो गया, और उसे चक्की दी गई।

इसी प्रकार बीच-बीच में उस पर मार पड़ती। पर वह मरने से इनकार करता गया। सब दुखों को सह कर भी वह जीवित रहा।

कायदे के अनुसार हाईकोर्ट में उसके मुकदमे की अपील जेल की तरफ से की गई। यह अपील जस्टिस डुग्गल नामक जज के सामने गई। जस्टिस डुग्गल ने अपील को बड़े ध्यान से सुना। वे बहुत बुद्धिमान जज समझे जाते थे, और चीफ जस्टिस के प्रिय पात्रों में से थे। जब देखो, तभी चीफ जस्टिस की उनके यहां दावत रहती थी। दुष्ट लोग यह कहते थे कि उनकी स्त्री लेडी डुग्गल चीफ जस्टिस से फंसी हुई थी, और इसी कारण चीफ जस्टिस के यहां उनकी दावत रहा करती थी। नाचों में अक्सर चीफ जस्टिस और लेडी डुग्गल एक साथ नाचा करते थे। इन दिनों यह अफ़वाह बहुत बढ़ गई थी। यहां तक कि यह बात जस्टिस डुग्गल के कानों तक भी पहुंच चुकी थी, और उन्हें भी कुछ बातों से शक होने लगा था। इधर वे चीफ जस्टिस की एक दावत में यह कह कर नहीं गए थे कि उनकी तबियत ठीक नहीं है। वे यह उम्मीद करते थे कि लेडी डुग्गल भी उस दावत में न जाएंगी। पर वह एक सहेली से मिलने का बहाना कर के चली गई। जस्टिस डुग्गल उस दिन से और भी परेशानी में रहने लगे। वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें? कभी-कभी वे आत्महत्या की बात सोचते थे, तो कभी पेंशन लेने की बात।

इतने में यह मुकदमा उनके सामने आया। इस्तगासे की दलीलों को सुनने के बाद जस्टिस डुग्गल ने कहा— मैं अभी कुछ नहीं कहूंगा। पर मुझे ऐसा मालूम होता है कि विद्वान सेशन जज ने कानून के अर्थ का अनर्थ कर डाला। जब तक परिवार-प्रथा कायम है, तब तक पति को यह आशा करने का पूर्ण अधिकार है कि उसकी स्त्री उसके प्रति सच्ची रहे। दुखहरण की तरफ से जो प्रबल उत्तेजना का कारण पेश किया गया है, उसे मैं अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देख सकता। और रामचरण के प्रति तो किसी को कोई सहानुभूति हो ही नहीं सकती।

तीन दिनों तक मुकदमे की सुनवाई होती रही। अन्त में जस्टिस डुग्गल ने दुखहरण के ऊपर से 302 यानी हत्या की दफा उठा कर, उस पर 304 यानी आकस्मिक नर-घात की दफा लगा दी और उसकी सज़ा घटा कर बीस साल से दो साल कर दी। अपने फैसले में जस्टिस डुग्गल ने सेशन जज की इस कारण कड़ी आलोचना की कि उन्होंने उत्तेजना की बात पर ध्यान ही नहीं दिया, जो सारे मुकदमे का केन्द्र-विन्दु था।

दुखहरण इस समय तक डेढ़ साल कैद काट ही चुका था। सब कैदियों की तरह उसे दो-तीन महीनों की छूट मिली, और वह जल्दी ही छूट गया। दुखहरण यह समझ ही नहीं पाया कि क्यों उसे पहले बीस साल की सज़ा हुई, क्यों उसे जेलर बराबर मारता था और क्यों हाईकोर्ट ने उसकी सजा घटा दी। और कैसे समझ पाता बेचारा ये बातें? बड़ों की बड़ी बातें।

M43DPD/65

